मार्कण्डेय पुराण



।। ॐ श्री विष्णवे नमः ।।

श्री मार्कण्डेय पुराण

लेखक—

डा० रामकृष्ण उपाध्याय

एम० ए० एस०एफ०, ए०एस०एफ०, आयुर्वेद तीर्थ कलकत्ता

साहित्य विशारद, साहित्य रत्न ।

प्राध्यापक : राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, गुरुकुल कांगड़ी

हरिद्वार (उ० प्र०)

मूल्य : Rs. 60

प्रकाशक :

रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार (२४९४०१)

प्रकाशक :

रणधीर प्रकाशन

रेलवे रोड, (आरती होटल के पीछे)
हरिद्वार (२४९४०१)
फोन : (०१३३) ४२६२९७

प्रमुख विक्रेता :

[illegible] बड़ा बाजार, हरिद्वार-२४९४०१
३. गगनदीप पुस्तक भंडार, एस० एन० नगर, हरिद्वार

अनुवाद और सम्पादन :
डा० रामकृष्ण उपाध्याय

प्रथम संस्करण : १९८७
द्वितीय संस्करण : १९९०
तृतीय संस्करण : १९९५

मुद्रक :

सुरेन्द्र प्रिंटर्स

४/१२३, सरवरिया मार्केट, विश्वास नगर,
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

अनुक्रमणिका

देवी महात्म्य

आधुनिक युग में पुराणों का महत्व

पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित्र का नियमानुसार वर्णन किया गया है। जनसमाज में पुराणोक्त भावी घटनाओं के प्रति विशेष आकर्षण है। प्रश्न यह है कि भावी घटनाएँ कहाँ से पैदा हुई, इस पर तर्क करना व्यर्थ है तथा भविष्य पर दृष्टि रखना ज्ञानमय है। पुराण, साहित्य, तर्क अथवा प्रमाण द्वारा जांचने का विषय नहीं है। इनमें घटित घटना या आगे वाली जो घटनाएँ होने की कल्पना की गई है, उन पर ध्यान देना तथा घटित घटना के आधार पर अपने को सम्भालना ही विशेष लाभदायक है। क्योंकि इसका निर्माण अल्पशिक्षित या अशिक्षित समुदाय को धर्म, ज्ञान, कर्म, नीति, चरित्र, मर्यादा, सद्व्यवहार सम्बन्धी सद्व्यवहार की प्रेरणा के लिए किया गया है। जिन लोगों को कतिपय कारणों से पढ़ने-लिखने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है, वह लोग भी सत्संग, लीला, कथा, कहानी के द्वारा सुनकर उचित-अनुचित समझकर अच्छाइयों को ग्रहण करने हेतु रचा गया है। विशेष कर मध्यकाल में जब वर्ण व्यवस्था अधिक संकीर्ण हो गई तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को ही प्रधानता देकर चतुर्थ वर्ण को श्रुति अन्तर्गत आने वाले ज्ञान से वंचित कर दिया गया उस समय जन साहित्य के रूप में पुराणों का निर्माण पिछले संदर्भों को लेकर किया गया। जैसा भविष्य पुराण में जन्मेजय के पुत्र राजा शतानीक के यहाँ उपस्थित समस्त मुनिगणों से राजा ने

प्रश्न किया कि हे मुनिगण आप लोग लोक कल्याण हेतु ज्ञान अर्जन करते हैं, इसलिए हमारे पर कृपा करके यह बताने की कृपा करें कि श्रुत्यादि, वेदादि ज्ञान, मनुस्मृति इत्यादि धर्म पुस्तकें जिनमें ब्राह्मणादि वर्णों के ही लिए रची गई हैं किन्तु चतुर्थ वर्ण के लोगों के उद्धार के लिए कोई विशेष स्थिति नहीं है। कैसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति कर सुखी हों।

प्राचीन समय में जब पुस्तकों का अभाव था कभी कोई आवश्यक रचना भोजपत्र या ताड़पत्र पर बड़े यत्न व परिश्रम से लिखी जाती थी तथा अलभ्य वस्तु की भांति गुप्त रखी जाती थी। इससे सभी श्रमजीवी वर्ग, कृषक वर्गादि, चतुर्थ वर्ण के लोग जिनका पूरा समय सेवा व श्रम में व्यतीत होता था मनुष्योपयोगी ज्ञान से वंचित रहते थे। ऐसी दशा में मुनिगण यदि लोक कल्याणार्थ, पुराणों, लीलाओं यथा कथाओं के माध्यम से उन तक ज्ञान न पहुँचाते, तो उन लोगों का मानव जीवन व्यर्थ हो जाता तथा अपने कल्याणार्थ, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिए कुछ भी नहीं कर पाते।

राजा शतानीक की प्रार्थना सुनकर महर्षि व्यास के शिष्य सुमन्त ने जो कुछ कहा उसका सार यही है कि अविकसित जन का उत्थान पौराणिक धर्म कथाओं से ही हो सकता है। क्योंकि वे उनको सुन व समझ सकते हैं।

साधु साधु महाबाहो, पृष्टोस्मि मानव।
शृणु मे वदतो राजन् पुराण नवम् महत्॥
इदं तु ब्राह्मणा प्रोक्तं धर्मशास्त्रममुत्तमम्।
विदुषा ब्राह्मणेने मध्येतक्यं प्रयत्नतः॥
शिष्येभ्यश्चैव वक्तव्य चातुवर्णेभ्यएवहि।

सत् साहित्य का लक्षण यही है कि जन साधारण का हित हो। आरम्भ में पुराणों की रचना सरल भाषा में आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश पाने वाले लोगों को कथा, दृष्टांत, रूपक, उपमा आदि शैली के द्वारा सृष्टि रचना तथा दैव शक्तियों का परिचय कराया। इससे पुराणों की घटनाएँ सत्य, अर्ध सत्य, कल्पना, प्रसूत सभी प्रकार की हो सकती हैं। किन्तु उनके भीतर प्रवाहित ज्ञान शाश्वत सत्य है। इसमें कोई दो विचार नहीं हो सकते। वैसे बाल-बुद्धि वाले मनुष्यों को ज्ञान कराने के लिए रोचक बनाने में अतिशयोक्तियों का भी सहारा लेना पड़ा होगा। जो सामान्य बात है।

ऐसे में पुराणकारों ने अपना उद्देश्य उदारता के साथ अशक्त वर्ग की कल्याण-भावना से चुना, स्पष्ट रूप से प्रकट है। संसार में अपनी विद्वत्ता की धाक जमाने के लिए तथा अपने नाम व यश को स्थिर रखने के लिए क्लिष्ट भाषा का प्रयोग करना जनहित नहीं कहा जा सकता। इससे अशक्त वर्ग के हित के लिए कलम उठाने वाला लेखक ही प्रशंसा का पात्र है।

ब्राह्मण—ज्ञानी, ध्यानी, निर्लोभी, त्यागी, उदारता युक्त, उत्तम आचरण वाला ही ब्राह्मण होता है। उच्चता का मापदण्ड खान-पान, रहन-सहन, बात-विचार तथा आचरण व दुराचरण है। जिनका उपर्युक्त व्यवहार सार्वभौम है, उत्तम है जिनको कुछ लोग अपनाते हैं। मध्यम कहा जाएगा।

देवता—साम्ब ने श्रीकृष्ण से पूछा—हे जनार्दन कुछ लोगों का देवता में सहज विश्वास होता है किन्तु कुछ लोगों के मत में देवता नामक कोई अस्तित्व नहीं है। इसमें आपकी विशिष्ट सम्मति क्या है दीजिए। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—आगमों में देवताओं के अस्तित्व को स्वीकारा गया है तो देवता अवश्य

होते हैं। अनुमान द्वारा भी अनुभव किए जाते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा भी जाने जा सकते हैं। उदाहरण स्वरूप—

सूर्य - प्रत्यक्ष देवता भगवान सूर्य हैं, जो समस्त जगत के नेत्र तथा दिन का सजन करने वाले हैं। इन्हीं के द्वारा यह समस्त जग, काल, युगादि उत्पन्न होता और लय होता है। इनसे अधिक न कोई प्रत्यक्ष है न हुआ होगा। इतिहासों, पुराणों में इनको अन्तरात्मा बताया गया है। इनकी उपासना नित्य करके लोग सुखी होते हैं।

देव की परिभाषा—जो सबका उपकार करे, वही देवता है तथा सबको कुछ न कुछ देता है।

इससे सारे संसार का मूलस्रोत सूर्य भगवान ही हैं। आदित्य आदिदेव होंगे। अज देवों में सबसे बड़ा होने से महादेव, लोक सर्वेश होने से ईश्वर, वृहत् होने से ब्रह्मा, भवत्व पालन करने से भव इत्यादि नाम हैं।

—:०:—

धर्म संस्कार

क्या आप जानते हैं कि संस्कार क्यों किया जाता है।

आत्मा प्रकृति विकार से संयुक्त वीर्य और रज के मिलने का नाम गर्भ है। इसकी शुद्धता का नाम संस्कार है। जैसे मैला लोटा धो-मांजकर जल पीने योग्य हो जाता है। "मलाकर्षण शुद्धि" मल का हटाना ही नाम संस्कार है। मानव संस्कार से ही महामानव बनता है। यहाँ तक कि तोता, मैंना इत्यादि भी संस्कारित होने पर राम नाम कहने से लेकर अनेकों प्रकार के

कार्य करते हैं। यह स्पष्ट देखा जाता है। मनुष्य पर तो इस संस्कार का इतना प्रभाव पड़ता है कि उसका वर्णन लेखनी के बाहर का विषय वस्तु बन जाता है। जैसे ध्रुव, प्रह्लाद इत्यादि लोग पिता के ठुकराने पर भी परमपिता का साक्षात् कर अमर हुए। वामदेव व अभिमन्यु को गर्भ में ही ज्ञान प्राप्त हुआ। इसी प्रकार सीता, सावित्री, पार्वती, द्रोपदी इत्यादि स्त्रियों ने भी कितना ऊँचा स्थान प्राप्त किया, किसी से छिपा नहीं है। पहले समय में बच्चों को प्रथम ही "पर धन लोष्ट्रवत, परदारेषु मातृव्रत्" इत्यादि रूप से संस्कारित किया जाता था। जिससे "धन्यास्तु ये भारत भूमि भागे" कहा जाता था। किन्तु सौभाग्य से प्राचीन साहित्य तथा इतिहास जीवित है। पूर्वजों का रक्त नसों में प्रवाहित है। सिर्फ कमी है तो संस्कार की जिसके अभाव में हम लोग संस्कारहीन होने से गीदड़ बनकर अनेकानेक दुःख भुगत रहे हैं तथा लोगों को अनेक प्रकार से उत्पीड़ित कर रहे हैं। अन्त में हमारा कहना है कि यदि हम अपने बच्चों को संस्कारित करना आरम्भ कर दें; उनको सद्-मार्ग का रास्ता दिखावें तो वे भी अवश्य महान बनेंगे। इसका उत्तरदायित्व हवारे लोगों के ऊपर ही है। हम बच्चों पर नाहक दोषार्पण करते हैं।

आत्मा तथा शरीर के संयोग से तीन क्रियाएँ होती हैं।

(१) निवर्त्य—उत्पन्न करना या बनाना। जैसे अन्नादिक का उत्पन्न करना घटादिक वस्तुओं का निर्माण।

(२) विकार्य—अवस्थान्तर को प्राप्त करना विकार कर्म कहलाता है। यह विकार दो प्रकार का होता है। (१) परिवर्तन, (२) विनाश।

परिवर्तन करण—प्रथम रूप से दूसरे रूप में बदलना। जैसे सोने से हारादि बनाना। विनाश—घटादि का तोड़ना।

(३) प्राप्य—अप्तिकर्म, यथा चलकर प्राप्ति करना। जैसे भूमादि खोदकर जल प्राप्त करना।

ध्यान देने योग्य बातें

स्त्रियाँ जो कुछ कहती हैं या करती हैं वह कुलाचार कहलाता है। अवश्य करना चाहिए। यदि आपको कहीं भ्रम होता है तो कुल की श्रेष्ठ औरतों से विचार-विमर्श करलें तथा अपनी पत्नी को भी उनसे कुलाचार सीखने की राय दें।

(१) गर्भाधान, (२) पुन्सवन, (३) सीमन्त, (४) जातकर्म तथा नान्दी मुख श्राद्ध, (५) नामकरण, (६) निष्क्रमण, (७) अन्न प्राशन, (८) जन्मोत्सव, (९) चूड़ा कर्म, (१०) व्रत बन्ध, (११) केशान्त, (१२) कर्ण वेध, (१३) उपनयन, (१४) वेदारम्भ, (१५) समावर्तन, (१६) विवाह—ये १६ संस्कार प्रमुख रूप से किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त छोटे-मोटे अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्कार जैसे—गर्भ न स्थापित होने पर, अशुभ काल के रजोदर्शन में, मेधा जनित, प्रसव पीड़ा इत्यादि में, षष्ठी महोत्सव संस्कार करना भी अनिवार्य है।

तत्त्वदर्शी मनुष्यों ने जल को "नारा" वहीं उनका निवास होने से नारायण कहा गया। सहस्र शीर्ष, पाँव, नेत्र इत्यादि होने से सहस्र शीर्षा इत्यादि कहा गया। इससे यही आदित्य पुराण पुरुष कहा गया है।

धर्म—भारतीय धर्म शास्त्रों में मानव जीवन का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष बताया गया है। इसमें धर्म का उल्लेख प्रथम इसलिए किया गया है कि बिना धर्म के विचार किये जो धन वैभव प्राप्त किया जाता है वह कल्याणकारी नहीं होता।

भविष्य पुराण का कथन है कि—

परित्यक्ते तदर्थ कामौ यौ स्याता धर्म विर्वजितौ।
सर्व लोक विरुद्ध च धर्ममप्याचरेन्नतु॥

अर्थात् धर्म रहित अर्थ काम को त्याग देना चाहिए। जो समस्त लोक विरुद्ध धर्म के हैं उसको यत्न पूर्वक त्याग देना कल्याणकारी है। धर्म से अर्थ, तथा अर्थ से काम तथा मोक्ष प्राप्त करके लोग सुखी होते हैं। धर्म का मार्ग ऊर्ध्वगामी है, विद्वजनों ने सदा यही स्थिर किया है।

आधुनिक युग में लोगों को यह कहते लेशमात्र संकोच नहीं होता है। वे स्पष्ट कहते हैं कि अजी धर्म में क्या रखा है वह तो सब झूठ है। धर्म वाले हमेशा दुःखी रहते हैं। बाह्य दष्टि से देखने पर ज्ञान होता है कि अधिकतर अच्छे पोशाक धारण करने, मोटर, हवाई जहाज पर चलने वाले, अच्छी कोठियों में रहने वाले अधिकतर धर्म के प्रति उदासीन रहते हैं तथा अरुचि दिखाते हैं। अधिकतर भ्रष्टाचार के अनैतिक ढंग से धनोपार्जन करने में संलग्न रहते हैं। इसी को देखकर साधारण बुद्धि वाले यही समझते हैं कि अधर्मी परम सुखी हैं।

इस भ्रम का कारण उनके सृष्टि नियम का न समझना है-- वे पैसे को सब कुछ समझे बैठे हैं। किन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो पूर्णरूपेण समझ में आ जायेगा कि वे लोग मानसिक, शारीरिक, पारिवारिक, शासनिक, सांसारिक कितने दृष्टियों

को झेलकर अशान्त हैं। उनसे ज्यादा सुखी एक मजदूर ईमानदारी से कमा कर रूखा-सूखा खाकर भर नींद सोता है तथा शान्ति के साथ समय व्यतीत करता है।

वृक्षारोपण—इसका महत्व संसार में पुत्र प्राप्ति से कम नहीं है। क्योंकि पुत्र बड़ा होकर किसी का कुछ अहित भी कर सकता है किन्तु वृक्ष सर्वदा फल, फूल, छाया, दातुन इत्यादि देकर आपको सुखी करेगा तथा निरन्तर लोक कल्याण करते हुए आपको पुण्य का भागीदार बनाता है।

सामाजिक कर्तव्य पालन—आज संसार में धर्म, राजनीति, समाजनीति को एक-दूसरे से पृथक मानने की प्रवृत्ति हो गई है। अनेक प्रसिद्ध नेता और समाज में आदरणीय माने जाने वाले व्यक्ति भी व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में अखाद्य, अक्षोभ तथा वर्जित कर्म को व्यक्तिगत बताकर समाज के सामने दूषित कार्य करते रहते हैं। किन्तु प्राचीन युग में ऐसा नहीं होता था। उपर्युक्त लोग मंच पर खड़े होकर अक-बक करते रहते हैं। किन्तु उसका प्रभाव जनता पर कितना पड़ता है यह सभी लोग जानते हैं।

पुराणों में—कहा गया है यज्ञ (श्रम) करते समय जो आनंद तथा प्रसन्नता से रहित और क्रोध युक्त होकर निकृष्ट वस्तुएँ प्रदान करता है वह कृपण संपूर्ण धर्मों से बहिष्कृत तथा समाज में अनादर का पात्र होता है।

माता, पिता, गुरु का त्याग करने वाला, शौच तथा आचारहीन व्यक्ति घृणा का पात्र होता है। जिसने जीते जी माता-पिता से मुख मोड़ लिया, हवन इत्यादि त्याग दिया, झूठ-मूठ साधु बनकर लोगों को ठगता है। बेटी बेचता है। छल करके

दूसरे का धन लेता है स्त्री की कमाई, स्त्री के धन से जीवन यापन करता है। वह अधर्म व पुरुषार्थ विहीन कहा जाता है।

पाँच प्रकार के रुष्ट—जिसका मन सदा क्रोध से भरा रहता है। अपने से निम्न व्यक्ति को देखकर क्रोधायुक्त वाणी बोलता है। भृकुटियाँ टेढ़ी रखता है तथा क्रुद्ध रहता है, ये पाँचों रुष्ट कहलाते हैं। ये सदा निरर्थक बातों में लगे होने से धर्म-कर्म से उदासीन होते हैं।

सात दुष्ट—रात-दिन निद्रा में रहने वाला, व्यसनों में आसक्ति रखने वाला, स्त्रियों को भ्रष्ट करने वाला, दुष्ट लोगों से बात करने वाला, अकेला मिष्ठान्नादि पदार्थों को खाने वाला सज्जन पुरुषों की अकारण निन्दा करने वाला दुष्ट है।

जो द्विज निगम—आगम आदि शास्त्रों को न पढ़ता ही है, न पढ़ाता ही है, न कभी सुनता ही है वह भी दुष्ट ही है।

संसार में चार प्रकार के व्यक्ति—

(१) दूसरों को खिलाकर ही प्रसन्न होता है।

(२) अपना खाकर तथा दूसरों को खिलाकर प्रसन्न रहता है।

(३) केवल अपने भोजन से ही तृप्त होता है।

(४) न स्वयं खाता है न दूसरों को खाने देता है।

संसार में लोग चार प्रकार से भूखे रहते हैं।

(१) भोजन का अभाव रहने से।

(२) भोजन का साधन होते हुए बनने के अभाव से।

(३) सब कुछ रहते हुए समय नहीं मिलता कि भोजन करें।

(४) सब कुछ रहने पर भी पेट में बीमारी होने के कारण।

संसार में चार प्रकार के सुखी—

(१) आत्म सुखी (२) परिवार सुखी (३) सर्व संसार सुखी
(४) अध्यात्म सुखी।

चार योगी—

(१) आत्म योगी (२) परमात्म योगी (३) कर्म योगी
(४) धर्म योगी।

चार भोगी उत्तम हैं—

(१) आत्म भोगी (२) संसार भोगी (३) ज्ञान भोगी
(४) परमात्म भोगी।

चार त्यागी—

(१) आत्म त्यागी (२) अहंकार त्यागी (३) स्पृहा त्यागी
(४) लोभ त्यागी उत्तम हैं।

।। ओ३म श्री विष्णवे नमः ।।

श्री मार्कण्डेय पुराण

महाभारत सम्बन्धी चार शंकायें

नारायणंनमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वतीं व्यासंततोजयमुदीरयेत् ॥

नर, नारायण, नरोत्तम तथा देवी सरस्वती को प्रणाम करके जप कीर्तन एवं पुराण आदि का पाठ करना चाहिए ।

एक समय महर्षि व्यास जी के परम तेजस्वी एवं तपस्वी शिष्य जैमिनि ने वेदज्ञ, सर्वशास्त्रज्ञ महा-तपस्वी मार्कंण्डेय जी से 'महाभारत' नामक ग्रन्थ के विषय में कुछ शंका प्रगट करते हुए निवेदन किया और बोले—हे भगवन ! महर्षि व्यास जी द्वारा रचित 'महाभारत' नामक ग्रंथ सम्पूर्ण शास्त्रों में ठीक उसी प्रकार श्रेष्ठ है जिस प्रकार कि देवताओं में विष्णु, मनुष्यों में ब्राह्मण और आभूषणों में चूड़ामणि । क्योंकि इस महाग्रन्थ में धर्म, अर्थ, काम

एवं मोक्ष का अलग-अलग सुन्दर वर्णन है। यह पवित्र शब्दों से युक्त, छन्द एवं अलंकारों से परिपूर्ण तथा कर्ण प्रिय है। इसलिए यह धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, एवं मोक्षशास्त्र भी है। यह महान ग्रन्थ 'महाभारत' शास्त्र, वेद एवं श्रुतियों से पूर्ण है। फिर भी हे प्रभो ! मुझे इस ग्रन्थ के विषय में कुछ शंकायें उत्पन्न हो गई हैं जिसे ठीक-ठीक समझने हेतु मैं आपके समक्ष उपस्थित हूं। कृपया आप उसे समझाने की कृपा करें। मेरी शंकायें ये हैं।

(१) विश्व सृष्टि, स्थिति और संहारकर्त्ता जनार्दन वासुदेव ने निर्गुण होते हुए भी मनुष्यत्व को क्यों धारण किया ?

(२) द्रुपद की पुत्री द्रौपदी पाँच पाँडवों की पत्नि कैसे हो गई ?

(३) बलराम जी ने तीर्थ यात्रा के समय ब्रह्म-हत्या का प्रायश्चित किस प्रकार किया।

(४) तथा पाण्डवों से रक्षित द्रौपदी के महारथी पुत्रों ने अनाथ के समान अविवाहित ही प्राण क्यों छोड़ दिये ? कृपया इसे विस्तार पूर्वक समझाने का कष्ट करें।

मार्कण्डेय जी जैमिनि ऋषि से बोले—इस समय मैं सन्ध्या वन्दन आदि करने जा रहा हूं। अतः विस्तार पूर्वक समझाने के लिए मेरे पास समय का अभाव है। इसलिए पिगाँक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख आदि द्रोण पुत्र पक्षी श्रेष्ठ सभी शास्त्रों के अच्छे जानकार हैं। वे विन्ध्याचल पर्वत की गुफाओं में निवास करते हैं। उन सबसे वेदशास्त्र उपनिषद आदि के बारे में जो भी प्रश्न करोगे। उन सभी प्रश्नों का उत्तर देकर वे भलीभांति समझाने में समर्थ हैं उन्हीं के पास जाओ। जैमिनि ऋषि ने विस्मय पूर्वक पुनः प्रश्न किया—हे ब्रह्मन्! क्या पक्षी भी मनुष्यों की तरह वार्ता करने में समर्थ एवं सर्वशास्त्रज्ञ हैं। तिर्यग्योनि में उत्पन्न होने पर भी उन्हें इस प्रकार का ज्ञान कैसे हुआ एवं द्रोण पुत्र किस प्रकार हुए? तथा वे द्रोण कौन हैं? कृपया इसे भी समझाने की कृपा करें।

मार्कण्डेय जी बोले—एक बार महर्षि नारद जी देव लोक में गये। वहाँ उन्होंने देवराज इन्द्र को अप्सराओं के मध्य देखा। इन्द्र ने अपने आसन से उठकर नारद जी का स्वागत किया एवं सुन्दरतम आसन पर बैठने के लिये विनय पूर्वक कहा। अप्सरायें

भी नारद जी के स्वागत में हाथ जोड़े नयन झुकाये खड़ी थीं। देवेन्द्र ने नारद जी से प्रार्थना की। कि हे ब्रह्मन्! यदि आपकी इच्छा हो तो यहाँ उपस्थित रम्भा, मिश्रकेशी, तिलोत्तमा, उर्वशी, मेनका नामक अप्सराओं में से कोई नृत्यकला का प्रदर्शन करे। कुछ देर सोचने के बाद नारद जी बोले—ठीक है, इन अप्सराओं में जो भी अधिक रूपवती व गुणवती हो वही नृत्य गान करे। नारद जी की इस वाणी को सुनकर सभी अप्सरायें अपने को श्रेष्ठ रूपवती व गुणवती समझती थीं। इस प्रकार अप्सराओं में वाद-विवाद को देखकर इन्द्र ने नारद जी को ही यह निर्णय करने का भार सौंपा कि कौन अप्सरा रूपवती एवं गुणवती है। अप्सराओं की भी प्रार्थना पर नारद जी ने कहा जो अप्सरा तप में ध्यानस्थ दुर्वासा ऋषि को अपनी तरफ आकर्षित कर लेगी वही अप्सरा रूपवती एवं गुणवती होगी नारद जी की इस शर्त को सुनकर सभी अप्सरायें अपने मन में चिन्ता करने लगीं फिर प्रायः सभी ने महर्षि दुर्वासा को अपनी ओर से आकर्षित करने में असमर्थता प्रकट की। परन्तु वपु नामक अप्सरा ने जिसने कि अनेक तपस्वियों के तप को भंग किया था उसी ने महर्षि

दुर्वासा को अपनी ओर आकर्षित कर लेने का दृढ़ता पूर्वक निश्चय किया।

वपु अप्सरा हिमालय में जहाँ कि महर्षि दुर्वासा तपस्या में लीन थे वहाँ पहुंच गई। दुर्वासा के आश्रम से एक कोस की दूरी पर एक वृक्ष की डाली पर बैठ कर कोकिल कंठी अप्सरा वपु अपने मधुर स्वर सरगम से ऋषि का ध्यान तपस्या से हटाकर अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करने लगी। वपु की मधुर तान को ऋषि दुर्वासा ने सुना। जिससे वे विस्मित तो हुए ही परन्तु साथ ही क्रोधित भी हुए। वे सर्वाङ्ग सुन्दरी वपु को देखकर क्रोध पूर्वक बोले— अरे मदोन्मत्त खेचरी ! तू मेरे कष्टों से अर्जित की गई तपस्या को नष्ट करने हेतु यहाँ उपस्थित हुई है। हे दुर्बुद्धे ! जा तू मेरे क्रोध से दूषित होकर सोलह वर्षों तक पक्षी कुल में जन्म लेकर रहेगी। उस समय तेरे चार पुत्र होंगे। परन्तु तुम पुत्रोत्पत्ति के प्रेम से दूर ही रहोगी और शस्त्र द्वारा मारे जाकर पुनः स्वर्ग को प्राप्त होवोगी। कहकर महर्षि दुर्वासा पृथ्वी को त्याग करके आकाश को चले गये।

———

महाभारत युद्ध में पक्षी शावकों का जन्म

मार्कण्डेय जी ने जैमिनि ऋषि से पक्षी के शावकों (बच्चों) के जन्म के विषय में वर्णन करते हुए कहा—कि अरिष्टनेमि के पुत्र पक्षिराज गरुड़ के पुत्र सम्पाती के महाशक्तिशाली एवं वायु के समान तीव्रवेग वाला पुत्र, सुपार्श्व का पुत्र, कुन्ती का पुत्र, प्रलोलुप के दो पुत्र कंक और कन्धर हुए। एक बार कंक कैलाश पर्वत पर गया। वहां उसने कुबेर-किंकर विद्युद्रूप नामक राक्षस को देखा। वह राक्षस सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये एक विशाल स्वच्छ शिला पर बैठा था और अपनी पत्नी को बगल में बैठाकर शराब पी रहा था। राक्षस ने कंक को देख लिया और क्रोध करके बोला—अरे नीच पक्षी ! तू देख नहीं रहा मैं अपनी पत्नी के साथ यहाँ अकेले बैठा हूं। इस समय तुझे यहाँ आने की हिम्मत कैसे हुई ?

कंक पक्षी बोला—इस पर्वत पर जिस प्रकार तुम्हारा अधिकार है उसी प्रकार सभी अन्य जीवों का भी समान अधिकार है। तुम्हें इस पर्वत से इतना

गहरा प्रेम क्यों है। बस कंक का इतना कहना ही था कि विद्युद्रूप राक्षस ने कंक का सिर काट डाला। कन्धर नामक पक्षी अपने भाई कंक की मृत्यु से अत्यन्त दुःखी हुआ। कन्धर ने कैलाश जाकर अपने भाई कंक की अन्त्येष्टि की और क्रोध में भरकर दीर्घ स्वाँस लेने लगा। कन्धर पक्षी क्रोधावेश में विद्यूद्रूप राक्षस के पास पहुंचा। वह राक्षस स्वर्णासन पर बैठ कर शराब पीने में मस्त था उसका मुख सिन्दूरिया लाल था तथा आँखें रक्तिम वर्ण की थीं। शरीर पर चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का लेप था। उसके पास में कोकिल कण्ठी सर्वांग सुन्दरी मदनिका नाम की पत्नी बैठी थी। कन्धर ने अपने भाई कंक के हत्यारे विद्युद्रूप को धिक्कारते हुए अपने साथ युद्ध करने के लिए ललकारा। राक्षस भी कन्धर को जान से मार देने की धमकी देते हुए हाथ में कृपाण लेकर युद्ध के लिए चला। कंधर व राक्षस में भयंकर युद्ध छिड़ गया। भीषण क्रोध में राक्षस ने अपनी चम-चमाती तलवार को पक्षी कन्धर पर चला दिया। परन्तु कन्धर ने अति तीव्रता से अपना बचाव करते हुए अपनी चोंच से तलवार को पकड़ लिया और पैरों से टूक-टूक कर दिया। अब दोनों में मल्ल युद्ध

प्रारम्भ हो गया। युद्ध में कन्धर ने राक्षस को परास्त कर यमलोक पहुंचा दिया। राक्षस की पत्नी मदनिका ने कन्धर को अपना पति बना लिया। कन्धर उसे लेकर अपने घर आ गया। मदनिका स्वेच्छा से बहुवेश धारिणी मेनका की पुत्री थी जो स्वयं भी इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ थी। अतः वह भी पक्षी रूप धारण कर कन्धर के साथ रहने लगी। इस मदनिका के गर्भ से ही दुर्वासा ऋषि द्वारा शापित वपु ने पक्षी रूप में जन्म धारण किया। कन्धर ने उसका नाम तार्क्षी रखा। नन्दपाल नामक ब्राह्मण के चार पुत्र थे। जिनमें छोटे पुत्र का नाम द्रोण था। वेदज्ञ द्रोण से सर्वांग सुन्दरी तार्क्षी का विवाह हुआ। तार्क्षी गर्भवती होने पर कुरुक्षेत्र गई। वहाँ पाण्डवों एवं कौरवों के मध्य भीषण युद्ध हो रहा था। युद्ध क्षेत्र में तार्क्षी ने पहुंच कर देखा कि भगदत्त एवं अर्जुन में भयंकर युद्ध हो रहा है। दोनों तरफ से भीषण बाणों की वर्षा हो रही है। उसी बीच अर्जुन का एक बाण तार्क्षी को लग गया। तभी तार्क्षी के गर्भ से सुन्दर धवल वर्ण के चार अण्डे पृथ्वी पर गिर पड़े। और ठीक उसी समय भगदत्त के हाथी सुप्रतिक के गले से घण्टा, बाण

द्वारा कटकर जमीन पर गिर पड़ा। दैववशात् वह घण्टा गिरा तो अण्डे पर ही। परन्तु सौभाग्य वश वह अण्डे को न तोड़कर ऐसे गिरा कि उसने अण्डों को ढक्कन की तरह ढक लिया। भगदत्त मारा गया। फिर कौरवों-पाण्डवों का भीषण युद्ध चलता रहा। युद्ध समाप्त होने के बाद धर्मराज युधिष्ठिर भीष्म के पास धर्मोपदेश सुनने गये।

संयतात्मा वाले द्विजोत्तम शमीक मुनि के शिष्यों सहित उस स्थान पर पहुंच गये जहां कि तार्क्षी पक्षी के अण्डे घण्टे से ढके थे। अण्डे से बच्चे बाहर निकल आये और घण्टे के अन्दर ही चीं-चीं का शोर मचा रहे थे। शमीक मुनि ने पक्षी के बच्चों की आवाज को सुना। घंटा उठाया तो उन्होंने माता-पिता से रहित व पंखहीन बच्चों को देखा। वे अपने साथी ब्राह्मणों से विस्मित होकर बोले हे ब्राह्मणों! देखो प्रभु की कैसी लीला है। इस भयानक युद्ध के मध्य भी ये बच्चे सुरक्षित रह गये। अर्थात् जिसके भगवान ही रक्षक हैं उसका बाल बांका कोई भी नहीं कर सकता। किसी भी प्राणी का जीवन-मरण हरि-इच्छा पर ही निर्भर है।

तभी तो यह के बच्चे भीषण युद्ध के समय हाथी

घोड़ों व रथों द्वारा रौंदे जाने से भी सुरक्षित रह गये। यह कितना आश्चर्य है कि इन अण्डों को पृथ्वी पर गिरने के साथ ही तत्क्षण घण्टे को भी गिरकर ऊपर ढक लेना, तथा मांस रक्त व वसा से पृथ्वी का ढके जाना यह सब एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक ही साथ घटित हो गए। ऐसा जान पड़ता है कि ये साधारण पक्षी नहीं हैं तभी ये इस विषम स्थिति में भी सुरक्षित हैं। अतः हे ब्राह्मणों! इन पक्षी शावकों को आश्रम में लेकर जाओ और इन्हें वहां रखना जहां ये बिल्ली, नेवले, बाज आदि से सुरक्षित रह सकें। इन्हें बचाने का हमें हर सम्भव प्रयास करना चाहिए। मुनि के शिष्य उन बच्चों को लेकर आश्रम को गये और यहां मुनि ने वेदोक्त शास्त्रीय विधि से हवन आदि कर्म करके फल, फूल, पुष्प और कुश लेकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण, बृहस्पति, कुबेर, वायु, विधाता का विधिवत् पूजन किया।

———

पक्षियों का शाप-वर्णन

मार्कण्डेय जी ने पक्षियों के विषय में वर्णन करते हुए कहा—कि शमीक मुनि ने पक्षी के बच्चों का अच्छी तरह पालन-पोषण किया। ये बच्चे अब बड़े होकर इधर-उधर पेड़ों की डालियों झाड़ियों, नदी, नालों आदि स्थलों में उड़ते हुए भ्रमण कर रहे थे। थक जाने पर आश्रम में आ जाते थे। ये बच्चे मुनि के प्रभाव से ज्ञानी भी हो गये थे।

एक दिन शमीक मुनि अपने शिष्यों को धर्मोपदेश दे रहे थे। तभी उन पक्षियों ने प्रदक्षिणा करके मुनि के चरणों में प्रणाम किया और बोले—हे ब्रह्मन ! आपने हम लोगों को मृत्यु से बचाया है तथा सुरक्षित निवास देकर आहार एवं जल दिया है। अतः आप ही हमारे पिता एवं गुरु हैं। गर्भकाल के समय ही माता का स्वर्गवास हो गया था तथा पिता ने भी हम लोगों का पालन-पोषण नहीं किया। हम लोग तो पृथ्वी पर पड़े-पड़े कीड़ों की तरह तड़पते हुये सूख रहे थे परन्तु उसी समय आपने घंटा

उठाकर हम लोगों के संकट को दूर किया तथा तभी से आप हम लोगों का लालन-पालन कर रहे हैं तथा आपकी कृपा से हमें ज्ञान भी प्राप्त हो गया है। अब हम लोगों को क्या करना चाहिए, कृपया मार्ग निर्देशन करें। आश्चर्य से परिपूर्ण शमीक ऋषि ने अपने शिष्यों से कहा—देखो ! मैंने पहले ही कहा था न। ये कोई साधारण पक्षी नहीं हैं, सो ठीक ही प्रमाणित हुआ। फिर वे पक्षियों से बोले—तुम लोग मुझे सत्य-सत्य बताओ कि इस प्रकार स्पष्ट उच्चारण किस प्रकार किया। तथा किस शाप के कारण तुम लोगों का यह रूप व वाणी विकृत हुई।

पक्षीगण बोले हे मुनिवर ! अति प्राचीन काल में विपुलस्वान नामक ऋषि के दो पुत्र सुकृष और तुम्बरू थे। सुकृष जितेन्द्रिय एवं महान तपस्वी थे। हम उन्हीं लोगों के पुत्र हैं। हम लोग सदा ही विनय आचार भक्ति और नम्रता के साथ रहते थे। वे समिधा, पुष्प तथा भोजन आदि जिस वस्तु को चाहते थे। हम लोग उसकी व्यवस्था करते थे। एक दिन देवराज इन्द्र एक विशाल पक्षी का रूप धारण कर आये। जिनके सभी पंख तहस-नहस होकर ताम्र वर्ण के हो गये थे तथा शरीर भी उनका शक्तिहीन होकर

शिथिल हो गया था। पक्षी ने पिताजी से कहा—हे विप्र! मैं बहुत भूखा हूं और भूख से तड़प रहा हूं। अतः आप मेरी क्षुधा को मिटाकर मेरी रक्षा करें। मैं विन्ध्याचल का निवासी हूं। पक्षिराज गरुड़ के पंखों की वायु के झोंकों से पीड़ित होकर मैं मूर्छित अवस्था में गिर गया था। सात दिनों तक बेहोश पड़ा रहा आठवें दिन ज्ञान हुआ। थोड़ा स्वस्थ होने पर भूख से पीड़ित होकर मैं आपकी शरण में आया हूं। भूख से मेरे प्राण निकलना चाहते हैं। अतः आप मेरी भूख मिटाकर रक्षा करें।

मेरे पिता मुनि ने पक्षी से कहा—कहो! क्या भोजन करोगे? तुम्हारे लिये क्या भोजन लाऊँ? पक्षी बोला—मेरी भूख मनुष्य के मांस खाने से शांत होगी। कृपया आप इसी की व्यवस्था करें। मुनि ने पक्षी से कहा—तुम कौमारावस्था एवं युवावस्था को समाप्त कर वृद्धावस्था को प्राप्त हुये फिर इतने नृशंस क्यों हुए हो? खैर! मुझे इससे क्या लेना-देना, यह तो निश्चित ही है कि दुष्ट प्राणियों की दुराशा नहीं मिट पाती। ठीक है मैं तुम्हारे भोजन की व्यवस्था करता हूँ। कहकर पिता ने शीघ्र ही हम लोगों को बुलाकर हम लोगों की प्रशंसा करते

हुए कहा—तुम सभी विद्वान हो, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न करके सन्तानोत्पत्ति द्वारा मेरे समान ही ऋण मुक्त हो चुके हो। मैं तुम लोगों का पिता हूं। यदि तुम लोग मुझे बड़ा व पूज्य मानते हो तो हृदय से मेरे वचनों का पालन करो पिता की बातों को सुनकर हम सबने कहा—आप की जो भी आज्ञा हो। हम सबको शिरोधार्य है। आप आदेश करें। तब उन्होंने निष्ठुरता पूर्वक हम लोगों को पक्षी का आहार बन जाने के लिये कहा। परन्तु हम सबने प्राण व शरीर के मोह से पक्षी का आहार बनने से मना कर दिया। इस पर पिताजी नाराज हो गये एवं क्रोधित होकर उन्होंने तिर्यक योनि में जन्म धारण करने का हम लोगों को शाप दिया। फिर वे ऊर्ध्वदैहिक अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न करके पक्षी से बोले—तुम मेरा भक्षण कर अपनी भूख शान्त करो। कहकर योगबल से प्राण त्याग करने की तैयारी करने लगे। तभी इन्द्र अपना पक्षी रूप बदल कर साक्षात् स्वरूप में मुनि के सामने उपस्थित हो गये और बोले—हे पाप एवं छल रहित ब्राह्मण! आपकी परीक्षा लेने के लिए ही मैंने यह रूप धारण किया था। आप मुझे क्षमा करें। आपको इन्द्र जाल की

प्राप्ति होगी तथा आप की तपस्या में कभी कोई विघ्न उपस्थित नहीं होगा। कह कर देवराज इन्द्र चले गए।

इन्द्र के चले जाने पर हम सबने अपने पिता से उनकी आज्ञा का उल्लंघन करने का पश्चाताप किया एवं उन्हें प्रसन्न करके उनके द्वारा दिए गये शाप के निवारणार्थ प्रार्थना की। हम लोगों ने कहा—हे पूज्यवर, पिताजी ! हम लोगों ने मृत्यु के भय से भयभीत होकर अपने जीवन के प्रति मोह करके आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर दिया था, हम लोग आपके बच्चे हैं अतः आप हमें क्षमा करें। अपने शाप से मुक्त करें।

ऋषि ने कहा—हे पुत्रों ! मेरे मुख से कोई भी असत्य वाणी नहीं निकलती। अतः यह शाप भी मिथ्या नहीं हो सकता। परन्तु तुम लोगों ने अपनी गलती का पश्चाताप करके हमें प्रसन्न किया है इसलिए तुम लोग तिर्यक्योनि में उत्पन्न होकर भी अत्यन्त ज्ञानी होओगे एवं ज्ञान के द्वारा सन्मार्ग का अवलोकन करते हुए अपने पापों को नष्ट कर सिद्धि प्राप्त करने में सक्षम होओगे। हे प्रभो ! प्राचीन काल में अपने पिता के द्वारा दिए गये शाप के कारण

ही हम लोगों का जन्म पक्षी योनि में हुआ। रणभूमि में हम लोग उत्पन्न हुए। वहां से आपने हमें लाकर पाला पोषा। यह सब कार्य दैवाधीन ही हुआ। फिर वे प्रसन्न होकर शमीक ऋषि की आज्ञा पाकर उनसे सम्पूर्ण क्रिया का उपदेश ग्रहण करके विन्ध्याचल पर्वत के अत्यन्त स्वच्छ जल से परिपूर्ण शिखर पर सानन्द रहने लगे।

भगवान का चतुर्व्यूहावतार

मार्कण्डेय जी ने जैमिनि से कहा कि वह ज्ञानी पक्षी इस समय विन्ध्याचल की कंदरा में निवास करते हैं। तुम उनकी आराधना करके उन्हें प्रसन्न करो। वे तुम्हारी शंका का समाधान कर देंगे। जैमिनी ऋषि ने मार्कण्डेय को प्रणाम करके विन्ध्याचल को प्रस्थान किया। वहां पहुंचने पर उन्होंने पक्षियों द्वारा स्पष्ट उच्चारण स्थान सौष्ठव से युक्त दोषों से रहित वेद-पाठ करते हुए सुनकर आश्चर्य चकित हुए। फिर अपने मन में विचार करने लगे—यह कैसा आश्चर्य है कि ये द्विजोत्तम पक्षी (मुनि कुमार) अपने श्वांस को नियन्त्रित किए दोष रहित, बिना रुके एक ही स्वर में स्पष्ट उच्चारण करते हुए

वेदपाठ कर रहे हैं। ऐसा जान पड़ता है कि भाई, मित्र, दारा-सुख-सम्पत्ति पुत्र आदि सभी त्याग कर देते हैं। परन्तु सरस्वती मनुष्य का त्याग कभी नहीं करती। ऐसा विचार करते हुए मुनि ने पर्वत कंदरा के अन्दर प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने विशाल शिला पर बैठे उन पक्षियों (पिंगाक्ष, विबोध, सुमुख, सुपुत्र) को दोषरहित स्पष्ट उच्चारण में वेदपाठ करते हुए देखा। जैमिनि ने हर्ष व शोक की मुद्रा में उन पक्षियों से कहा—हे विप्र श्रेष्ठों तुम्हारा कल्याण हो मैं महर्षि व्यास का शिष्य जैमिनि हूं। यहाँ तुम्हीं लोगों के दर्शनार्थ आया हूं। तुम लोगों को पिता के शाप के कारण तिर्यकयोनि में जन्म ग्रहण करना पड़ा, परन्तु इसके लिए दुःखी नहीं होना चाहिए। क्योंकि यह सब भाग्य का खेल है। ऐसा प्रायः देखने में आता है कि धनी से धनी व्यक्ति महा कंगाल हो जाता है और दरिद्री से दरिद्री व्यक्ति प्रचुर धन सम्पत्ति वाला हो जाता है। बड़े से बड़ा हत्यारा भी किसी के हाथों नहीं मारा जाता और सदा दूसरों के प्राणों की रक्षा करने वाला दूसरों के हाथों मारा जाता है। ये सभी घटनायें पुण्य के क्षीण होने पर ही होती हैं। धन, सम्मान, यश, अपयश आदि सब में भाग्य ही मूल कारण है। इसलिए उसको भाग्य पर छोड़कर न हर्ष

करना चाहिये न शोक ही। क्योंकि हर्ष एवं शोक पर विजय प्राप्त कर लेना ही सच्चा ज्ञान है।

इसके बाद पक्षियों ने जैमिनि ऋषि का पाद्य एवं अर्घ्य से पूजन करके मुनि को प्रणाम किया एवं कुशल-मंगल पूछा। अपने पंखों की शीतल वायु से मुनि के श्रम को दूर किया। फिर बोले—हे महात्मन ! आज आपके चरण कमलों का दर्शन करके हम लोगों का जीवन सार्थक हो गया। क्योंकि देवताओं द्वारा पूज्य आपके चरणों का दर्शन आज प्राप्त हुआ है। जो पिता की क्रोधाग्नि हम लोगों के शरीर में दाह पैदा करती थी वह आज आपके दर्शन मात्र से ही शान्त हो गई है। आपने यहाँ तक आने का कष्ट कैसे किया ? हम आपकी क्या सेवा करें। कृपया आदेश करें।

जैमिनि ऋषि बोले—विप्रगण ! 'महाभारत' नामक शास्त्र में जो मेरे मन में संदेह है उसी के समाधान के लिए यहाँ आया हूं। महात्मा मार्कण्डेय जी ने उसके समाधान हेतु आप लोगों के पास मुझे आने का निर्देश दिया था। अतः आप लोग हमारे प्रश्नों को सुनकर मेरी शंका दूर करते हुए सविस्तार समझाने की कृपा करें।

पक्षी बोले हे मुनि श्रेष्ठ ! चारों वेद, सभी धर्मशास्त्र, सभी वेदांगों (जैसे शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त,

छन्द एवं ज्योतिष) तथा अन्य वेद तुल्य शास्त्रों के हम अच्छे ज्ञाता हैं फिर भी यह दृढ़ निश्चय पूर्वक नहीं कहेंगे कि हम आपके सभी प्रश्नों के शंका समाधान करने में समर्थ होंगे ही। फिर भी हम आपके सभी प्रश्नों के उत्तर सविस्तार देने का प्रयत्न करेंगे। इसलिए आपके हृदय में महाभारत के प्रति जो भी शंकायें हैं, आप कहें।

जैमिनी ने एक-२ करके चार प्रश्नों को रखा। जो निम्न हैं।

प्रश्न १. सम्पूर्ण कारणों के कारण और समस्त ब्रह्मांड के आधार जनार्दन वासुदेव ने मनुष्यत्व को क्यों प्राप्त किया।

प्रश्न २. राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी अकेले रहते हुए भी पाँच पांडवों की पत्नी क्यों हुई। यह अत्यन्त शंका का विषय है।

प्रश्न ३. महाशक्तिशाली हलधर बलराम ने ब्रह्महत्या रूपी पाप से मुक्त होने के लिए तीर्थयात्रा क्यों की ?

प्रश्न ४. पाण्डवों के रहते हुए भी द्रौपदी के अविवाहित पुत्र अनाथों की तरह क्यों मरे।

कृपया आप मेरी इन शंकाओं को दूर करने की कृपा करें।

पक्षियों ने कहा—देवताओं के अधीश्वर, सर्वव्यापी, महान, प्रभावशाली, अप्रमेय, अविनाशी, शाश्वत अव्यय स्वरूप, सत्व, रज और तम तीनों गुणों से युक्त निर्गुण, चतुर्व्यूहात्मक (विष्णु के चार रूप शरीर पुरुष, छन्द पुरुष, वेद पुरुष एवं महापुरुष) वरिष्ठ, गरिष्ठ, वरेण्य और अमर रहने वाले उस परम पुरुष को प्रणाम करते हैं। ऋग्वेद, सामवेद आदि जिनके मुख से उत्पन्न हो करके तीनों लोकों को पवित्र करता है। उस आदि देव ब्रह्मा को नमस्कार है। जिनके मात्र एक बाण के आघात से ही सम्पूर्ण दैत्य परास्त होकर याज्ञिकों के यज्ञ को नष्ट नहीं कर पाते। उन देवाधिदेव भगवान शंकर के चरण कमलों में प्रणाम है। महर्षि व्यास जो जिन्होंने महाभारत को लक्ष्य करके धर्म अर्थ, काम और मोक्ष आदि का वर्णन किया है उनके सिद्धान्तों का हम पूरा-२ प्रतिपादन करेंगे।

तत्वदर्शी मुनियों के अनुसार 'नीर' का अर्थ जल होता है और जल ही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के रचयिता का एक-मात्र 'अयन' अर्थात गृह होता है। इसलिए उन्हें नारायण कहा जाता है। उन नारायण के दो रूप होते हैं। एक सगुण और दूसरा निर्गुण। नारायण की एक मूर्ति ऐसी होती है जिसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। विद्वत लोग उसे शुक्लवर्ण अर्थात सतोगुणी मानते हैं। योगी लोग

इसी रूप का ध्यान करते हैं। जो कि चन्द्र सूर्य आदि के तेजों से परिपूर्ण होते हैं। इस प्रधान मूर्ति का नाम ही वासुदेव है जो कि अत्यन्त ही दूर एवं अत्यन्त समीप समझा जानी चाहिए।

इस मूर्ति में ममता लेशमात्र भी नहीं होती। इसके रूप वर्ण आदि जो भी भाव हैं वे सब वास्तविक नहीं काल्पनिक होते हैं वह सदा ही विराजमान, सदा ही पवित्र एवं एकाकार वाली है। दूसरी मूर्ति को शेष नाम से पुकारते हैं। यह पृथ्वी के नीचे स्थिर होकर पृथ्वी को अपने सिर पर धाड़े रहती है। इस तिर्यकयोनि वाली मूर्ति को तामसी कहते हैं। नारायण की तीसरी मूर्ति प्रजापालन के कर्म को भी करती है। इसे सतोगुण युक्त तथा धर्म रक्षक भी कहा गया है। नारायण की चौथी मूर्ति जो जल के मध्य में सर्पशय्या पर शयन करती है वह रजोगुणी मूर्ति ही सृष्टि कार्य को करती है।

नारायण की तीसरी मूर्ति जो कि प्रजापालन का कार्य सम्पन्न करते हुए धर्म की रक्षा व स्थापना करती है। वह मूर्ति धर्म के हानि पहुंचाने वाले दुष्टों दानवों, दैत्यों व राक्षसों का नाश करती है और धर्म में लीन सभी देवताओं एवं सज्जनों की रक्षा करती है। यथा—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति जैमिनि।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजत्यसौ ॥

पक्षियों ने जैमिनि मुनि से कहा—हे जैमिनि जब-जब धर्म की हानि होती है अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब ही यह मूर्ति धर्म के उत्थान के लिए मनुष्य का अवतार ग्रहण करती है।

इसी नारायण की तीसरी मूर्ति ने वाराह रूप धारण करके समुद्र में डूबती हुई पृथ्वी को ऊपर उठाकर अपने पूर्व स्थान पर स्थापित किया था। इसी मूर्ति ने नृसिंह रूप धारण करके हिरण्यकश्यप का वध एवं विप्रचित्ति आदि दैत्यों का विनाश किया था। वामन आदि अनेक अवतार इसी मूर्ति ने ग्रहण किये। तथा इस समय भी मथुरा में कृष्णावतार के रूप में इसी मूर्ति ने अवतार ग्रहण किया है। इस प्रकार देवता, मनुष्य अथवा तिर्यक योनि में उत्पन्न वह मूर्ति वासुदेव की इच्छा से ही कार्य सम्पन्न करती है।

द्रोपदी के पाँच पति क्यों

पक्षियों ने द्रोपदी के पाँच पति होने के विषय में वर्णन करते हुए जैमिनि ऋषि से कहा—हे ब्रह्मन् ! एक बार प्रजापति त्वष्टा के पुत्र त्रिशिरा नीचे की तरफ मुख करके तपस्या कर रहे थे। त्रिशिरा की इस कठिन तपस्या को देखकर इन्द्र डर गये और उसे मार डाला। जिससे इन्द्र पर ब्रह्महत्या का दोष लगा। इस कारण इन्द्र का तेज नष्ट हो गया। इन्द्र के इस पाप कर्म के कारण तेज धर्म में लीन हो गया एवं इन्द्र तेजरहित हो गया।

पुत्र त्रिशिरा की मृत्यु से पिता त्वष्टा अत्यन्त ही दुःखी एवं व्याकुल हो गये, और क्रोधावेश में अपने सिर से जटा उखाड़ कर कहा—आज इन्द्र के पराक्रम एवं मेरे तेज को देवताओं सहित तीनों लोकों के प्राणी देखें। कहकर जटा की अग्निकुण्ड में आहुति दे दी। उस समय ही ज्वाला की मालाओं से युक्त, अति विशालकाय, विशाल दाढ़ों से युक्त काजल के वर्ण का भयंकर रूप वाला वृत्रासुर नामक राक्षस उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार बाण धनुष से छूटकर ऊँचाई की तरफ शीघ्रता से बढ़ता है। उसी प्रकार वृत्रा-

सुर भी दिन दूना रात चौगुना वृद्धि को प्राप्त होने लगा। वृत्रासुर इन्द्र का वध करने का प्रयत्न करने लगा। इन्द्र अपनी हत्या किये जाने के भय से अत्यन्त व्याकुल हो गये थे। अतः उन्होंने मरीच्यादि आदि सप्त ऋषियों से वृत्रासुर के साथ समझौता कराने का निवेदन किया। ऋषियों के प्रयास से वृत्रासुर एवं इन्द्र के बीच मित्रता स्थापित हो गई। परन्तु इन्द्र ने छल किया। सन्धि की जो शर्त थी उस शर्त को ताक पर रखकर धोखे से वृत्रासुर की हत्या कर दी।

वृत्रासुर की हत्या के कारण इन्द्र पर पुनः ब्रह्महत्या का पाप लगा। इस अपराध के कारण इन्द्र का बल वायु-देव में प्रविष्ट कर गया और इन्द्र बलरहित हो गए। फिर इन्द्र ने अहिल्या के पति गौतम का वेश धारण करके अहिल्या के साथ बलात्कार किया। उसी क्षण उस व्यभि-चारी इन्द्र की सर्वांग सुन्दरता निकलकर अश्विनि कुमारों में प्रवेश कर गई। फिर दैत्यों ने इन्द्र को सभी प्रकार से दुर्बल जानकर उन्हें परास्त करने के लिए राजपरिवारों में जन्म ग्रहण किया। दैत्यों के भार को सहन करने से पृथ्वी पीड़ित होने लगी। वह सुमेरु पर्वत पर देवसभा में गई और दैत्यों के भार से मुक्त कराने के लिए देवताओं से प्रार्थना की।

सभी देवताओं ने पृथ्वी का भार हल्का करने के लिए

अपने-अपने तेजांश से पृथ्वी पर जन्म ग्रहण किये। इन्द्र से तेज निकल कर धर्म में प्रविष्ट कर गया था उस तेज को धर्म ने कुन्ती से सम्पर्क कर उसके गर्भ में स्थापित किया जिससे महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर उत्पन्न हुए। ठीक इसी प्रकार पवन देव के द्वारा कुन्ती के गर्भ में स्थापित बल से भीम का जन्म हुआ। इन्द्र का आधा बल जो बचा था उसके द्वारा स्थापित कुन्ती के गर्भ से अर्जुन का एवं इन्द्र के रूप से युक्त दोनों अश्विनी कुमारों द्वारा माद्री के गर्भ से नकुल एवं सहदेव का जन्म हुआ। इस प्रकार इन्द्र ने ही इन पांचों पांडवों के रूप में जन्म लिया। इन्द्र की पत्नी शची कृष्णा (द्रौपदी) के रूप में यज्ञाग्नि से प्रकट हुई। इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि द्रौपदी एक ही इन्द्र की स्त्री थी किसी अन्य पाँच की नहीं।

बलदेव जी द्वारा ब्रह्महत्या का पश्चाताप करना

पक्षियों ने बलराम जी द्वारा ब्रह्महत्या का पश्चाताप करने एवं उनके निवारणार्थ सरस्वती में जाने का वृतान्त जैमिनि ऋषि को सुनाना प्रारम्भ किया। बोले—हे मुनि श्रेष्ठ! महाभारत के युद्ध के समय श्रीकृष्ण का अर्जुन के प्रति अत्यधिक प्रेम को देखकर विचार किया कि मैं तो

श्रीकृष्ण के बिना दुर्योधन के पास जाऊंगा नहीं और पांडवों का भी पक्ष लेकर अपने जामाता एवं प्रिय शिष्य दुर्योधन को भी नहीं मारूंगा। अतः मैं इस युद्ध में दोनों के मध्य मूक हो रहूंगा। किसी का भी पक्ष नहीं लूंगा। ऐसा विचार करके बलराम जी अपनी सेना के साथ द्वारका वापस आये।

द्वारका आकर बलराम जी ने ताड़ी के रस को पिया। ताड़ी के मद से उन्मत्त होकर बलराम जी अप्सराओं के समान मस्त अपनी स्त्री रेवती के हाथ को पकड़ कर अपने श्वसुर रैवत के सुन्दरतम उद्यान में गये। मद्य के प्रभाव से बलराम के पैर लड़खड़ा रहे थे। वे सुन्दर रम-णियों के मध्य घिरे थे। बलराम जी ने उद्यान में विभिन्न प्रकार के कमल पुष्प एवं हंसों जलमुर्गियों तथा अन्य जलीय पक्षियों व जन्तुओं से युक्त सुन्दर तालाबों को देखा सभी मौसम के फल वाले वृक्षों को देखा। विभिन्न प्रकार के वृक्षों जैसे—आम, आमलकी, नारियल, बेल, जीरा, अनार, कटहल, बड़हल, केला, अशोक भिलाव आँवला, तेई, सखुआ, सप्तपर्णी पारिजात, कचनार, ताड़, तमाल, देवदार, साल आदि के वृक्षों को देखा। एवं नाना प्रकार के पक्षियों जैसे—चकोर, मोर, तोतों, कोयल, चातक आदि पक्षियों के समूहों को मधुर स्वर में गूंजन करते हुए देखा

एवं सुना। इस प्रकार बलराम जी ने भ्रमण करते हुये मद से लाल-लाल आँखें किये एक सुन्दर लता गृह में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने वेद वेदाङ्गों में परायण कौशिक, भारद्वाज, भार्गव एवं गौतम वंशीय ब्राह्मणों तथा अन्य ब्राह्मण श्रेष्ठों को कुश की चटाई पर बैठकर कथा सुनते हुए देखा। कथा सूत जी महाराज कह रहे थे। कथा में पौराणिक देवताओं एवं ऋषियों के चरित्रों का वर्णन हो रहा था। वहाँ उपस्थित सभी ब्राह्मणों ने खड़े होकर हाथ जोड़कर बलराम जी को सम्मानित किया। परन्तु सूत जी अपने आसन पर ही बैठे रहे। जिसे बलराम जी ने अपना अपमान माना एवं सूत जी का वध कर दिया। सूत जी ब्रह्मलोक को गये और ब्राह्मणगणों ने भी बलराम को घृणा की दृष्टि से देखते हुए अपनी चटाई उठाई और अपने आश्रम को चले गये।

ताड़ी का नशा समाप्त होने पर जब बलराम जी होश में आये तो उन्होंने अपने हाथ से सूत जी की हत्या होने पर पश्चाताप करने लगे। कहने लगे मैं बहुत बड़ा पापी हूं। मैंने मद से चूर हो ब्राह्मण (सूतजी) की हत्या कर दी है तथा ब्राह्मण भी मेरे इस पाप के कारण इस वन को त्यागकर अन्यत्र चले गये हैं। ब्रह्महत्या करके मैंने महान् कुत्सित पाप किया है। मेरे इस प्रकार मर्यादाहीन

शक्ति एवं साहस को धिक्कार है । अब मैं बारह वर्षों तक व्रत नियम का परिपालन करते हुए तीर्थों की यात्रा करूंगा । इसके लिये मैं सर्वप्रथम प्रतिलोमा सरस्वती को जाऊंगा । इस प्रकार बलराम जी ब्रह्महत्या के अपराध से मुक्त होने के लिये तीर्थों की यात्रा हेतु सर्वप्रथम प्रति-लोमा सरस्वती को गये ।

द्रौपदी के पांचों पुत्रों की अनाथ की तरह मृत्यु का कारण

त्रेता युग में उत्तम यश वाले, महान धर्मात्मा महान दानवीर, पराक्रमी, प्रजापालक एवं दीन दुःखियों के रक्षक हरिश्चन्द्र नाम के एक महान प्रतापी राजा थे उनके राज्य में प्रजा को न किसी प्रकार का कष्ट था और न किसी प्रकार का भय । न अकाल सूखा आदि अन्य किसी प्रकार व्याधियां थीं और न कोई अकाल मृत्यु से मरता था । सभी प्रजा शरीर से भी तथा मन से भी स्वस्थ रहकर धार्मिक कार्यों में लगी रहती थी । सब धन-धान्य से युक्त थे । कोई व्यभिचारी नहीं था । सभी सदाचारी थे । किसी भी व्यक्ति में धन धान्य अधिक होने का अपने पराक्रम अथवा तप आदि का लेशमात्र भी अहम्भाव नहीं था ।

एक बार महाराज हरिश्चन्द्र जंगल में शिकार के लिए

हिरण का पीछा कर रहे थे कि 'बचाओ', 'बचाओ' की स्त्रियों की आवाज सुनी। राजा वहीं रुक गये और जिस दिशा से स्त्रियों की आवाज आ रही थी उस दिशा की ओर मुड़े। गरजते हुए बोले—'डरो मत' मैं आ गया। कौन दुराचारी है ? जिसने मेरे राज्य में इस प्रकार का अनैतिक कार्य करने का दुःसाहस किया है।

इधर विघ्नराज अपने मन में विचार करने लगा कि इस समय शक्तिशाली एवं व्रती विश्वामित्र अपने कठिन तप का पालन करके क्षमा, मौन एवं संयमी चित्त से सिद्ध की जाने वाली अपूर्व प्रसिद्ध विद्याओं को सिद्ध करने में तत्पर हैं। ये विद्याएं स्त्री स्वर में करुण क्रन्दन कर रही हैं। विश्वामित्र से इन विद्याओं की रक्षा कर पाना मेरे लिए कठिन है और इस समय राजा हरिश्चन्द्र डरो मत, डरो मत की आवाज देते हुए आ गये हैं। अतः मैं इनके शरीर में प्रवेश करके इन विद्याओं की रक्षा कर सकता हूं। यह अच्छा अवसर है। इस प्रकार विचार करके विघ्न राज राजा हरिश्चन्द्र के शरीर में प्रवेश कर गया।

राजा हरिश्चन्द्र तीव्र क्रोधावेश में विश्वामित्र को तत्क्षण पहचान न सके। अतः क्रोध से बोले—कौन पापी मेरे जैसे शक्तिशाली राजा के रहते अग्नि को कपड़े की छोर से बाँध रहा है। मेरे धनुष से छूटे हुए तीक्ष्ण बाणों

से कौन पापी योग निद्रा (मृत्यु) में जाना चाहता है ।

राजा हरिश्चन्द्र की वाणी को सुनकर ऋषि विश्वामित्र क्रोधित हो गये । उनके क्रोध करते ही सारी विद्यायें लुप्त हो गईं । राजा हरिश्चन्द्र महान् तपस्वी विश्वामित्र को देखकर भय से पीपल के पत्ते के सदृश काँपने लगे । विश्वामित्र क्रोध से बोले—दुष्टात्मा ! ठहर जा । बस मुनि का इतना कहना ही था कि राजा हरिश्चन्द्र उनके पैरों में गिर पड़े और विनय पूर्वक बोले—हे भगवन ! मैंने तो राजधर्म का पालन किया है, कोई अपराध नहीं किया । धर्मात्मा राजा को तो दान देना, प्रजा की रक्षा करना एवं धनुष लेकर धर्मशास्त्र का पालन करते हुए अत्याचारियों से युद्ध करना कर्तव्य है इसलिये आपको मुझ पर क्रोध नहीं करना चाहिये ।

विश्वामित्र बोले—यदि तुम्हें इतना धर्म का ध्यान है तो शीघ्र बताओ कि किसे दान देना चाहिये, किसकी रक्षा करनी चाहिये और किसके साथ युद्ध करना चाहिये ।

राजा हरिश्चन्द्र बोले—हे मुनिवर ! विप्र श्रेष्ठ एवं अन्य निर्धनों को दान देना चाहिये, भययुक्त प्राणियों की रक्षा करनी चाहिये तथा शत्रुओं के साथ युद्ध करना चाहिये ।

विश्वामित्र बोले—यदि तुम्हें राजधर्म का इतना ज्ञान है तो मैं मुमुक्षु ब्राह्मण हूं। तुम मेरी इच्छानुसार मुझे दान दो। मुनि की वाणी को सुनकर प्रसन्न मन से राजा बोले, हे मुनिवर ! आप स्वर्ण, आभूषण, पुत्र, स्त्री, मेरा प्राण, राज्य, नगर, राज्यकोष आदि जो भी चाहें आज्ञा करें। सभी आपके चरणों में उपस्थित है। मुनि बोले—यह सभी कुछ मैंने स्वीकार कर लिया। अब तुम मुझे पहले राजसूय यज्ञ की दक्षिणा दो। तथा गांव-नगर सहित, सागर से युक्त यह पृथ्वी, घोड़े, हाथी और रथ सहित सैन्य युक्त राज्य, कोष सहित राजकोष तथा तुम्हारे शरीर पर एवं तुम्हारी पत्नी व पुत्र के शरीर पर जो भी आभूषण आदि हों अर्थात् तुम लोगों के शरीर व प्राण छोड़कर सभी कुछ मुझे दान में दे दो।

विश्वामित्र की इच्छानुसार राजा हरिश्चन्द्र ने सभी कुछ समर्पित कर दिया। फिर मुनि बोले—हे राजन् ! तुमने सब कुछ मुझे दे दिया। अब यह बताओ कि इस राज्य का स्वामी कौन होगा। राजा बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस समय ही मैंने सभी कुछ आपको अर्पित कर दिया। उसी क्षण से आप उसके स्वामी हो गये। तब मुनि क्रोधावेश में बोले ठीक है। अब तुम अपनी पत्नी एवं पुत्र के साथ मात्र वल्कल वस्त्र पहनकर इस राज्य से शीघ्र बाहर

निकल जाओ। क्योंकि अब मैं इसका स्वामी हूं तुम नहीं। हरिश्चन्द्र बोले—ठीक है ऐसा ही होगा, चला जाऊंगा। और पत्नी पुत्र सहित मात्र वृक्ष की छाल पहने चल दिये। तभी विश्वामित्र ने रास्ता रोककर कहा—ठहरो ! पहले राजसूय यज्ञ की दक्षिणा देकर जाओ। राजा बोले—हे ब्रह्मन् ! इस समय हम तीनों के पास मात्र शरीर को छोड़कर कुछ भी तो नहीं बचा है जो आपको दक्षिणा में दे दूं। हां कुछ समय बाद अवश्य ही आपको दक्षिणा दे दूँगा। मुनि बोले—कब तक दक्षिणा दोगे। ठीक-ठीक समय बताओ। अन्यथा मेरे शाप से भस्म हो जाओगे। राजा बोले—एक मास में आपको दक्षिणा दे दूंगा। अब आप कृपया मुझे जाने की आज्ञा दीजिये।

विश्वामित्र बोले—ठीक है जाओ, तुम्हारी यात्रा शुभ होवे। कोई शत्रु तुम्हें बाधा न पहुंचावे।

राजा हरिश्चन्द्र राज्य छोड़कर जाने लगे। उनके पीछे-पीछे उनकी पत्नी और पुत्र चल दिये। राजा की इस कठिन दशा को देखकर सारी प्रजा रो रही थी। सभी प्रजा राजा के ही साथ-साथ चलने की आज्ञा राजा से माँग रही थी। परन्तु हरिश्चन्द्र ने सभी को समझाकर छोड़ दिया। जो राजा कभी पैदल नहीं चले थे आज वे पत्नी व पुत्र सहित नंगे बदन व नंगे पाँव जा रहे थे। जिनके आगे

पीछे राजा लोग तथा सेवक आदि चलते थे। आज कोई नहीं है। हरिश्चन्द्र नगरवासियों के आर्तनाद को सुनकर शोक से व्याकुल होकर बैठ गये। उसी क्षण विश्वामित्र क्रोध से लाल-लाल आँखें करके बोले—ऐ दुष्टात्मा! मिथ्यावादी, कुटिल भाषण करने वाले तुम्हें धिक्कार है। तुम मुझे राज्य दान देकर वापस लेना चाहते हो?

मुनि की इस प्रकार की वाणी को सुनकर भय से काँपते हुए हरिश्चन्द्र बोले—जा रहा हूं। कहकर पत्नी का हाथ पकड़कर उठाने लगे। परन्तु उनकी पत्नी शैव्या रास्ता चलने से बहुत थक गई थी जिससे शैव्या से उठा नहीं जा रहा था। तब क्रोधित होकर मुनि विश्वामित्र शैव्या की पीठ पर डण्डा मारने लगे। इस प्रकार विश्वामित्र द्वारा पत्नी को पीटे जाते देखकर हरिश्चन्द्र व्याकुल होकर बोले—जा रहा हूं, जा रहा हूं। बस चुप हो गये। तभी दयालु पाँच विश्वेदेवों ने कहा—यह अत्याचारी, पापी विश्वामित्र किस लोक को प्राप्त होगा? इसने श्रेष्ठ यज्ञ कर्त्ता को राजच्युत करके राजा के साथ कितना अत्याचार कर रहा है। इसे धिक्कार है। अब हम लोग किसके महान यज्ञ में मन्त्रों द्वारा निष्कासित सोमरस का पान करेंगे।

विश्वेदेवों की इस प्रकार की वाणी को सुनकर मुनि

विश्वामित्र ने क्रोध पूर्वक कहा—तुम सभी मनुष्यत्व को प्राप्त होवोगे। मुनि के शाप को सुनकर शाप से मुक्त होने के लिए विश्वेदेवों ने प्रार्थना करके मुनि को प्रसन्न किया। मुनि बोले—तुम लोग मनुष्यत्व को तो अवश्य प्राप्त होवोगे परन्तु तुम लोगों का न विवाह होगा, न कोई सन्तान होगी। तथा काम-क्रोध एवं ईर्ष्या से रहित होकर पुनः देवत्व को प्राप्त होवोगे। यही पाँचों विश्वेदेव द्रौपदी के गर्भ से पांचों पाँडवों के पुत्र विश्वामित्र के शाप के कारण ही अनाथों की तरह मृत्यु को प्राप्त हुए।

राजा हरिश्चन्द्र का वृतान्त

राजा हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी व पुत्र के साथ पैदल ही त्रिशूलपाणी भगवान शंकर की नगरी काशी में पहुंच गये। उन्होंने राजसूय यज्ञ की दक्षिणा देने के लिए मुनि विश्वा-मित्र से एक महीने का समय माँगा था। मास के अन्तिम दिन विश्वामित्र हरिश्चन्द्र के सामने उपस्थित हो गये और राजसूय की दक्षिणा माँगी। हरिश्चन्द्र हाथ जोड़कर विनय पूर्वक आर्तस्वर में बोले—महाराज! इस समय तीनों के प्राण व शरीर के सिवा कुछ भी नहीं है और आज भी अभी दिन शेष होना बाकी है कृपया सूर्यास्त होने तक प्रतीक्षा करें। मुनि बोले ठीक है। यदि शाम तक तुमने

मेरी दक्षिणा नहीं दी तो तुम्हारा सारा किया गया अश्वमेध यज्ञ, राजसूय यज्ञ, धर्म, तप, दान आदि करना व्यर्थ हो जायेगा। तुम झूठे प्रमाणित होवोगे तथा मेरे शाप के कारण नरक के भागी बनोगे। कहकर मुनि चले गये।

इधर राजा हरिश्चन्द्र सिर पकड़कर बैठ गये। आंखों से अश्रुधारा बह रही थी। वे चिन्तामग्न थे कि शाम तक विश्वामित्र को दक्षिणा कैसे दी जावे। अब तो अपना कोई हितैषी मित्र, भाई बन्धु भी नहीं रहा। और न एक पैसा ही है यदि शाम तक मुनि को दक्षिणा नहीं दे पाया तो उनके शाप का भागी बनना पड़ेगा। कहते-कहते मूर्छित हो गये। पति की इस शोकावस्था को देखकर पत्नी शैव्या घबड़ायी। पति को सचेत होने पर शैव्या बोली—महाराज! आप इतने शोकातुर क्यों हो रहे हैं? सज्जन पुरुष पत्नी से सम्पर्क सन्तान वृद्धि के लिए करते हैं। सो मुझे सन्तान हो चुकी है। अब मेरी कोई आवश्यकता नहीं। अतः आप मुझे नगर में दासी के रूप में बेच दें और उससे जो राशि मिले विश्वामित्र को दक्षिणा रूप में दे दें। पत्नी की इस सलाह से हरिश्चन्द्र के हृदय को बड़ा आघात लगा। परन्तु कुछ समय तक पति पत्नी में तर्क वितर्क के पश्चात् हरिश्चन्द्र पत्नी को बेचने को तैयार हो गये।

राजा हरिश्चन्द्र काशी नगरी में अपनी पत्नी को दासी

के रूप में बेचने के लिए आवाज लगाने लगे। बोले—यदि मुझसे कोई मेरा परिचय पूछे, तो मैं यही कहूंगा कि मैं एक नीच अधर्मी एवं पापी हूं क्योंकि अपनी प्राण प्यारी पत्नी को बेचने की आवाज दे रहा हूं परन्तु इस दुष्कर्म से मेरा प्राण नहीं निकलता। यदि कोई व्यक्ति इस दासी का खरीददार हो तो सूर्यास्त से पहले-पहले खरीद लें। उसके बाद नहीं। उसी क्षण एक वृद्ध ब्राह्मण आया और बोला, 'मुझे दासी की आवश्यकता है। बोलो कितना पैसा लोगे। परन्तु राजा हरिश्चन्द्र कुछ न बोले। ब्राह्मण ने हरिश्चन्द्र को रुपए को गठरी में बांध कर दे दिया और शैव्या की बाँह पकड़कर अपने घर चल दिया। हरिश्चन्द्र का लड़का रोहिताश्व माँ का आँचल पकड़ कर माँ-माँ करता हुआ चल दिया। पण्डित लड़के को ले जाना नहीं चाहता था। अतः उसने बच्चे को जोर से डाँटा। परन्तु बच्चा नहीं माना। माँ-माँ कहते हुए माँ का आँचल पकड़े पीछे-पीछे ही चला जा रहा था। उस दुष्ट पंडित ने क्रोध करके रोहिताश्व को जोर की लात मारी। रोहिताश्व दूर जा गिरा।

माँ शैव्या से अपने पुत्र रोहिताश्व की दशा देखी न गई। उसने पंडित से प्रार्थना की। महाराज जिस प्रकार बछड़े वाली गाय को खरीदते समय साथ में बछड़े को भी

ले जाते हैं। उसी प्रकार इस बच्चे का भी मूल्य चुका कर साथ ले लीजिये। मुझे इस बच्चे के बिना आपके घर में कार्य करना कठिन होगा। पंडित बच्चे को लेना तो नहीं चाहता था। परन्तु शैव्या के अधिक विलापने एवं अनुनय-विनय करने पर बच्चे का भी मूल्य हरिश्चन्द्र को देकर घर को चलता बना।

सूर्यास्त होने में कुछ समय शेष था कि विश्वामित्र दक्षिणा लेने आ गये। हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र को पैसे की गठरी सौंपते हुए कहा—हे ब्राह्मण ! यह दक्षिणा स्वीकार करें। इसे मैंने अपनी पत्नी एवं पुत्र को बेच कर संग्रह किया है। विश्वामित्र गठरी को लेते हुए बोले—इतनी थोड़ी दक्षिणा से क्या बनता है। तुम जानते नहीं ब्राह्मण को इच्छित दक्षिणा न देने से सब करा कराया नष्ट हो जाता है। परन्तु तुम मिथ्यावादी दुष्टात्मा को समझाने से लाभ ही क्या है। या तो पूरी दक्षिणा दो अथवा मेरे शाप का भागी बनकर नरक के वासी बनो। हरिश्चन्द्र बोले—हे मुने ! अभी सूर्यास्त होना शेष है कृपया सूर्यास्त होने तक प्रतीक्षा करें। ठीक है, कहकर विश्वामित्र चले गए। अब हरिश्चन्द्र अपने को बिक्री हेतु नगर में बोली लगाने लगे—है कोई दास का खरीददार ! यदि कोई खरीदना चाहे तो सूर्यास्त से पहले-पहले खरीद ले।

हरिश्चन्द्र की बोली सुनकर सामने एक काशी का चाण्डाल आया। बोला—मुझे दास की आवश्यकता है। बोलो कितना पैसा लोगे। चाण्डाल का शरीर बहुत लम्बा चौड़ा, मुंह विभत्स, दांत पंक्तियां, ऊबड़ खाबड़, लाल-लाल आंखें, पूरा शरीर रुक्ष रोमावलियों से युक्त, हाथ में मांस वसा एवं रक्त लिपटा हुआ, नर कपाल की माला पहने तथा हाथ में हड्डियाँ लिए। सर्वांग चिता की भस्म लगाए खड़ा था। हरिश्चन्द्र बोले—तुम कौन हो ? क्या करते हो ? तथा तुम्हारे यहां हमें क्या करना होगा। चाण्डाल बोला—मैं यहां का चाण्डाल हूं। वध करने योग्य मनुष्यों का वध करता हूं। तथा श्मशान घाट पर मुर्दों का कफन व जलाने का टैक्स लेता हूं। तुम्हें भी श्मशान पर ही रहकर मुर्दों का कफन लेना एवं टैक्स वसूलना होगा। वसूल किये गये टैक्स का छठा हिस्सा राजा को दोगे, तीन हिस्सा मेरे को दोगे तथा दो हिस्सा अपने वेतन के रूप में रखोगे। बोलो कितना पैसा लोगे।

राजा हरिश्चन्द्र चाण्डाल के यहाँ बिकना नहीं चाहते थे। अब चिन्ता में पड़ गये कि विश्वामित्र को दक्षिणा कैसे दी जाए। यह सोचते-सोचते मूर्छित हो गये। तभी विश्वामित्र आए। मुंह पर पानी का छींटा देकर सचेत किया। सचेत होने पर हरिश्चन्द्र ने गिड़गिड़ाते हुए विश्वामित्र के

पैर पकड़ लिये। बोले महाराज ! अब मेरे पास इस शरीर व प्राण के सिवा कुछ नहीं है। मैं चाण्डाल के हाथों बिकना नहीं चाहता। अब मैं आपका दास हूँ। आपकी शरण में हूं। अब आप जैसी आज्ञा करें मैं वही करूँ। विश्वामित्र बोले—यदि मेरी आज्ञा का पालन कर मेरे शाप से बचना चाहता है तो उस चाँडाल का दास बनकर जा, मैंने तुझे उसके हाथ एक अर्बुद रुपये में बेच दिया। राजा बोले—आपकी जैसी आज्ञा हो। कहकर चाँडाल के साथ चले गए।

चांडाल की आज्ञा से राजा हरिश्चन्द्र श्मशान में मुर्दों का कफन एवं कर वसूलने का कार्य करने लगे। श्मशान का दृश्य बड़ा भयानक था। वहाँ दिन रात चिता ही चिता जलती रहती थीं। रात में भूत, प्रेत, पिशाच, बैताल, हाकिनी, डाकिनी एवं शाकिनी आदि राक्षसियाँ नाचती गाती हुई कोलाहल मचाती हुई रहती थीं। कहीं सियार व कुत्ते कभी किसी मुर्दे को नोंचते कभी भयंकर आवाज में क्रन्दन करते थे। कुत्ते कभी माँस नोंचते कभी खोपड़ियाँ व अन्य हड्डियों को चूसते। इसी प्रकार से वहां ऐसा भयानक दृश्य सदा रहता था। इसी मध्य राजा हरिश्चन्द्र हाथ में बाँस की लाठी लिये सर्वांग चिता की राख लपेटे मुर्दों के कफन व कर वसूलते थे। मुर्दों के साथ

आये पारिवारिक जनों के करुण क्रन्दन से उनकी आंखें भी छलछला जाती थीं। वे दिन-रात अपनी पत्नी एवं बच्चे की चिन्ता में लगे रहते थे। इस तरह से बहुत समय व्यतीत हो गया। उनका शरीर जीर्ण शीर्ण, बाल रूखा एवं चेहरा भी अजीब बन गया था। एक दिन रात में हरिश्चन्द्र को गहरी नींद आ गई। नींद में नाना प्रकार के अच्छे बुरे स्वप्नों को देख रहे थे। कुछ समय के पश्चात आंख खुली। रात गहरी अन्धेरी एवं भयानक थी। उन्होंने देखा कि एक स्त्री मृतक बच्चे को गोद में लेकर श्मशान पर दाह संस्कार करने आयी है। वह कोई और नहीं, वह स्त्री राजा हरिश्चन्द्र की पत्नी शैव्या थी तथा वह बालक उन्हीं का पुत्र रोहिताश्व था। परन्तु न हरिश्चन्द्र ने शैव्या को पहचाना न शैव्या ने हरिश्चन्द्र को। क्योंकि बारह वर्षों के बाद दोनों एक दूसरे को देख रहे थे। दोनों में काफी परिवर्तन आ गया था। हरिश्चन्द्र ने स्त्री से बच्चे का कफन व कर मांगा। पर शैव्या के पास कुछ भी देने को नहीं था। वह रोती हुई बोली—मेरे पास देने को न कफन है और न हीं कर देने को पैसे। आप दया करें और इस मृत बच्चे के दाह संकार में मदद करें। हरिश्चन्द्र बोले—मुझे तो कफन व कर चाहिये ही चाहिये। इसके बिना मैं यहाँ कुछ नहीं होने दूंगा। यह मेरे स्वामी का

आदेश है। शैव्या ने विलाप करती हुए मृत बच्चे की लाश को अपनी गोद से उठाकर पृथ्वी पर रख दिया। हरिश्चन्द्र ने बच्चे के रंग रूप को देखा और उनको रोहिताश्व याद आ गया रोने लगे, और बोले—हाय मेरा बच्चा रोहिताश्व भी अब इतना ही बड़ा हो गया होगा। पता नहीं मेरी पत्नी शैव्या और पुत्र रोहिताश्व उस पण्डित के यहाँ किस दशा में होंगे। मैंने कितना घोर पाप किया था कि अपनी पत्नी व पुत्र को बेच दिया फिर भी मेरा प्राण नहीं छूटा। मेरी पत्नी सोच रही होगी कि मैं कहीं अधिक पैसा कमाकर उस पण्डित को अधिक पैसा देकर छुड़ा लूंगा। परन्तु मेरा यह दुर्भाग्य कि चाण्डाल का दास बन कर यहाँ चाण्डाल कर्म करने पर मजबूर हूं। कहकर विलाप करते हुए मूर्छित हो गये। तब शैव्या ने पहचाना कि यह मेरे पति हैं। जो चाण्डाल का कार्य कर रहे हैं और अपने भाग्य को कोसने लगी। जब हरिश्चन्द्र को होश हुआ तो शैव्या ने धैर्य धारण कर राजा हरिश्चन्द्र को सब कुछ बताया। दोनों बड़े दुःखी हुए। फिर भी हरिश्चन्द्र पत्नी से बोले—मैं यहाँ तुम्हारा पति नहीं, अपने चाण्डाल स्वामी का दास हूं। उसकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है। इसलिए मैं बिना कफन लिये दाह संस्कार नहीं होने दूंगा।

पति की इस प्रकार की बात को सुनकर शैव्या ने अपनी आधी साड़ी फाड़कर कफन के रूप में दे दी। चिता सजाई गई। रोहिताश्व का शव रखा गया। राजा हरिश्चंद्र बोले—अब हमें जीवित रहना व्यर्थ है अतः जहाँ पुत्र गया वहीं अब हमें भी जाना चाहिए। कहकर वे भी चिता में बैठ गये। तब शैव्या बोली—जब पुत्र नहीं रहा और पतिदेव भी नहीं रहेंगे तो मैं अकेली पृथ्वी पर रहकर क्या करूंगी। मैं भी साथ ही चिता में जलूंगी। स्वर्ग नरक में जहाँ भी रहेंगे हम तीनों साथ रहेंगे। कहकर वह चिता में पति पुत्र के साथ बैठ गई। चिता में आग पकड़ते ही स्वर्ग से इन्द्र, धर्मराज आदि सभी देवता ऋषि-मुनि पुष्पों की वर्षा करते हुए आ गए, सबने राजा हरिश्चन्द्र के सत्य को दृढ़ता से पालन करने का धन्यवाद दिया। रोहिताश्व भी जीवित हो गया। इन्द्र ने सभी को दिव्य वस्त्र पहनाये और दिव्य विमान द्वारा स्वर्ग में चलकर सदा के लिए निवास करने को कहा। परन्तु राजा हरिश्चन्द्र बोले—नहीं हम अकेले स्वर्ग नहीं जायेंगे। हमारे सभी पुण्यकर्मों को करने में हमारी प्रजा का भी सहयोग है। अतः हमारी प्रजा जहां रहेगी वहीं हम भी रहेंगे। धर्मराज आदि के द्वारा बहुत समझाने पर भी राजा हरिश्चन्द्र अपनी प्रजा को छोड़कर स्वर्ग जाने को तैयार नहीं हुए। इस पर सभी देवगण

अयोध्या आये। वहाँ के सिंहासन पर रोहिताश्व को बिठाया तथा राजा हरिश्चन्द्र को शैव्या एवं उनके प्रजागणों के साथ स्वर्ग को ले गये। तब से वे वहीं हैं।

आडिबक युद्ध वर्णन

राजा हरिश्चन्द्र के राज्य से मुक्त होकर स्वर्ग जाने के पश्चात् वशिष्ठ मुनि गंगा जल में बारह वर्षों तक खड़े होकर तपस्या करने के पश्चात बाहर आये। जल से बाहर आने पर उन्होंने विश्वामित्र द्वारा राजा हरिश्चन्द्र के राज-च्युत होने, राज्य से निर्वासन होने, पत्नी एवं पुत्र की बिक्री होने एवं स्वयं के चाण्डालत्व को प्राप्त हो जाने तथा नाना प्रकार के कष्टों को भोगने का वृतान्त सुना। यह सारा वृतान्त सुनकर वशिष्ठ मुनि को बड़ा आघात लगा। तथा विश्वामित्र पर क्रोधित हो गये। क्रोधावेश में वशिष्ठ मुनि ने कहा—जब विश्वामित्र ने मेरे सौ पुत्रों को मार दिया तब मुझे इतना कष्ट नहीं हुआ जितना कि विश्वामित्र के कारण देवताओं एवं ब्राह्मणों की पूजा करने वाला, सत्यवक्ता, शान्त, शत्रु पर भी क्रोध न करने वाला, धर्मात्मा, निर्दोष, निरहंकारी एवं प्रसन्न मुख वाला राजा हरिश्चंद्र के राजच्युत होने, पत्नी पुत्र के बिक्री करने एवं चांडालत्व को प्राप्त करने का वृतान्त सुनकर हुआ है।

ऐ दुष्ट, ब्राह्मणद्वेषी, याज्ञिकों का नाश करने वाला मूर्ख विश्वामित्र मेरे शाप से बगुला बन जा।

महातेजस्वी विश्वामित्र ने भी वशिष्ठ जी द्वारा दिए गए शाप को सुनकर शाप दिया। तू भी सारस बन जा।

दोनों ही मुनि एक दूसरे के शाप से पक्षी योनि में बगुला एवं सारस बन गये। इस योनि में भी दोनों महा-पराक्रमी व तेजस्वी तथा शक्तिशाली थे। दोनों ही भीषण क्रोध करके युद्ध करने लगे। सारस ने दो योजन विशाल शरीर धारण किया तो बगुले ने तीन हजार छियानवें योजन विशाल शरीर धारण किया। दोनों ही एक दूसरे पर पंखों से व पंजों से प्रहार कर रहे थे। उन दोनों के पंखों की वायु से पर्वत टूटने लगे, पृथ्वी काँपने लगी, समुद्र में भयंकर विशाल लहरें उछाल मारने लगीं। तथा भीषण तूफान चलने लगा। जिससे सारी प्रजा भय से कम्पित होने लगी। ऐसा लगने लगा कि पृथ्वी नष्ट होने ही वाली है। बहुत सारे प्राणी मृत्यु को प्राप्त हुये। चारों तरफ हा-हाकार मच गया आकाश में इन दोनों पक्षियों के युद्ध से सारा विश्व त्रस्त था।

इस प्रकार पूरे विश्व को त्रस्त देखकर ब्रह्मा जी विश्वामित्र एवं वशिष्ठ से बोले—आप लोग युद्ध बन्द करें। जिससे यह विश्व भय मुक्त होवे। परन्तु ब्रह्मा जी के

निवेदन पर भी उन दोनों का युद्ध बन्द नहीं हुआ। फिर ब्रह्मा जी ने विश्व का नाश न हो ऐसा सोचकर दोनों मुनियों को पक्षी योनि से बदलकर पूर्व रूप में ला लिया। फिर बोले—आप लोग तमोगुणी क्यों हो गये हैं। युद्ध बन्द करें। हरिश्चन्द्र के साथ जो कुछ भी हुआ वह उनके राजसूय यज्ञ करने का फल है ? और यह आप दोनों का युद्ध विश्व को नष्ट करने वाला है। हे वशिष्ठ ! विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र के साथ कोई अपकार नहीं किया। बल्कि उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति करा कर उपकार ही किया है। काम-क्रोध से तपस्या करने में विघ्न होता है। अतः आप काम-क्रोध को त्याग करके युद्ध बन्द करो। इससे तुम दोनों का कल्याण होगा। ब्रह्मा जी द्वारा समझाये हुए दोनों ने युद्ध का त्याग करके आपस में आलिङ्गन किया। फिर ब्रह्माजी अपने लोक को गये। एवं वशिष्ठ तथा विश्वामित्र जी भी अपने आश्रम को चले गये।

पक्षियों ने जैमिनि ऋषि से बताया कि बगुला सारस के युद्ध एवं हरिश्चन्द्र की कथा को जो व्यक्ति प्रेम पूर्वक सुनता है उसके सभी पाप दूर हो जाते हैं। तथा उनके किसी भी कार्य में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती।

———

मृत्यु दशा वर्णन

जैमिनि ऋषि ने कहा—हे पक्षिश्रेष्ठ ! अब आप प्राणियों के जन्म मृत्यु के सम्बन्ध में जो मुझे शंका है। कृपया उसको समझावें शंका यह है कि जीवों की उत्पत्ति एवं वृद्धि कैसे होती है, वह कष्ट को सहन करते हुए किस प्रकार निवास करता है ? फिर गर्भ से बाहर आने पर उसका शरीर कैसे बढ़ता है एवं मृत्यु को कैसे प्राप्त करता है ? अपने पाप पुण्यों के फल को किस प्रकार भोगता है ? जठराशय में तो कठिन से भी कठिन गरिष्ठ वस्तुयें पच जाती हैं परन्तु साधारण पिण्डी वाला यह जीव स्त्री के जठर में क्यों नहीं पचता ? तथा प्राणी अपने अच्छे कर्मों को किस प्रकार भोगता है ? कृपया हमें समझायें।

पक्षियों ने कहा—जैमिनि ! आपने तो यह बड़ा ही रोचक एवं रहस्य पूर्ण प्रश्न किया है। अब इसे आप ध्यान पूर्वक सुनें। प्राचीनकाल में सुमति नामक धर्मात्मा पुत्र ने अपने पिता जी से इस सम्बन्ध में जो कुछ भी वर्णन किया है वही मैं आपको सुना रहा हूं।

भृगुवंशी किसी ब्राह्मण ने मूर्ख की तरह बिलखने वाले अपने पुत्र सुमति से कहा—हे पुत्र ! अब मैंने तुम्हारा उपनयन संस्कार कर दिया है अब तुम गुरु की सेवा करते हुए भिक्षा के अन्न को ग्रहण करते हुए वेद शास्त्रों का अध्ययन करो । उसके पश्चात् गृहस्थाश्रम में आकर उत्तम यज्ञों को करते हुए श्रेष्ठ सन्तान की उत्पत्ति करो । फिर संन्यास धारण कर वन में निवास करते हुए ब्रह्मपद को प्राप्त करो । इस प्रकार पिता द्वारा बार-बार स्नेह पूर्वक मधुर वाणी में समझाये जाने पर मन्द मुस्कान से सुमति बोला —हे पिताजी ! आप जिस ब्रह्मपद की प्राप्ति का वर्णन कर रहे हैं । इसके प्राप्ति हेतु नाना प्रकार के कर्मों का मैंने अनेकों बार अनुभव प्राप्त किया है । मुझे तत्त्व ज्ञान प्राप्त है एवं दस हजार पूर्व के जन्मों का भी सारा वृतान्त ज्ञात है तो इस वेदाध्ययन आदि की क्या आवश्यकता है ?

मैंने पत्नी, शत्रु, मित्र तथा अनेकों माताओं एवं पिताओं का संयोग व वियोग का अनुभव, तथा उन जन्मों के सुखों एवं दुःखों का अनुभव, स्त्री के गर्भ में निवास करने का अनुभव, एवं नाना प्रकार के रोगों का हजारों बार का अनुभव, गर्भ के बाहर शैशावस्था, बाल्यकाल, युवाकला एवं वृद्धावस्था के भी सभी भोगे गये सुख-दुखों

का अनुभव किया है। वे सभी मुझे अभी भी याद हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र तथा पशु, पक्षी, कीट पतंगे आदि तिर्यक्योनियों के जन्म का भी अनुभव याद है। इस प्रकार मैंने अनेकों बार राजघराने में, सेवकों के घरों में, वीर योद्धाओं के घर में जन्म लिया उसी प्रकार अब मैंने आपके घर में जन्म लिया है। पूर्व जन्मों में मैं स्वामी, दास, दरिद्र एवं ईश्वरत्व को भी प्राप्त हुआ। अनेकों बार मैंने दूसरों को मारा, दूसरों ने मुझको मारा, वध किया। दान दिया, दान लिया। अर्थात् हे पिताजी! इस संसार के अनेक जन्मों में अनेक रूपों से उस ज्ञान का अनुभव किया है जिससे कि मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। अतः तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर लेने के पश्चात् मेरे लिये वेदाध्ययन व्यर्थ है। हे तात! आप विश्वास करें, मैं सुख, दुःख, हर्ष, आनन्द षड्रस और विभिन्न प्रकार के गुण आदि से छः प्रकार की क्रियाओं से रहित परम ब्रह्मपद को प्राप्त करूंगा।

सुमति की इस प्रकार से ज्ञान पूर्ण बातों को सुनकर पिता का मन प्रसन्न और गदगद हृदय एवं विस्मय युक्त हो गया। पिता प्रसन्नचित्त होकर बोले—हे पुत्र! तुम तो पहले पूर्ण रूप से जड़ बुद्धि प्रतीत होते थे। अब तुम्हें यह ज्ञान कैसे हो गया? क्या किसी ऋषि मुनि या देवता

आदि के शाप से तुम्हारी बुद्धि जड़ हो गई थी ? जो इस समय आविर्भूत हुई है।

सुमति बोला—हे पिताजी ! अब मैं अपने पूर्व जन्मों में क्या था तथा आगे भविष्य में क्या होना है का वृतान्त आपको सुनाता हूं मैं अति प्राचीन काल में आत्मज्ञानी और परमात्मानिष्ठ ब्राह्मण था। निरन्तर योगाभ्यास के कारण ईश्वर में गहरी आस्था हो गई। फिर मैं आचार्य बनकर शिष्यों को उत्तम ज्ञान देने लगा। परन्तु कुछ लम्बे समय के बाद मुझे प्रमाद एवं अज्ञान हो गया। प्रलयकाल से आज तक का सभी कुछ मुझे जो पूर्व जन्मों में भी व्यतीत हुआ है इधर एक वर्षों से स्मरण हो आया है। अतः मैं ब्रह्मचर्याश्रम से ही धर्म का पालन करते हुए एकाँत स्थान में निवास करते हुये मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा। इसलिये हे पिताजी ! आपके मन में यदि कोई शंका हो तो उसे पूछें ताकि उसे मैं समाधान करके पितृऋण से मुक्त हो सकूं।

फिर सुमति ने जन्म के विषय में वर्णन करते हुए कहा —हे पिताजी ! मैं आपको वह गूढ़ वृतान्त सुनाने जा रहा हूं जिसका वर्णन सृष्टि के आदि काल से अब तक न किसी ने कहा है और न कोई मेरे सिवा कोई अन्य भविष्य में इसका वर्णन करेगा। शरीरस्थ पित्त बिना इंधन के ही

वायु से दीप्त होकर मर्म स्थानों को पीड़ित करता है। एवं उदानवायु उर्ध्वगति को प्राप्त होकर जल युक्त भक्ष्य वस्तु को अधोगति होने से रोकता है। जो प्राणी जल अन्न और रस का दान करता है वह आपत्ति काल में भी प्रसन्नचित्त रहता है, तृप्त रहता है। सत्यवादी, भेदभाव से रहित स्नेहमय, आस्तिक और श्रद्धालु व्यक्ति, देवताओं और ब्राह्मणों के प्रति ईर्ष्या से हीन होकर पूजने वाला यशस्वी, लज्जावान, दानशील, काम-क्रोध और द्वेष के वशीभूत होकर जो धर्म का त्याग नहीं करते, सत्य आचरण वाले और सौम्य स्वभाव वाले व्यक्ति की मृत्यु सुख पूर्वक होती है। मृत्यु के समय उसे कोई कष्ट नहीं होता। जो व्यक्ति प्यासे व्यक्ति को जल नहीं पिलाता और भूखे को अन्न नहीं खिलाता वह व्यक्ति भूख-प्यास से कष्ट पाकर मृत्यु को प्राप्त होता है। काष्ठ और चन्दन दान करने वाले को भी कोई कष्ट नहीं होता।

जो व्यक्ति किसी अन्य प्राणी को भय से पीड़ित करते हैं। झूठी गवाही देते हैं, असत्यवादी होते हैं। किसी को गलत शिक्षा देते हैं वेद की निन्दा करते हैं, वे मृत्यु के समय भयंकर कष्ट पाते हैं। यमराज के दूत हाथ में गदा लेकर आते हैं और भय दिखाते हैं तो ऐसे व्यक्ति माता-पिता, बन्धु-बान्धव, पुत्र, पत्नी आदि को गुहार करता है

फिर दीर्घ श्वाँस लेने लगता है और उसका मुख सूख जाता है उसकी दृष्टि भ्रम में पड़ जाती है और मृत्यु से पूर्व भयंकर कष्ट पाकर प्राण को त्यागने लगता है उस पापी का शरीर पंच तत्त्व में लय हो जाता है।

मृत्यु के पश्चात् जो भी कष्ट होता है वह प्राणी को अकेले ही भुगतना पड़ता है उस समय भाई बन्धु, पुत्र-पत्नी या माता-पिता आदि कोई भी कष्ट को कम नहीं करने आता। यमदूत आत्मिक शरीर को न कि भौतिक शरीर को रस्सी में बाँधकर कोड़े व ठोकरें मारते हुए दक्षिण दिशा की तरफ खींच करके ले जाते हैं। पूर्व पाप कर्मों के फल स्वरूप गीदड़ नोंच-नोंच कर खाते हैं, शरीर को जलाये जाने जैसा जलन का अनुभव होता है तथा मारने-पीटने और किसी नुकीली वस्तु द्वारा छेदे जाने पर दारुण कष्ट का अनुभव प्राप्त करता है। यहाँ तक कि दूसरा शरीर प्राप्त हो जाने पर भी वह कष्ट पाता है। और जो व्यक्ति वस्त्र, छाता, जूता, अन्न जल आदि का दान करता है। वह मृत्युपरान्त यमराज के दरबार में सुखपूर्वक जाता है। उसे मार्ग में कोई कष्ट उत्पन्न नहीं होता। जो भूमिदान करता है उसका कहना ही क्या, वह तो दिव्य विमान द्वारा स्वर्ग को जाता है।

मृत्यु के बाद जो उनके सम्बन्धीजन जौ, तिल एवं

जल सहित पिण्डदान करते हैं वह उसी का भोजन करता है। उसके बन्धु-बान्धवों सहित पारिवारिक जनों को उबटन व तेल लगाने से मनाही है क्योंकि मृतक को तेल उबटन ही भोजन मिलता है। अन्य जो कुछ भी दान दिया जाता है उससे उसे कष्ट कम अनुभव होता है। बारहवें दिन वह उसी घर में जाता है जहाँ कि उसे जल व पिण्ड दान दिया जाता है। तब दाह संस्कार किये हुए व्यक्ति को पृथ्वी पर सोने से मृतक को कष्ट होता है।

बारह दिन के पश्चात वह यमराज के दरबार में जाता है वहाँ वह अत्यन्त भयंकर विशाल बदन वाला बीभत्स रूप वाला, टेढ़ी आकृति वाला, काजल के समान कृष्ण वर्ण का, लाल आँखें लिये हुए और सैकड़ों व्याधियों से घिरे हुए यमराज को देखता है। मिथ्यावादी झूठी गवाही देने वाला, ब्राह्मण को मारने वाला, गौ और पिता की हत्या करने वाला, किसी की भूमि, पत्नी, खेत की सीमा एवं धरोहर का अपहरण करने वाला, गुरु पत्नी एवं कन्या तथा परायी स्त्री के साथ गमन करने वाला व्यक्ति रौरव नरक को प्राप्त होता है।

रौरव नरक—रौरव नरक दो हजार योजन विस्तार वाला कठिन गड्ढों से युक्त होता है। वहाँ की भूमि अंगारों के समान जलती रहती है उसी में उस व्यक्ति को यमराज

के दूत ले जाकर छोड़ देते हैं। जहाँ कि वह पापाग्नि में जलता हुआ इधर-उधर भागता है। उस आग पर दिन-रात उसे चलने से उसके पैर जलकर नष्ट हो जाते हैं।

उस दो हजार योजन नरक को पार कर अन्य नरक में प्रवेश करता है। इस प्रकार सभी नरकों को पार करके वह तिर्यकयोनि में, फिर कृमि, पतंगा, कोट, मच्छर फिर गौ, घोड़ा, हाथी, वृक्ष, लता आदि योनियों में जन्म ग्रहण करता है तथा मनुष्य योनि में भी कुबड़ा या बौना, कुत्सित कर्म करने वाला, चाण्डाल पुल्कस आदि नीच योनियों में जन्म ग्रहण करता है। इन पाप कर्मों के फलों को भोगने के बाद अपने शेष पुण्य के प्रभाव से मनुष्य योनि में क्रमशः शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण होता हुआ देवत्व को प्राप्त कर सकता है।

पुण्यकर्मों को करने वाला व्यक्ति मृत्यु के पश्चात उस गति को प्राप्त करता है जहाँ कि उसके जाते समय गन्धर्व गण मधुर गान करते हैं तथा अप्सरायें नृत्य करती हैं। चारों तरफ नूपुरों की ध्वनि सुनाई देती है। दिव्यमालाओं से युक्त दिव्य विमान में सवार होकर वह स्वर्ग को जाता है। पुण्य समाप्त होने के बाद फिर वह स्वर्ग से गिरकर राजवंश में या महात्माओं के वंश में जन्म ग्रहण करता है। वहाँ वह

सदाचार का पालन करता हुआ, सब प्रकार के सुखों को प्राप्त करता हुआ, मोक्ष को प्राप्त करता है।

गर्भ दशा वर्णन

गर्भ स्थिति का वर्णन करते हुए सुमति ने अपने पिता से कहा—जब मनुष्य का वीर्य एवं स्त्री के परिपक्व रज का संयोग होता है तो उसमें नरक या स्वर्ग से मुक्त व्यक्ति आश्रय लेता है। रज व वीर्य का मिश्रण एक बुदबुदे (बुलबुला) के रूप में अण्डाकार या लम्बाकार रूप धारण करके जीव का प्रारम्भिक रूप धारण करता है। यह बुल-बुला मांसपिण्ड का रूप धारण करके पंचतत्वों से युक्त होकर मनुष्य के विभिन्न अंगों को विकसित करता है। उन मुख्य अंगों के उपाङ्ग जैसे नेत्र, अंगुली, नाक, मुख, कान, नाखून तथा त्वचा पर रोम यानि बाल उत्पन्न होकर क्रमशः वृद्धि को प्राप्त करता है। नारियल के फल की भांति जो कि एक कोश से वृद्धि को प्राप्त होता है। ठीक उसी भाँति यह पिण्ड (कोश) भी नीचे की ओर मुख किये धीरे-२ वृद्धि को प्राप्त करता है। गर्भ में स्थित जीव दोनों घुटनों पर दोनों हाथों को रख करके अंगूठों को ऊपर की ओर रख करके एवं अंगुलियों को आगे की ओर करके वृद्धि को प्राप्त होता है। घुटने (जानू) के पिछले भाग में नेत्र

और मध्य भाग में नाक तथा नितम्ब पर दोनों नाड़ियों को रख करके और अपनी दोनों भुजाओं को बाहर करके धीरे-धीरे जीव वृद्धि को प्राप्त होता है। स्त्री आयनी नामक नाड़ी (प्लेसेन्टा) स्त्री की आंत से तथा जीव नाभी कमल से जुड़ा होता है। माता जो कुछ भी खाती है उसका रस अपनी नाड़ी द्वारा जीव को प्राप्त होता है। वही उसका भोजन मिलने का माध्यम होता है। गर्भस्थ-जीव को अपने पूर्वकर्मों की सारी बातें याद हो आती हैं। गर्भ के अन्दर जो कष्ट उसे अनुभव होता है उससे उसका मन विरक्त हो जाता है। भगवान से प्रार्थना करने लगता है—हे प्रभो! अब पुनः मैं इस गर्भ से निकलने के पश्चात पाप कर्मों को न करके इतने पुण्य कर्मों को करूंगा कि पुनः गर्भ में आने की स्थिति पैदा न हो। इस प्रकार जीव नवें या दसवें मास में गर्भ से बाहर निकलते समय प्राजापत्य वायु (सर्जनात्मक वायु) से पीड़ित होता है, भयंकर कष्ट का अनुभव करता है। तथा गर्भ से निकल कर असह्य पीड़ा के कारण वह मूर्छित हो जाता है। फिर जब उसे बाहर की वायु स्पर्श करती है तब उसे ज्ञान हो जाता है परन्तु साथ ही वैष्णवी मोहनी माया जीव को अपनी माया से मोहित करके पूर्व जन्म के ज्ञान को नष्ट कर देती है। पूर्व जन्मों के ज्ञान से रहित वह जीव शैशवावस्था एवं वृद्धावस्था को प्राप्त होता

है। फिर मृत्यु को प्राप्त होकर पूर्ववत् गर्भ में स्थित होकर जन्म ग्रहण करता है। इस प्रकार जीव संसार चक्र में घटि यन्त्र (रहट-कुए से पानी निकालने वाली चर्खी) की भांति चक्कर काटता है।

इस प्रकार जीव कभी स्वर्ग कभी नरक तथा कभी स्वर्ग-नरक दोनों का ही परिभ्रमण करते हुए मृत्युलोक को प्राप्त होता है। हालाँकि दुःख स्वर्ग व नरक दोनों में है। क्योंकि जब प्राणी नरक में होता है तब यह सोच-२ कर और दुःखी होता है। कि यदि मैंने पुण्य कर्म किया होता तो स्वर्ग के सुखों का उपभोग करता। और जब जीव स्वर्ग में सुख पाता है तब वह यह सोचकर कष्ट पाता है कि जब तक मेरे पुण्य हैं तभी तक मैं स्वर्ग में हूँ। परन्तु इन पुण्यों के क्षय हो जाने के बाद मुझे पुनः नरक या मृत्युलोक में जाना है, नरक में यह मनुष्य कितना कष्ट पाता है उतना ही कष्ट मुझे भी मिलेगा। इस प्रकार सोच-२ कर अपने स्वर्ग का आनन्द फीका कर देता है।

सुमति ने कहा—हे पिताजी ! किसी भी योनि में जन्म लेना, गर्भ में रहने तथा शैशवावस्था, युवावस्था एवं वृद्धावस्था सब में दुःख ही दुःख है। काम-क्रोध, एवं ईर्ष्या से युक्त युवावस्था तो कष्टपूर्ण है पर वृद्धावस्था के दुःख से मृत्यु का कष्ट उत्तम है। इस प्रकार हे पिताजी इस

संसार में लेशमात्र भी सुख नहीं है। इसलिये जब मैं ब्रह्म-पद (मोक्ष) की प्राप्ति हेतु प्रयत्न कर रहा हूं तो इस वेदत्रयी का क्यों अध्ययन करूं।

महारौरव आदि नरकों का वर्णन

पिता ने पुत्र सुमति से महारौरव आदि नरकों के विषय में जानने की जिज्ञासा प्रकट की। तो सुमति नरकों का वर्णन करने लगा। बोला–हे पिताजी! पहले मैंने आपको गर्भस्थ जीव का वर्णन करते समय रौरव नामक नरक का वर्णन सुनाया है। अब शेष नरकों के वर्णन को सुनिये।

१. महारौरव नरक–इसमें उस व्यक्ति को जो कि व्यभिचार अर्थात जिस स्त्री के साथ मैथुन करना उचित न हो, उसके साथ मैथुन करता है, अभक्ष्य भोजन करने वाला, मित्र से व स्वामी से विश्वासघात एवं शत्रुता का व्यवहार करने वाला, अपनी स्त्री का त्याग करके दूसरे की स्त्री के साथ संभोग करने वाला, मार्गों तालाबों आराम गृहों एवं उपवनों को नष्ट करने वाला होता है उसे यमदूत हाथ पांव बाँध कर महारौरव नरक में डालते हैं। महा-रौरव नामक नरक बारह योजन विस्तार वाला होता है। उसकी भूमि आग के अंगारे से तपकर लाल रंग की हो जाती है। जो विद्युत छटा की भांति सभी दिशाओं में

प्रकाशित होती है उसके पापी जीव दग्ध होते हैं। ऊपर से मार्ग में कौवे, बगुले, भेड़िये, उल्लू, बिच्छू, मच्छर, गृद्ध आदि हिंसक जन्तु नोंचते हैं पीड़ित करते हैं। हाय माँ, हाय बाप कहते हुए वह पापी जीव हजार वर्ष में उसे पार कर पाता है।

२. तम नरक—यह नरक महारौरव नरक के साथ ही होता है परन्तु यह अति शीतल होता है। इस नरक में गौ-हत्या करने वाले, भाई एवं बच्चों की हत्या करने वाले पापियों को यमदूत डालते हैं। वह पापी इस नरक में पड़ते ही भीषण शीत के प्रकोप से बचने के लिये इधर-उधर भागता है। परन्तु उसे छिपने का कोई स्थान नहीं मिलता। अतः अन्य पापियों के साथ लिपट कर वह रहता है। शीत से काँपने के कारण उसके दाँत टूट जाते हैं बर्फीली हवा के थपेड़ों से उसकी हड्डियां जकड़ जाती हैं। चमड़े फट जाते हैं जिससे रक्त व मज्जा गिरने लगता है। तम नरक में स्थित सभी पापी भूख प्यास से पीड़ित होते हैं अतः वे एक दूसरे का रक्त व मज्जा चाट-चाट कर अपनी भूख प्यास को मिटाते हैं तभी वह वहां से मुक्त होता है।

३. निकृन्तन नरक—यह कुम्हार के समान सदा ही घूमता रहता है इस चक्र में पापियों को कालसूत्र से ठीक उसी प्रकार काटा जाता है जिस प्रकार कि कुम्हार अपनी

चाक पर मिट्टी से घड़े आदि के निर्माण के समय सूत्र से काटता रहता है। वह पापी अनदेखे को देखे हुए के समान तथा अनसुने हुए को सुनने हुए के समान कहता है। इस नरक में वही मनुष्य जाता है जो कि गुरु को ईश्वर तुल्य नहीं मानता अथवा गुरु या शास्त्र के वचनों का पालन नहीं करता। ये पापी इस चाक पर काल सूत्र से पैर से मस्तक तक सैकड़ों बार काटे जाने पर भी नष्ट नहीं होता है। उसे कितना भी टुकड़े कर क्यों न काटा जाए। वे दुबारा जुड़कर पुनः एक हो जाते हैं। इस प्रकार वे हजार वर्ष तक काटे व जोड़े जाते हैं जब तक कि वे पाप मुक्त नहीं हो जाते।

४. अप्रतिष्ठ नरक—जो मनुष्य ब्राह्मणों के धर्म पालन में बाधा उत्पन्न करता है उसे यमदूत कठिन पाश में बांध कर इस नरक में डाल देते हैं। यहां महान् कष्ट होता है। यमदूत इस नरक में चक्र समूहों में ले जाते हैं वहां पर ये चक्र घटियन्त्र (रहट) की भाँति घूमते रहते हैं। पापी मनुष्यों को इन चक्रों में बाँध दिया जाता है जिससे वे इस घटियन्त्र के साथ चक्कर काटते रहते हैं जिस कारण बार-बार रक्त का वमन करते हैं आंतें मुख से बाहर निकल आती हैं, आँखें बाहर निकल आती हैं। इस प्रकार वह दारुण कष्ट को पाता है।

५. असिपत्र नामक—पृथ्वी को हजार योजन पार करके यह नरक एक जलती हुई आग का गोला है। यहाँ वे ब्रह्मचारी जो व्रत एवं तप से भ्रष्ट होते हैं डाले जाते हैं। वे सूर्य की प्रचंड किरणों से पीड़ित होकर उसमें गिरते हैं। इस नरक के मध्य में अति सुन्दर मनोहर तथा चिकने पत्ते वाला एक उपवन होता है। पत्ते अति तीक्ष्णधार वाले होते हैं वहां कुत्ते भीषण रूप से भौंकते रहते हैं जो बाघ की भांति भयानक प्रतीत होते हैं। भूख प्यास से पीड़ित वे पापी जीव अति भयभीत होकर के माँ बाप को आवाज देकर दारुण रुदन करते हुए और भीषण ताप से भी पीड़ित होने के कारण उस सुन्दर व शीतल वन में छुपने के लिए जाते हैं। परन्तु वहां जाने पर पेड़ों से तलवार के समान तीक्ष्ण धार वाली पत्तियाँ उस पापी के शरीर पर गिरकर उसे पीड़ित करती हैं फिर वे जलती हुई अग्नि में गिरकर दग्ध किये जाते हैं तथा कुत्ते उसे झपट-झपट कर झुण्डों में काटते हैं।

६. तप्त कुम्भ नरक—यह महान भयंकर कष्टदायी नरक है। इसके चारों ओर तीव्र अग्नि की ज्वाला जलती है उसके मध्य में तप्त तैल एवं लौह चूर्ण होता है। उस पर पापियों को यमदूत अधोमुख करके डाल देते हैं। जो पापी धर्मशास्त्र एवं तीर्थों की निन्दा करते हैं तथा शुभ लक्षण

वाली निर्दोष स्त्री को जो लांछन लगाते हैं वही उस लौह कुम्भ में डाल दिये जाते हैं। कुम्भ में डालते ही पापी का मस्तक फट जाता है, उबलता है, उसकी मांस मज्जा व रक्त जल कर शुष्क हो जाता है। उसके कपाल आदि शरीरस्थ हड्डियां बुरी तरह नष्ट हो जाती हैं। फिर गीध उसके शरीर को फाड़ देते हैं इस प्रकार वह तेल में पककर तेल में मिल जाता है, द्रव रूप हो जाता है। उसके बाद यमदूत कलछे से अच्छी तरह घुटाई करते हैं।

यमदूत एवं विदेहराज सम्वाद

फिर सुमति अपने पिता से बोला—हे पिताजी! मैंने इस जन्म से पूर्व सातवें जन्म में एक वैश्य परिवार में जन्म लिया था। तब मैंने पानी पीने जाती हुई गायों को रोका था। जिस कारण मैं अग्नि ज्वालाओं से युक्त एवं तीक्ष्ण लौह मुख वाले पक्षियों से युक्त नरक में डाल दिया गया। वहाँ पापियों के शरीर से निकले रक्त एवं पूय युक्त कीचड़ रहता था। उसमें स्थित सभी पापी करुण क्रन्दन करते रहते थे। उस नरक में मैं महाताप एवं प्यास से पीड़ित सौ वर्षों तक रहा। तो एक सुन्दर आनन्ददायी सुगन्धित हवा का झोंका आया। उस पवित्र हवा के झोंके से वहाँ हम जितने पापी पीड़ित थे सभी के कष्ट दूर हो गये एवं जिस प्रकार

कि स्वर्ग में स्वर्गवासियों को परमशान्ति मिलती है उसी प्रकार की शांति अनुभूत हुई। हम इस आश्चर्यजनक घटना से चारों तरफ विस्मित नेत्रों से देखने लगे। तभी हमारे पास एक महान पुरुष आता हुआ दिखाई दिया। वज्र के समान दण्ड लिए भयंकर यमदूत उन्हें नरक का मार्ग दिखा रहा था। तब हम सभी ने ऐसा अनुभव किया कि इस नरक में जो स्वर्ग जैसा सुख प्राप्त हुआ है वह सुख इन्हीं महान पुरुष के कारण प्राप्त हुआ है। अतः हम सभी ने हाथ जोड़ कर उस महापुरुष से थोड़ी देर यहीं रुकने के लिए निवेदन किया। वे महापुरुष हमारे पास रुक गये। हम लोगों ने कहा—आपके शरीर से स्पर्श करके आने वाली हवायें हम लोगों को परम शान्ति प्रदान कर रही हैं। अतः आप क्षण भर यहीं ठहरें उन महापुरुष ने असंख्य कष्टों से युक्त संकुल नरक को देखा और वह यमदूत से बोला—हे यमदूतों मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है जिस कारण मुझे यह दारुण कष्ट वाला नरक देखने को मिला। मैं विदेह राज के राज परिवार में उत्पन्न होकर प्रजा का अच्छी तरह पालन करता था। मैंने चारों वर्णों के धर्मों की ठीक उसी प्रकार से रक्षा की है जिस प्रकार कि मनु ने प्राचीन काल में रक्षा की थी।

मैंने बहुत से यज्ञ आदि हवन किये, पृथ्वी का अच्छी

तरह परिपालन किया, युद्ध क्षेत्र में कभी पीठ नहीं दिखाई, अतिथियों का कभी तिरस्कार नहीं किया। पितर, देवता, ऋषि-मुनि एवं सेवकों को सदा प्रसन्न रखा। अपनी जानकारी में कभी भी किसी प्रकार का पाप नहीं किया तो फिर यह मुझे दारुण नरक क्यों प्राप्त हुआ है।

कर्मफल की प्राप्ति

विदेहराज के बार-बार पूछे जाने पर कि किस पाप के कारण मुझे यह नरक देखने को मिला है सुनकर यमदूत बोला—हे राजन ! आपने अपने द्वारा अच्छा धर्म कर्म किये जाने का जो कुछ भी कहा है वह पूर्णतया सत्य है, परन्तु आपने एक छोटा सा पाप किया है उसको मैं याद दिलाता हूं। सुनिये—

विदर्भ राजा की कन्या जिसका नाम पीवरी था वह आपकी पत्नी थी। एक बार जब वह ऋतुमति हुई थी। तब आपने अपनी पत्नी के साथ समागम करके संतुष्ट नहीं किया था, उसे ऋतुबन्ध्य किया था। उस समय आप केकय नरेश की रमणीय कन्या के साथ प्रेम में आसक्त थे। अतः अपनी पत्नी के इसी ऋतुव्यतिक्रम से आपको घोर नरक का दर्शन हुआ है। क्योंकि जिस प्रकार अग्नि आहुति के समय घृत व हवन सामग्री आदि की इच्छा रखती है, ठीक

उसी प्रकार ऋतुकाल के समय पत्नी भी वीर्याधान (प्रजापति बीज) की अपेक्षा करती है। अतः जो पुरुष चाहे महान् से महान धर्मात्मा क्यों न हो, परन्तु यदि वह भी अपनी पत्नी के ऋतुमति होने पर उसके साथ समागम नहीं करता वीर्याधान की क्रिया नहीं करता और दूसरी स्त्री के प्रति कामासक्त होता है। वह पितृऋण से मुक्त नहीं होता और पापी बनकर नरक को प्राप्त होता है। अतः हे राजन! आपने इसी पाप के कारण इस नरक का दर्शन किया। अब अपने पुण्य कर्मों के फलों को भोगने के लिए स्वर्गलोक में चलें।

राजन् बोले—हे भाई यमदूत! जहाँ तुम ले चलोगे वहाँ तो चलना ही पड़ेगा। परन्तु चलने से पहले मेरे कुछ प्रश्नों का उत्तर देकर चलो। मैं इस नरक में यह देख रहा हूं, कि ये कौए किसी की आँख तो किसी की जीभ नष्ट कर रहे हैं, परन्तु उनके आँख व जीभ बार-बार उत्पन्न हो जाते हैं। किसी को आरे से चीरा जा रहा है तो किसी को गर्म बालु, या उबलते तेल में पकाया जा रहा है। किसी के अंगों को ये लोहे के चोंच वाले पक्षी क्षत विक्षत कर नष्ट कर रहे हैं। आखिर ऐसा क्यों हो रहा है कृपया कारण समझाओ।

यमदूत बोला—इन सबका कारण मैं संक्षेप में सुना रहा हूं। सुनिये—सभी मनुष्य अपने पाप एवं पुण्य कर्मों के

फल को भोगता है और इन फलों को भोगे जाने पर ही पाप और पुण्य क्षय होते हैं। दरिद्र एवं पापी मनुष्य दुर्भिक्ष से दुर्भिक्ष को, क्लेश से क्लेश को, भय से भय को एवं मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार वे उत्सव से उत्सव को स्वर्ग से स्वर्ग को एवं सुख से सुख को प्राप्त होते हैं। यानि कहने का तात्पर्य यह है कि श्रद्धावान, उदारचेता, दानी, शुभकर्मा एवं पुण्यात्मा व्यक्ति सदा ही उत्तम सुगन्धित माला, उत्तम वस्त्र, उत्तम विमान, उत्तम आसन और भोजन प्राप्त करता है। स्वर्गलोक में गन्धर्वों सिद्धों और अप्सराओं के मधुर संगीत एवं नृत्य का आनन्द लेता है। ठीक इसके विपरीत पापी व्यक्ति अपने पाप कर्मों के कारण बाघ, हाथी, सर्प, चोर, विपत्ति आदि भय के कारण मारे जाते हैं। नुकीले काँटों, कीलों व तीव्र अग्नि पर से पैर रखकर असह्य दुःख को झेलना पड़ता है। उसी प्रकार अन्य पाप कर्मों के कारण शिरःशूल, असाध्य रोग, अपथ्य भोजन, भीषण शीत एवं ताप आदि दुसह कष्टों को सहता है। इस प्रकार मनुष्य अपने किये गये पाप व पुण्य कर्मों के अनुसार ही दुसह दुःख एवं अपरिमित सुख को भी प्राप्त करता है।

जो पापी किसी पराई स्त्री को बुरी दृष्टि से देखता है उसी की आँखें उतने ही हजार क्षण तक बार-बार इनकी

आँखें पैदा होती हैं निकाली जाती हैं। जो व्यक्ति किसी को गलत परामर्श देता है गलत शास्त्रोपदेश देता है। मिथ्या भाषण करता है, वेद शास्त्रों देवताओं, ब्राह्मणों एवं गुरुजनों की निन्दा करता है उसी की जीभ बार-बार काट दी जाती है। जो पापी व्यक्ति पिता पुत्र, भाई-भाई, मित्र-मित्र, याज्ञिक-यजमान, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी में मत-भेद पैदा कराते हैं वही नीच आरे से चीरे जा रहे हैं। जो पापी दूसरों को कष्ट देते हैं, किसी के आनन्द में बाधा पहुंचाते हैं, सज्जन पुरुषों को प्राणनाशक कष्ट पहुचाते हैं वही तप्त बालू व कीचड़ में डाले जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी के द्वारा निमन्त्रित होने पर भी अन्य व्यक्ति के श्राद्ध को खाता है तो उसकी जिह्वा को पक्षी खींचते हैं। जो व्यक्ति कटु वचन बोलकर सज्जन पुरुषों के हृदय को कष्ट पहुंचाते हैं या वाणी या बुद्धि से किसी की निन्दा करते हैं चुगलखोरी करते हैं उनकी जीभ तीक्ष्ण छुरों से चीरी जाती है। जो उद्दण्ड व्यक्ति माता पिता एवं गुरु-जनों का अपमान करते हैं। वे ही मल-मूत्र एवं पूय के गड्ढों में अधोमुख करके डाले जा रहे हैं। जो व्यक्ति ब्राह्मण एवं अन्य वर्ग के लोगों को एक साथ बैठाकर या अपथ्य भोजन कराते हैं वे ही यहाँ मल का भक्षण करते हैं समूह में कहीं जाने पर जो व्यक्ति अपने निर्धन साथी को

जान-बूझकर छोड़कर खाता है वहाँ यह कफ और थूक का भोजन करता है। जो व्यक्ति जूठे हाथों से गौ ब्राह्मण व अग्नि को स्पर्श करता है यहाँ उनके हाथ अंगारे में जलाये जाते हैं। गाय, अग्नि, माता-पिता, ब्राह्मण, बड़े भाई-बहन जामाता, गुरु, वृद्ध आदि को पैर से स्पर्श करते हैं उन्हीं के पैर बाँध करके अग्नि में खड़ा करके जलाये जा रहे हैं। जो पापी खीर, खिचड़ी, छाग (छाछ) तथा अन्य देवान्न को बिना संस्कार किये ही खा लेते हैं उन्हीं पापात्माओं को आँखें निकाल कर जमीन पर डाल दी गई हैं। जो गुरु देवता, ब्राह्मण एवं वेद की निन्दा सुनकर वह भी उसे अनुमोदित करता है यमदूत उन्हीं पापी के कानों में लाल-लाल गर्म लोहे की छड़ें डालकर पीड़ित करते हैं। जो व्यक्ति क्रोधावेश में प्याऊ, देवस्थान एवं ब्राह्मण के निवास स्थान को नष्ट कर देते हैं। यमदूत उन्हीं पापियों की खालों को तीक्ष्ण हथियारों में उखाड़ रहे हैं। जो व्यक्ति गौ, ब्राह्मण एवं सूर्य की ओर मुख करके मलमूत्र का त्याग करते हैं कौए उन्हीं के गुदा मार्ग से आँतों को खींच रहे हैं। जो व्यक्ति अपनी पुत्री को किसी से ब्याहने के बाद फिर किसी दूसरे व्यक्ति से ब्याह देता है उसी के शरीर में अनेकों घाव उत्पन्न करके खारे जल में डालकर पीड़ित किया जा रहा है। जो व्यक्ति दुर्भिक्ष काल में अपने पुत्र,

भृत्य, पत्नी आदि पारिवारिक जनों को त्याग कर अपना ही पेट पालने में व्यस्त हो जाता है। यमदूत उस भूखे को उसी का मांस नोंच कर उसके मुख में डाल रहे हैं। घूसखोर व्यक्ति अथवा जो व्यक्ति अपने शरण में आये हुए को पैसे के लालच में त्याग करते हैं अथवा जो व्यक्ति अपने द्वारा किये गये अनुष्ठान आदि से प्राप्त पुण्य को बेच देते हैं वे यहाँ चक्की पीसते हैं। जो अध्यापक को नीचे के आसन पर बैठाकर स्वयं उच्चासन पर बैठकर शिक्षा ग्रहण करता है वह दिन रात भूख प्यास से तड़पता हुआ सिर पर भारी पत्थर के बोझ से दबा रहता है। जो मूर्ख जल में ही मलमूत्र त्यागता है थूकता है वे ही यहाँ पर थूक एवं मल-मूत्र से युक्त दुर्गन्धित नरक में पड़कर एक-दूसरे का मांस खा रहे हैं। जो व्यक्ति अपने यहाँ आये अतिथि को भोजन कराने से पहले ही खा लेते हैं, वेद तथा अग्नि का तिरस्कार करते हैं वे ऊँचे पर्वत चोटियों से गिराये जाते हैं। जो दुबारा ब्याही स्त्री के पति बनते हैं वे कीड़े बनते हैं और उन्हें चीटियाँ खाती हैं। जो व्यक्ति अधर्मी पुरुष का दान ग्रहण करता है सेवा तथा भोजन करता है वह पत्थर के मध्य वाला कीड़ा बनता है। जो व्यक्ति अतिथियों, मित्रों एवं सेवकों को अपमानित करता है तथा उनके समक्ष अकेले ही मिष्ठान्न खाता है वह आग का

गोला खाता है। पीठ पीछे निन्दा करने वाले अन्धे बहरे गूंगे व भूख से व्याकुल होकर घूमते हैं। इस प्रकार से ये सब पापी अपने-अपने पाप कर्मों के अनुसार पाप के फलों को भोग रहे हैं।

जो दुष्ट ब्राह्मण सदा मिलकर श्राद्ध भोजन करने में मस्त रहते हैं वे सर्पों के सर्वांग से निकले फेन को खाते हैं। सोने की चोरी करने वाला, ब्रह्महत्या करने वाला, शराब पीने वाला, गुरु पत्नी के साथ सम्भोग करने वाला ये चारों प्रकार के पापी तीव्र आग में कई हजार वर्षों तक जलाये जाते हैं। फिर ये सभी पापी मनुष्य योनि में जन्म लेकर कुष्ठ एवं यक्ष्मा रोग से पीड़ित होते हैं तथा मृत्यु को प्राप्त होकर पुनः नरक को भोग करके जन्म ग्रहण करते हैं। तथा गौ हत्यारा तीन जन्मों तक नरक में जाता है। इस प्रकार ये पापी अनेकों बार जन्म लेते हैं मरते हैं नरक में जाते हैं। उनके आवागमन का चक्र चलता ही रहता है।

पापियों को नरक से मुक्ति

यमदूत ने आगे कहा—राजन्! नीच पतित एवं दुष्ट व्यक्ति का दान लेने वाला ब्राह्मण गदहे की योनि में, दुष्ट याचक नरक योनि में, गुरु से झूठ बोलने वाला एवं गुरु पत्नी तथा उसके धन की इच्छा रखने वाला व्यक्ति कुत्ते

की योनि में, माता-पिता को अपमानित करने वाला गदहे की योनि में और क्रोध के साथ माता-पिता से वाणी बोलने वाला मैना की योनि में, भाई एवं पत्नी को अपमानित करने वाला कबूतर की योनि में तथा भाई एवं पत्नी दोनों को ही सताने वाला कच्छप योनि में स्वामी का अन्न खाकर उसकी इच्छानुकूल कार्य न करने वाला व्यक्ति बन्दर की योनि में, किसी की धरोहर को हड़प जाने वाला कीट योनि में, दूसरों से ईर्ष्या और द्वेष रखने वाला व्यक्ति राक्षस योनि में, धान, जौ, तिल, उड़द, कुलत्थ, सरसों, चना, मटर, चावल, लोबिया, गेहूं, अलसी अथवा अन्य किसी भी प्रकार के अन्न को चुराने वाले व्यक्ति गंजे सिर वाला और बड़ा मुंह वाला चूहा योनि में, परस्त्री गामी पुरुष भेड़िया योनि में नरक से छूटकर उत्पन्न होता है।

भाई की पत्नी के साथ संभोग करने वाला व्यक्ति क्रमशः कुत्ता, गीदड़, बगुला, गिद्ध, सर्प और कंक योनि में मित्र की पत्नी, गुरु पत्नी और राजपत्नी से समागम करने वाला व्यक्ति कोयल योनि में, तथा इन्हीं स्त्रियों से बलात्कार करने वाला पापी कुकर्मी व्यक्ति सुअर योनि में, यज्ञ दान एवं विवाह आदि शुभ कर्मों में बाधा पहुंचाने वाला तथा अपनी कन्या को दुबारा किसी को देने वाला कीट

योनि में, देवताओं, पितरों एवं ब्राह्मणों को खिलाये बिना खाने वाला काक योनि में, बड़े भाई को अपमानित करने वाला क्रौंच पक्षी की योनि में, शूद्र और ब्राह्मण की स्त्री के साथ सम्भोग करने वाला कीट योनि में तथा इन्हीं स्त्रियों से सन्तान पैदा करने वाला काष्ठ का कीड़ा तथा सुअर कृमि और चाण्डाल योनि में उत्पन्न होता है। अकृतज्ञ एवं नीच प्रकृति वाला व्यक्ति कीट, पतंगा, वृश्चिक, मछली, कौआ, कछुआ आदि नीच योनियों में, शास्त्रहीन व्यक्ति की हत्या करने वाला खच्चर योनि में, स्त्री एवं बालक की हत्या करने वाला कृमि योनि में उत्पन्न होता है।

नाना प्रकार के खाद्य पदार्थों को चुराने वाला व्यक्ति जैसे—दूध चुराने वाला बिलाव योनि में तिल व मिश्रित अन्न को चुराने वाला मूषक योनि में, घी चुराने वाला नेवला और कौआ योनि में, मछली का माँस चुराने वाला कौआ, बकरे का माँस चुराने वाला बाज, नमक चुराने वाला झींगुर, दही चुराने वाला कीड़ा, तेल की चोरी करने वाला बर्र योनि में, शहद चुराने वाला डाँस (एक प्रकार का कीट) योनि में, मालपुआ चुराने वाला चींटी, हविष्यान्न को चुराने वाला बैल, काढ़ा चुराने वाला तीतर योनि में नरक से छूटकर जन्म लेते हैं।

लोहे को चुराने वाला कौआ, कांसे अथवा चांदी के पात्र को चुराने वाला कबूतर, स्वर्ण पात्र चुराने वाला कृमि योनि में, रेशमी वस्त्र चुराने वाला चकवा, अन्य वस्त्रों को चुराने वाला रेशमी कीट, दुकूल चुराने वाला भौंरा, अंशुक चुराने वाला तोता, ऊनी वस्त्र चुराने वाला भालू, कपास से निर्मित वस्त्र चुराने वाला क्रौंच पक्षी, काषाय वर्ण के वस्त्र को चुराने वाला बगुला पक्षी, हरे रंग के वस्त्र को चुराने वाला मोर पक्षी, लाल वस्त्रों को चुराने वाला चकोर पक्षी, श्वेत वस्त्रों को चुराने वाला छुछुन्दर, सुगन्धित वस्त्रों को चुराने वाला खरगोश योनि में जन्म लेता है। पुवाल चुराने वाला खंजन पक्षी, लकड़ी चुराने वाला घुन, फूल चुराने वाला दरिद्र, शाक या फल चुराने वाला हरित नामक कबूतर, जल चुराने वाला चातक, दूसरे की भूमि अपहरण करने वाला भीषण शैख आदि नरकों से मुक्त होकर क्रमवार तिनका, बेल, लता, झाड़ी, वृक्ष की छाल आदि वानस्पतिक योनियों को पार कर मनुष्य योनि में पैदा होता है। बैल के अण्ड-कोषों को छेदने वाला व्यक्ति नपुंसक योनि में पैदा होता है। इस प्रकार मनुष्य अपने पाप कर्मों के फल-स्वरूप विभिन्न योनियों में पैदा होता है अथवा मनुष्य योनि में ही अंधा, लंगड़ा, बहरा, गूंगा, कोढ़ी, यक्ष्मा,

कैंसर आदि असाध्य रोगों से पीड़ित होता है अथवा मुख रोग, गुदा रोग व नेत्र रोग से पीड़ित होता है या मिर्गी रोग का शिकार होता है। अप्रज्वलित अग्नि में हवन करने वाला व्यक्ति अजीर्ण, व्याधि एवं मन्दाग्नि आदि उदर रोगों से पीड़ित होता है। यमदूत बोला—हे राजन् ! यह तो रहा पाप करने वालों का वृतान्त अब थोड़ा सत्कर्म करने वालों का वृतान्त सुनिए—

वेदशास्त्रों के वचनों को स्वीकार करने वाला, सभी जीवों के कल्याणार्थ सत्यवक्ता, गुरुजनों, देवताओं, ऋषियों एवं सिद्ध पुरुषों के पूजन करने वाले, सज्जन पुरुषों के साथ सत्संग करने वाले, आगन्तुकों को उचित सम्मान देने वाले, सभी के साथ मित्रवत् व्यवहार करने वाले एवं अन्य शुभ धार्मिक कार्यों को करने वाले व्यक्ति को पुण्यात्मा मानना चाहिए। इस प्रकार यह व्यक्ति स्वर्ग से मुक्त होकर मृत्युलोक में श्रेष्ठ पुरुष योनि में पैदा होते हैं। इस तरह हे राजन ! अपने-अपने पाप-पुण्य कर्मों के भोगने वाले पापी एवं पुण्यात्माओं के सम्बन्ध में आपको सब कुछ मैंने बता दिया। तथा आपने नरक भी देख ही लिया है आइए अब अन्यत्र चलें।

सुमति पिता से बोला—हे पिताजी ! जब राजा यम-दूत को आगे करके पीछे-पीछे चलने को तैयार हुए तो

सभी नरक वासी हाथ जोड़कर चीखते वे बिल-बिलाते हुए राजा से प्रार्थना करने लगे। हे राजन ! आप हम लोगों पर दया करके थोड़ी देर और रुकने की कृपा करें। क्यों कि आपके शरीर को स्पर्श करके जो सुगन्धित वायु हम लोगों के शरीर को स्पर्श कर रही है उससे शारीरिक सन्ताप नष्ट होने के साथ नारकीय पीड़ा भी नष्ट हो रही है। तब अन्य नरकवासियों की प्रार्थना को सुनकर राजा ने यमदूत से पुनः प्रश्न किया। मैंने मृत्युलोक में कौन सा ऐसा पुण्य कर्म किया है जिसके कारण मेरे यहाँ रहने से इन लोगों का सन्ताप नष्ट हो रहा है कृपया बताने का कष्ट करो।

यमदूत बोला—हे राजन ! आपने सदा ही देवताओं पितरों एवं अतिथियों आदि को भोजन से सन्तुष्ट कराने के पश्चात् ही शेष अन्न को खाया है। उसी से आपका यह शरीर पुष्ट हुआ है। इसीलिए आपके शरीर से निकली वायु इन पापियों के नरक की पीड़ा को मिटा रही है। आपने अश्वमेध यज्ञों को विधिवत् किया है इसीलिए आपके दर्शन करके यमराज के यन्त्र, शस्त्र, अग्नि एवं तीक्ष्ण चोंच वाले पक्षी जो कि इन नरकवासियों को पीड़ित करते थे अब पीड़ित करना भूल गये हैं। यमदूत के इस प्रकार के उत्तर को सुनकर राजा बोले—हे यमराज के

दूत ! मेरे विचार से दुःखी व्यक्तियों को सुख देने में जिस सुख का अनुभव होता है। वह सुख स्वर्गलोक में या ब्रह्म-लोक में भी प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये हे दूत नरक वासियों को सुख प्रदान करने हेतु अब तो मैं यहीं रहूंगा।

यमदूत बोला—नहीं राजन ! आप इन पापकर्मियों को त्याग करके मेरे साथ स्वर्ग में आइये और अपने पुण्य कर्मों के आधार पर स्वर्ग का सुख भोगिये।

राजा बोले—हे भद्र ! यदि मेरे यहाँ रहने से भूख प्यास से पीड़ित, सन्ताप करने वाली एवं दुर्गन्धित वायु तथा अग्नि आदि अन्य साधनों से ये नरकवासी यदि अब पीड़ित नहीं हो रहे हैं। मात्र मेरी उपस्थिति से ही यदि ये सब प्रकार से सुख अनुभव कर रहे हैं। यदि मेरे को कष्ट पाने पर भी इन लोगों को सुख का अनुभव हो रहा है तो मैं यहीं रहूंगा। आप स्वर्ग में जा रहे हैं जाइये। जब राजा स्वर्ग जाने को तैयार नहीं हुए तो उन्हें स्वर्ग ले जाने के लिए स्वयं धर्मराज और इन्द्र आये। दोनों ही राजा को शेष नरकवासियों को छोड़कर स्वर्ग में चलने के लिए समझाने लगे। परन्तु राजा किसी भी कीमत पर इन नरकवासियों को छोड़कर स्वर्ग जाने को तैयार नहीं हुए। बोले—मेरे जितने भी पुण्य हैं उससे इन व्यक्तियों को नारकीय जीवन से मुक्ति दिलायें। भले ही इन सबके

बदले मुझे नारकीय जीवन बिताना पड़े स्वीकार है। राजा को अपने लक्ष्य में दृढ़ देखकर धर्मराज एवं इन्द्र ने उन प्राणियों को नरक से मुक्त करके उनके कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म दे दिया तथा राजा को दिव्य विमान में स्वर्ग में ले गये।

सुमति बोला—हे पिताजी ! मैंने जिस प्रकार स्वयं ही पूर्व जन्मों को देखा है एवं अनुभव किया है वह सब आपको बता दिया। और अब आगे क्या जानने की अभिलाषा है सो कहिये।

पतिव्रता नारी की महत्ता

पुत्र बोला—अति प्राचीन काल में गोदावरी नदी के किनारे प्रतिष्ठानपुर नामक नगर में कौशिक नामक एक ब्राह्मण रहता था जो कि अपने पूर्व जन्मों के पापों के कारणों से कुष्ठरोगी होकर पीड़ित था। परन्तु स्वभाव से भी वह क्रोधी एवं कामी था। उसकी पत्नी सच्चे दिल से पतिव्रता थी। वह अपने कोढ़ी पति का भी देवता से भी बढ़कर सम्मान करती थी एवं उसकी सेवा टहल में दिन-रात तत्पर रहती थी। जैसे—उसके पैरों को दबाना, तेल मालिश करना, स्नान कराना, वस्त्र पहनाना, भोजन कराना, कफ, मल, मूत्र, रक्त एवं पूय आदि को साफ करना आदि।

इतना सब कुछ करने पर भी उसका पति कटु वचन बोल बोलकर उसे सताता रहता था फिर भी पत्नी पति की क्रोध पूर्वक कटुवाणी से दुःखी नहीं होती थी यह विनीत एवं साध्वी होकर पति को देवतुल्य मानकर सेवा में लगी रहती थी।

एक दिन पति ने अपनी पत्नी से कहा - तुम मुझे उस वेश्या के घर ले चलो जो राज मार्ग पर रहती है। जब से उसे देखा है तभी से वह मेरे दिल में बसी हुई है। उसको प्राप्त किये बिना मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलेगी। वह सुन्दर चांद सी चकोरी, मृगनयनी पीन पयोधि वाली, बिम्बी जैसे ओठों वाली सुडौल शरीर वाली जो कि अध-खिले पुष्पों की तरह मुस्कराती है उसने तीखे काम बाणों से मुझे घायल कर दिया है। हे सुभगे ! तुम मुझे वहां ले चलो। अब रात्रि हो चली है उस वेश्या ने यदि मुझे आलिङ्गन नहीं किया तो प्रातःकाल होते मुझे निश्चय ही मरा हुआ जानो। हालांकि पतिदेव में चलने फिरने की भी शारीरिक क्षमता का अभाव था।

वह पतिव्रता नारी अपने काम पिपासु पति के वचनों को नहीं टाल सकी। अतः उसने ढेर सारे पैसों की पोटली अपनी कमर में बाँध कर पति को कंधे पर लेकर वेश्या के घर की तरफ धीरे-धीरे चल दी। रात भयंकर अंधेरी थी।

रास्ते में कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। घनघोर बादल भी घिर आए थे। कभी-कभी आकाश में विद्युत की छटा ही उसको राह दिखा रही थी। रास्ते में मांडव्य नामक ब्राह्मण को झूठे ही वस्त्र चुराने के अपराध में सूली पर लटकाया गया था। अंधेरे में पत्नी के कंधे पर बैठे कोढ़ी पति का पैर नीचे लटक रहा था जो शूली से टकरा गया। शूली हिल गयी। जिससे माँडव्य को बड़ी पीड़ा हुई। अतः उन्होंने क्रोधित होकर शाप दिया। कहा, जिस पापी नीच ने अपने पैरों से इस शूली को हिलाकर मुझे कष्ट दिया है वह सूर्योदय होते ही सूर्य को देखने के साथ मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा।

माँडव्य के शाप को सुनकर पत्नी को बड़ा कष्ट हुआ। वह बोली—यदि मेरे में सतीत्व है तो अब 'सूर्योदय नहीं होगा।' उसके बाद सूर्योदय होना बन्द हो गया। निरन्तर कई दिन तक रात ही रात बीत गई। जिससे देवता लोग व्याकुल हो गये और ब्रह्मा के पास जाकर अपनी शंका प्रकट की कि दिन रात दोनों ही न होने में कहीं स्वाध्याय वषटयुक्त आहुतियाँ तथा हवन आदि से हीन होकर इस संसार का विनाश ही न हो जाये। क्योंकि रात्रि-दिन की व्यवस्था न होने के कारण महीने नष्ट हो गये हैं। सूर्य के उत्तरायण-दक्षिणायण का ज्ञान नहीं हो रहा है। अतः

अयन के ज्ञान हुए बिना वर्ष, वर्ष के बिना काल कैसे ज्ञात होगा। सूर्योदय के बिना तो स्नान, ध्यान, दान, अग्निहोत्र एवं यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठान बन्द हो जायेंगे। इस प्रकार निरन्तर ही अन्धकार का बने रहना सभी जड़ एवं चेतन प्राणियों के विनाश का कारण हो जाएगा। इसलिए हे पितामह! आप ही कोई ऐसा उपाय करें जिससे कि पूर्व की भाँति दिन रात होवें और विनाश से इस संसार को बचाया जा सके।

इस प्रकार ब्रह्मा जी ने शंका एवं भय से युक्त देवताओं को समझाते हुए कहा कि हे देवगणों ? तेज से तेज का, तप से तप का शमन किया जाता है। पतिव्रता की महत्ता के कारण ही सूर्य का उदय नहीं हो रहा है जिससे देवताओं एवं मनुष्यों को कष्ट हो रहा है। इस कष्ट से निवारण करने में अत्रिमुनि की पतिव्रता पत्नी अनुसूइया जी ही समर्थ हैं। अतः आप लोग सूर्योदय होने के लिये उन्हीं से प्रार्थना करें। पितामह की आज्ञा मान कर देवता लोग अनुसूइया जी के यहाँ गये उनके चरणों में प्रणाम किया और दिन रात पूर्व की ही भाँति होने के लिए प्रार्थना करने लगे।

अनुसूइया बोलीं

पतिव्रताया माहात्म्यं न हीयेत कथंचिदिति ॥ ५२॥

अर्थात् पतिव्रता नारी की महत्ता कभी कम न हो। हे देवताओं! तुम लोग पतिव्रता नारी का सम्मान करो। मैं उस पतिव्रता को समझाऊँगी कि पुनः सूर्योदय होने लगे। जिससे कि दिन रात होने की व्यवस्था ठीक ढंग से चले। साथ ही यह प्रयत्न करूंगी कि मांडव्य के शाप के कारण उसके पति की भी मृत्यु न होवे।

अनुसूइया उस पतिव्रता नारी ब्राह्मणी के घर गई। उससे उसके धर्म व पति के कुशल क्षेम को पूछा ब्राह्मणी बोली मैं तो पति की सेवा को देवता की सेवा से भी बढ़ कर मानती हूं। पति की सेवा के कारण ही मैंने महान् फल को प्राप्त किया है। अनुसूइया उस ब्राह्मणी को समझाते हुए बोली—हे साध्वी! स्त्रियों के लिए न यज्ञ का, न श्राद्ध का, न उपवास आदि का ही विधान किया गया है क्योंकि वह मात्र पति की सेवा से ही पुरुषों द्वारा कष्ट सहकर कमाये गये पुण्य के आधे भाग की स्वामिनी बन जाती है और इच्छित लोकों को प्राप्त कर लेती है। "पति ही नारी की परम गति है।" पति देवताओं, पितरों एवं अतिथियों के सेवाभाव से जो कुछ पुण्य अर्जन करता है उस पुण्य का आधा अंश सरलता से मात्र पति सेवा करके प्राप्त कर लेती है। इसलिए हे सुभगे! तुम अपना

मन स्थिर रख करके अनन्य भाव से पति की सेवा करती रहो।

अनुसूइया की इस प्रकार की मधुर सदवाणी को सुनकर ब्राह्मणी बोली—हे कल्याणी! आपका शुभ दर्शन पाकर मेरा जीवन सफल हो गया वास्तव में आपके द्वारा दिये गये इस सदुपदेश से पति सेवा में प्रीति और अधिक गहरी हो गई है। कोई भी स्त्री पति की सेवा करके उसे प्रसन्न करके ही उसकी कृपा से सभी प्रकार के सुखों को पा सकती है। निश्चय ही स्त्री के लिए पति ही देवता है उसकी सेवा से बढ़कर अन्य कोई पूजा नहीं है। हे महाभागे! आपने मेरे घर आकर इस प्रकार का सुन्दर उपदेश देने की कृपा की है आप धन्य हैं। आप आदेश करें मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूं।

अनुसूइया ब्राह्मणी से बोली—हे सुभगे! इन्द्र आदि ये सभी देवता गण भयभीत हैं क्योंकि सूर्य के न निकलने से दिन रात नहीं होती है। जिससे यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठान बन्द हो गये हैं। इनके न होने से अनावृष्टि होगी, अकाल पड़ेगा। अन्ततः संसार का नाश हो जायेगा। अतः तुम इन देवताओं के आग्रह पर मेरी बात मानकर प्रसन्न हो जाओ। जिससे सूर्य पूर्व की भाँति उदय होने लगे और दिन रात की व्यवस्था क्रम भी ठीक हो जाये। तथा मेरे

पर विश्वास रखो मैं अपने पतिव्रत धर्म पालने के बल पर तुम्हारे पति को मांडव्य के शाप से मरने ही नहीं दूंगी। अपितु पूर्व की भाँति स्वस्थ भी कर दूंगी।

ब्राह्मणी ने अनुसूइया के वचनों को मानकर एवमस्तु ! कहा और उदय होने के लिए सूर्य की आराधन की। लालिमा लिए हुए सूर्य उदय हो गया तथा साथ ही उस पतिव्रता नारी का पति भी भूमि पर शाप के कारण गिरने लगा कि ब्राह्मणी अपने पति को गोद में लेकर बैठ गयी और व्याकुल हो गई।

अनुसूइया ने ब्राह्मणी को समझाकर धैर्य बंधाया फिर बोलीं—यदि मैंने किसी अन्य पुरुष को अपने पति समान न देखा हो तथा अपने शील, रूप, बुद्धि, वाणी एवं मृदुता आदि भूषणों से पति की सेवा की हो अपने पति से बढ़कर किसी अन्य देवता को भी सम्मान न दिया हो, यदि मैंने मन वचन और कर्म से पति की सेवा की हो तो यह ब्राह्मण पूर्ण स्वस्थ होकर युवावस्था को प्राप्त करे और अपनी पत्नी के साथ सौ वर्षों तक जीवित रहे। इस प्रकार अनुसूइया द्वारा प्रार्थना किये जाने के कुछ क्षण बाद ही वह युवक पूर्ण स्वस्थ होकर कान्तिमान शरीर वाला युवा अवस्था को प्राप्त करके उठ खड़ा हुआ। देवता लोग

प्रसन्न होकर आकाश से पुष्प वर्षा करते हुए तुरही दुन्दुभी आदि बजाने लगे।

दत्तात्रेय

देवतागणों ने प्रसन्न मुद्रा में अनुसूइया से कहा—हे कल्याणी ! तुमने यह देवताओं का महान कार्य किया है। अतः सूर्य के उदय होने के सदभाव से तुम वर मांगो। हम लोग तुम्हें वर देना चाहते हैं।

अनुसूइया बोली—यदि आप लोग वर देना ही चाहते हैं तो यदि पितामह ब्रह्मा मेरे ऊपर प्रसन्न हैं और मैं उस योग्य हूं तो ब्रह्मा, विष्णु व महेश्वर तीनों ही मेरे पुत्रत्व को प्राप्त करें और पति सहित क्लेश की मुक्ति के लिए मैं योग को प्राप्त करूँ। इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं सभी देवगण एवमस्तु कहकर अपने लोक को चले गये।

कुछ समय पश्चात् ब्रह्म रूप चन्द्रमा अनुसूइया के गर्भ से अत्रि मुनि के प्रथम मानस पुत्र हुए। फिर विष्णु के अंश से उत्पन्न अनुसूइया का स्तनपान करते हुए अत्रि मुनि के द्वितीय पुत्र दत्तात्रेय हुए। एवं रुद्र के तामसिक अंश से महर्षि दुर्वासा अनुसूइया के गर्भ से अत्रि के तृतीय पुत्र हुए। इस प्रकार ब्रह्मा के वरदान से चन्द्रमा, विष्णु के

वरदान से दत्तात्रेय एवं महर्षि दुर्वासा महेश्वर के वरदान से उत्पन्न हुए।

चन्द्रमा प्रजापति अपनी शीतल किरणों से लता औषधि मनुष्य आदि को तृप्त करते हुए स्वर्ग में रहते हैं, विष्णु अंशरूप दत्तात्रेय दुष्टों का संहार एवं सज्जनों का उपकार करते हुए प्रजा पालन में लगे रहते हैं तथा महर्षि दुर्वासा रुद्रात्मक देह से नेत्र, मन और वाणी द्वारा अपमान करने वाले दुष्टों का नाश करने लगे।

इस प्रकार दत्तात्रेय जी योग का अवलम्बन लेकर तथा महर्षि दुर्वासा माता-पिता को त्याग करके उन्मत्त भाव से सम्पूर्ण पृथ्वी पर विचरण करने लगे।

हालाँकि दत्तात्रेय जी में यह एक बड़ी विशेषता थी कि वे स्त्री के व अन्य विषय भोगी होते हुए भी वे निर्लिप्त रहते थे। योगीश्वर दत्तात्रेय स्त्री के साथ सुरापान आदि करते हुए भी चाण्डाल के घर के शराब की वायु के समान कभी दूषित नहीं हुए। वे सदा ही योगियों के द्वारा आराधना के इष्ट रहे और योगीश्वर स्त्री के साथ सुरापान करते हुए भी सदा अपनी तपस्या में लीन रहे।

दत्तात्रेय की महिमा

प्राचीन काल में एक समय जबकि कार्त्तवीर्य अर्जुन के पिता कृतवीर्य की मृत्यु के पश्चात् उन्हें (अर्जुन को) राज्याभिषेक करने के लिये आमन्त्रित किया। तो अर्जुन ने नगरवासियों, पुरोहितों एवं मंत्रियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि मैं नरक तुल्य इस राज्य को नहीं ग्रहण करूँगा। क्योंकि प्रजा के जिस हित के लिये प्रजा से कर लिया जाता है वह कार्य न हो तो उसे राजा द्वारा लेना बेकार है। व्यापारी अपनी आय का बारहवां भाग इसलिए देता है कि वह रास्ते में या अन्यत्र चोर बदमाशों द्वारा लूटा न जाये। उसका व्यापारिक कार्य सुरक्षित रहे। किसान आदि अन्य लोग भी अपनी आय का छठा भाग अपनी सुरक्षा के लिये ही देते हैं कि सुरक्षित जीवन और कारोबार की व्यवस्था करे। यदि राजा ऐसा नहीं कर पाता है और व्यापारियों को तथा अन्यों को अपनी सुरक्षा का उपाय स्वयं ही करना पड़े तो यह समझना चाहिए कि राजा चोर है। उस राजा को मृत्यु के पश्चात् नरक में ही जाना पड़ता है। उसके द्वारा किये गये सभी धर्म कर्म

निष्फल हो जाते हैं। यदि मैं तपस्या करके ऐसी योग शक्ति प्राप्त कर लूं कि पृथ्वी पर मेरे जैसा शक्तिशाली, ऋषि सिद्धि से सम्पन्न एवं शस्त्रधारी कोई अन्य न हो। जिससे मैं प्रजापालन का दायित्व निभा सकूं। तभी मैं राजा बनूंगा। अन्यथा नहीं।

अर्जुन के इस प्रकार के निश्चय को जानकर निपुण और वयोवृद्ध मन्त्री गर्ग बोले—हे राजकुमार! यदि आपकी ऐसी प्रबल इच्छा है शक्ति सम्पन्न होना चाहते हैं तो तीनों लोकों के रक्षक महात्मा दत्तात्रेय जी जो कि विष्णु का अंश हैं उनको आराधना करके प्रसन्न करें। वे योगशक्ति से सम्पन्न हैं उनके आशीर्वाद से अपूर्व शक्ति एवं ऋद्धि सिद्धि आदि को प्राप्त कर सकते हैं दत्तात्रेय की आराधना करके ही इन्द्र ने दैत्यों द्वारा जीती गई पृथ्वी और पदवी को उन्हें दुबारा युद्ध में परास्त कर पुनः प्राप्त किया था।

अर्जुन ने मन्त्री गर्गमुनि से इन्द्र द्वारा दत्तात्रेय को प्रसन्न कर इन्द्रत्व को पुनः प्राप्त करने का पूरा वृतान्त जानना चाहा। गर्ग मुनि ने कहा एक बार प्राचीन समय में दैत्यों एवं देवताओं में भयंकर युद्ध हुआ। उस युद्ध में दैत्य विजयी हुए। देवताओं को जान बचाकर युद्धक्षेत्र से भागना पड़ा। दैत्यों ने सभी लोकों पर विजय प्राप्त कर

इन्द्र से सिंहासन को भी छीन लिया। उस युद्ध में दैत्यों का सेनापति जम्भ था तथा अन्य विप्रचित्ति आदि प्रमुख दैत्य महान योद्धा थे। देवताओं के सेनापति इन्द्र थे जिन्हें युद्ध में मुंह की खानी पड़ी। देवताओं ने दैत्यों का विनाश करने की इच्छा से बालखिल्यादि ऋषियों को साथ लेकर वृहस्पति से विचार विमर्श किया। वृहस्पति ने देवताओं को परामर्श दिया कि आप लोग तपस्वी एवं परमयोगी अत्रिपुत्र दत्तात्रेय को भक्ति के द्वारा प्रसन्न कर दैत्यों के संहार हेतु उनसे वरदान प्राप्त करें। तो कार्य सिद्ध होगा।

देवतागण दत्तात्रेय के आश्रम को गये और उन्हें वहाँ लक्ष्मी के साथ बैठे व शराब पीते हुए देखा। गन्धर्व लोग उन्हें मधुर संगीतों का रसास्वादन करा रहे थे। देवताओं ने भी उन्हें प्रसन्न करने के लिए शराब के घड़े भेंट किये। फिर उनकी आराधना करने लगे। जब योगीश्वर दत्तात्रेय जी खड़े होते थे तो सभी देवतागण भी खड़े होते थे। जब दत्तात्रेय जी बैठते थे तो सभी बैठते थे। जब वे चलते थे तो सभी चलने लगते थे। अर्थात् महात्मा दत्तात्रेय जी जो क्रिया करते थे उसका अनुसरण सभी देवगण भी करते थे, कुछ काल पश्चात् दत्तात्रेय जी ने देवगणों से पूछा—आप लोग मेरी इतनी सेवा क्यों कर रहे हैं ? आप लोग मुझसे क्या चाहते हैं ?

देवताओं ने विनयपूर्वक कहा—हे मुनिवर! जम्भ आदि ने तीनों लोकों पर अपना अधिकार करके यज्ञ, हवन आदि कार्यों को नष्ट कर दिया है। अतः आप उन दैत्यों के संहार करने हेतु उपाय करके हमारी रक्षा करें।

पहले दत्तात्रेय जी अपने को शराबी कबाबी और विषयभोगी कहकर देवताओं को भरमाते रहे। परन्तु देवताओं ने स्तुति व प्रशंसा करना नहीं त्यागा और अपनी रक्षा हेतु तथा दैत्यों के संहार हेतु उपाय करने के लिए गुहार करते रहे। तब अन्ततः दत्तात्रेय जी प्रसन्न होकर देवताओं से बोले--यदि आप लोगों की ऐसी इच्छा है तो आप लोग उन दैत्यों को युद्ध हेतु मेरे आश्रम पर आमंत्रित करो। उन दैत्यों पर मेरी दिव्य दृष्टि पड़ते ही वे दैत्य तेजहीन व शक्तिहीन हो जायेंगे। जिससे उनका संहार हो जायेगा।

देवताओं ने दैत्यों को युद्ध हेतु मुनिवर के आश्रम पर बुलाया। दैत्यगण आश्रम पर आकर भयंकर युद्ध करने लगे। कुछ देवतागण प्राण मोह से मुनि के आश्रम के अन्दर प्रविष्ट कर गये। दैत्यगण भी साथ ही साथ आश्रम के अन्दर प्रविष्ट हो गये। वहां मुनि श्रेष्ठ दत्तात्रेय जी अपनी महारूपवती पत्नी (लक्ष्मी जी) के साथ बैठे सुरापान कर रहे थे। दैत्यों ने लक्ष्मी जी के रूप लावण्य पर मोहित होकर युद्ध करना भूल गये और आपस में विचार

करने लगे। इन तीनों लोकों का मुख्य तत्त्व स्त्री रत्न है। इसके प्राप्त करने से हम लोग कृतकृत्य हो जायेंगे। अतः हम लोगों को इस स्त्री को पालकी में बैठाकर अपने महल को ले चलना चाहिये। ऐसा विचार करके कामदेव से पीड़ित दैत्यों ने मुनि के पास बैठी उस साध्वी स्त्री (लक्ष्मी) को उठाकर पालकी में बैठा लिया और पालकी को अपने सिर के ऊपर उठाकर चल दिए। इसके बाद मुनि ने मुस्कराते हुए देवताओं से कहा—हे देवगणों! तुम लोग सौभाग्यशाली हो। यह लक्ष्मी सात स्थानों को अतिक्रमण करने के पश्चात् सभी दैत्यों का विनाश करा देगी।

देवताओं ने महातपस्वी दत्तात्रेय जी से पूछा—हे मुनि श्रेष्ठ! यह लक्ष्मी किन-किन स्थानों पर रहकर मनुष्य का कल्याण करती है या विनाश करती है?

दत्तात्रेय जी बोले—लक्ष्मी मनुष्य के पैर में रहकर गृह, सक्थिनी अस्थि (जंघा) पर रहकर वस्त्र, रत्न व नाना प्रकार के धन सम्पदा प्रदान करती है। लक्ष्मी गुह्य स्थान में रहकर स्त्री, गोद में रहकर पुत्र, हृदय में निवास करके सभी प्रकार की मनोकामनाओं को पूर्ण करती है। लक्ष्मी को कंठ में निवास करने पर कण्ठाभूषण तथा प्रवासी प्रियतम, भाई व स्त्री के साथ भेंट होता है। मुख में निवास करने से लक्ष्मी सुन्दर अन्न, सुन्दर वाक्य, सफल आज्ञा एवं

कवित्व की प्राप्ति होती है और यदि लक्ष्मी मस्तक पर निवास करती है तो उस मनुष्य को त्याग करके अन्यत्र चली जाती है। आज आप लोगों के सौभाग्य से यह लक्ष्मी दानवों के सिर पर चढ़ गई है। इसलिए अब तुम लोग बिना विलम्ब किये भयमुक्त होकर शस्त्र धारण करो और इन्हें मारो। ये सभी दैत्य मेरी दिव्य दृष्टि के पड़ते ही शक्तिहीन हो चुके हैं। इसलिए तुम लोग शंका रहित होकर इन दैत्यों का संहार कर डालो। पराई स्त्री के सम्पर्क से इन सब दैत्यों का पुण्य क्षय हो गया है इनकी तेज व शक्ति का ह्रास हो चुका है अतः अविलम्ब इन दैत्यों को मार डालो।

इस प्रकार दत्तात्रेय जी को आज्ञा पाकर दिव्य शस्त्रों को धारण करके दैत्यों पर प्रहार किया और सभी को मार कर नरकलोक में भेज दिया। इस प्रकार दैत्यगणों का नाश करके इन्द्र सहित सभी दत्तात्रेय जी की स्तुति करने लगे और लक्ष्मी जी भी उड़कर दत्तात्रेय जी के पास आ गई। देवतागण स्तुति कर रहे थे।

प्रणिपत्य ततो देवा दत्तात्रेयं महामुनि।
जयकृष्ण जगन्नाथ दैत्यान्तक हर प्रभो॥
नारायणाच्युतानन्त वासुदेवाक्षराजर।
त्वत्प्रसादात् सुखं लक्ष्मी राज्यं सम्पज्जनार्दन॥

शार्ङ्गधन्वंशचक्रपाणे भक्तानां नित्यवत्सल।
इति स्तुत्वा नाकपृष्ठं यथापूर्वं गताः सुराः ॥

देवताओं ने महामुनि दत्तात्रेय जी को प्रणाम करके कहा हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! हे दैत्यान्तक ! हे प्रभो ! हे अनन्त ! हे अच्युत ! हे नारायण ! हे अक्षय, अजर, वासुदेव ! हे शार्ङ्गधनु ! हे जनार्दन ! हे चक्रपाणे ! हे नित्य भक्तवत्सल आपकी कृपा से हमने अपनी धन सम्पदा से युक्त राज्य को प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार स्तुति करके देवगण स्वर्गलोक को चले गये।

गर्ग जी बोले—हे राजन ! यदि आप अपार धन सम्पदा व अपूर्व शक्ति को प्राप्त करना चाहते हैं तो महातपस्वी योगीश्वर दत्तात्रेय जी की आराधना करें।

कार्तवीर्यार्जुन द्वारा दत्तात्रेय जी की भक्ति

गर्ग जी के द्वारा दत्तात्रेय भगवान का वृतांत सुनकर कार्तवीर्य अर्जुन महात्मा योगीश्वर के चरणों में गये। अर्जुन ने उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर भक्तिपूर्वक अर्घ्य, पुष्पमाला, सुगन्धित द्रव्य, जल तथा चन्दन आदि भेंट करके पूजन किया करते थे तथा दत्तात्रेय जी के खाने के बाद जो जूठा अन्न बच जाता था उसे ही खाते थे। इस प्रकार अर्जुन मुनि श्रेष्ठ के आश्रम में रहकर उनको भक्ति पूजा अर्चना करने लगे। कुछ दिनों पश्चात् मुनि अर्जुन

की भक्ति से सन्तुष्ट होकर बोले—मैं तो शराबी व विषय-भोगी हूं सदा स्त्री में आसक्त रहता हूं। इसलिए हे राजन! सदा निन्दित कर्म करने वाला मैं किसी प्रकार का उपकार कर सकने में असमर्थ हूं तुम हमारी सेवा व्यर्थ कर रहे हो। अतः जो उपकार कर सकने में समर्थ हो उसकी सेवा करो।

अर्जुन समझ गये कि योगीश्वर हमें भरमा रहे हैं। वे मुनि को प्रणाम कर बोले—हे प्रभो! आप मुझे माया में क्यों भरमा रहे हैं? आप अपनी माया से युक्त होने के कारण निष्पाप हैं तथा यह देवी भी जगत जननी होने के कारण सदा ही पाप रहित हैं। अर्जुन के इस प्रकार के वचनों को सुनकर दत्तात्रेय जी प्रसन्न होकर बोले—हे राजन मैं तुम्हारी भक्ति से पूर्ण सन्तुष्ट हूं तुम इच्छित वर मांगो। तुम जो वर मांगोगे वही मैं दूंगा। योगीश्वर की इस प्रकार मधुर वाणी को सुनकर अर्जुन बोले—हे प्रभु! आप यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे उत्तम प्रचुर ऋद्धि देवें जिससे मैं प्रजा की सेवा में पाप का भागी न बनूं। युद्ध क्षेत्र में कोई मेरा सामना न कर सके। मैं लघुता को प्राप्त होकर सहस्रबाहु बनना चाहता हूं। पर्वत आकाश, जल, पृथ्वी एवं पाताल आदि में कहीं भी अव्या-हत गति हो। यदि कोई मेरा वध भी करे तो मेरे से बल-

वान पुरुष ही करे। अक्षय धन, दान एवं आतिथ्य को प्राप्त करें। मेरे राज्य में आपके स्मरण मात्र से ही धन-धान्य की कमी कभी न हो और आपके चरणों में सदा ही पवित्र भक्ति बनी रहे।

दत्तात्रेय ने एवमस्तु कहते हुए कहा कि हे राजन ! तुम मेरे आशीर्वाद से चक्रवर्ती राजा बनोगे।

अर्जुन ने दत्तात्रेय जी को प्रणाम कर अपने राज्य में आकर प्रजाजनों पुरोहितों सभी मन्त्रियों देवताओं और ऋषियों मुनियों को बुलाकर अपना राज्याभिषेक कराया। राजा मुनि की अनुकम्पा से अपूर्व धन सम्पदा वाला एवं महान शक्तिशाली हो गया। राज्य में घोषणा करा दी कि मेरे सिवा कोई अन्य शस्त्र धारण नहीं करेगा। इस प्रकार उनके राज्य में कोई अन्य शस्त्रधारी नहीं हुआ। प्रजा में न किसी प्रकार की असुरक्षा का वातावरण रहा न किसी प्रकार की विपत्तियों का भय। अर्जुन के यज्ञ, दान, तप और युद्ध में अति चेष्टा को देखकर अंगिरा मुनि ने कहा अर्जुन के समान महाशक्तिशाली यज्ञ दान और तप आदि करने वाला आज तक हुआ है और न होगा।

इस प्रकार दत्तात्रेय जी की जो परम भक्ति करता है उसकी सभी मनोकामनायें पूर्ण होती हैं। इसलिए सभी को दत्तात्रेय जी की प्रार्थना सदा करनी चाहिए।

मदालसा उपाख्यान

कुवलयाश्व की उत्पत्ति

सुमति ने पिता से आगे का वृतान्त सुनाते हुए कहा – प्राचीन काल में शत्रुजित नाम के राजा के वृहस्पति के समान विद्वान, सुरपति इन्द्र के समान पराक्रमी, एवं रूप लावण्यता में अश्विनी कुमारों के समान शत्रुजित का पुत्र ऋतुध्वज नामक एक महान शक्तिशाली व पराक्रमी हुआ वे जिस किसी भी राजकुमार से मिलते थे। वे उस राजकुमार से आयु बल और सत्व में बीस ही पड़ते थे उन्नीस नहीं। उनका समय काव्य चर्चा, संगीत, नाटक, प्राश क्रीड़ा, शस्त्रास्त्र में तथा कभी योग्य पुरुषों के साथ मल्लयुद्ध में, तो कभी हाथी, घोड़े रथ आदि की सवारी कर अन्य राजपुत्रों के साथ खेल में आनन्द पूर्वक व्यतीत होता था। जिस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक उनका दिन का समय बीतता था उसी प्रकार उनका रात्रि का समय भी

हर्षोल्लास के साथ व्यतीत होता था। वह सदा ही ब्राह्मण राजपुत्र और वैश्यों के बालकों के साथ खेलते रहते थे।

कुछ समयोपरान्त नाग लोक से नागराज अश्वतर के दो पुत्र भी ब्राह्मण के वेश में आकर उस टोली में मिलकर क्रीड़ा में भाग लेने लगे। नागराज के दोनों पुत्र भी उन सभी बालकों के साथ स्नान ध्यान, यानारोहण, भोजन, वस्त्र गन्धानुलेपन और अन्य विविध वस्तुओं का उपभोग समान रूप से करते थे। इस प्रकार वे दिन का अपना समय ऋतुध्वज के साथ तथा रात्रि के समय नागलोक में अपने पिता के घर व्यतीत करते थे। ऋतुध्वज भी उन दोनों नागकुमारों को आये बिना स्नान, ध्यान, भोजन, मधुपान व शास्त्राध्ययन आदि कुछ भी नहीं करता था। इस प्रकार कुछ समय बिताने के बाद नागराज अश्वतर ने अपने पुत्रों से एक दिन पूछा हे पुत्रों ! तुम लोग इस पाताल लोक में केवल रात्रि में ही दिखाई देते हो, दिन में नहीं। मृत्युलोक में किस मनुष्य से तुम लोगों का इतना घनिष्ठ प्रेम हो गया है।

पिता नारायण के पूछने पर दोनों पुत्रों ने हाथ जोड़-कर विनय पूर्वक कहा—हे तात मृत्युलोक में शत्रुजित नामक राजा का ऋतुध्वज नामक पुत्र है जो कि महान रूपशाली, गुणशील, सरल स्वभाव वाला, पराक्रमी, स्वा-

भिमानी, मधुरभाषी, यशस्वी, बुद्धिमान, विनययुक्त सबका सम्मान करने वाला, मित्रता करने वाला, सर्वगुणों की खान है उसी ने अपने प्रेम और मृदु व्यवहार से हम लोगों के मन को जीत लिया है। उसके बिना हम लोगों के हृदय को नागलोक या पाताल लोक में शांति नहीं मिलती अधीरता बनी रहती है। उसके बिना पाताल लोक में शीतल सुख देने वाली रात्रि भी गर्म और भयावनी लगती है तथा मृत्यु लोक का दिन जो कि गर्मी से तपता रहता है वह गर्म दिन भी ऋतुध्वज के साथ में शीतल एवं सुख देने वाला प्रतीत होता है।

नागराज बोले—हे पुत्र! वह व्यक्ति वास्तव में महान् पुण्यात्मा है जिसकी तुम उसके यहाँ उपस्थित न रहने पर भी बड़ाई कर रहे हो। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि शास्त्रज्ञाता पुरुष सदाचार हीन होता है और मूर्ख सदाचारी है। शीलयुक्त है। परन्तु जिस व्यक्ति में शास्त्र ज्ञान व शील दोनों ही हैं वह धन्य हैं और ये दोनों ही गुण उस व्यक्ति में हैं। वह व्यक्ति धन्य है उसका जीवन ही वास्तविक जीवन है जिसके यहां से भिक्षु (याचक) खाली हाथ वापस नहीं जाते और जो अपने मित्र का साथ देने से कभी पीछे नहीं हटता। हे पुत्रों! क्या तुम लोगों ने उस महापुरुष को प्रसन्न करने के लिए कोई कार्य किया है या

करने का विचार किया है। सुनो! अपने घर में स्वर्ण बहुमूल्य रत्न नाना प्रकार के वाहन आदि हैं तुम उसे देकर उसे प्रसन्न रखो। जो व्यक्ति मित्र की भलाई सोचता है, करता है, तथा शत्रु को हानि पहुंचाता है विद्वान लोग उसकी सदा ही प्रशंसा करते हैं। उस मित्र का जीवन धिक्कारणीय है जो मित्र का उपकार नहीं करता, अपकार करता है।

पुत्र बोले—हे पिता जी! हम उस व्यक्ति का किस वस्तु से उपकार करें। उसके घर में जो-जो बहुमूल्य रत्न आदि वस्तुएं भरी हैं वाहन आदि हैं वे सब हमारे पाताल लोक ही नहीं अन्यत्र भी कहीं नहीं हैं। उसके यहां से कोई भी याचक असन्तुष्ट होकर नहीं जाता। हम उसे कोई भी वस्तु देकर उपकार करने योग्य नहीं हैं। उसका एक ही कार्य करने योग्य है परन्तु वह भी हम लोगों के द्वारा साध्य होना सम्भव नहीं है उस कार्य को तो हिरण्यगर्भ, गोविन्द, शिव आदि देवगण ही करने में सक्षम हैं अन्य नहीं।

नागराज बोले—मैं उस कठिन कार्य को सुनना चाहता हूं। वह कार्य चाहे साध्य हो या असाध्य मुझे सुनाओ। उद्यमी व्यक्ति के लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं होता। दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्ति अपने मन आत्मा व इन्द्रियों को वश में

करके अपने उद्यम के द्वारा इन्द्रत्व, देवत्व या उससे भी बड़ा सम्माननीय पद को प्राप्त कर जाता है। एक छोटी-सी चींटी चलते-चलते हजारों योजन की दूरी तय कर लेती है जबकि गरुड़ बिना उड़े या चले एक कदम भी नहीं चल सकता। देखो मृत्यु लोक निवासी उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने अपने उद्यम से स्वर्ग में स्थान प्राप्त कर अजर अमर हो गया। अर्थात् उद्यमी व्यक्ति के लिए कुछ भी दुःसाध्य नहीं है।

पुत्र बोले—पिताजी ! राजकुमार ने अपने बाल्यकाल की एक घटना सुनाई थी उसे सुनाता हूं। सुनिए—प्राचीन समय गालव मुनि एक उत्तम घोड़े के साथ ऋतुध्वज के पिता शत्रुजित के पास गये और बोले—हे राजन ! कोई नीच दानव हमारे आश्रम में आकर हम लोगों के पूजा-पाठ व तप ध्यान में बाधा डालता है। वह भयंकर हिंसक विशाल जानवर का रूप धारण करके आता है और मेरे समाधि ध्यान व मौन व्रत को भंग करता है। हे राजन मैं यह नहीं चाहता कि कष्ट सहकर अपने कठिन तप से अर्जित पुण्य को उसे शाप देकर क्षय करूं। हे राजन ! एक बार मैंने अत्यन्त दुःखी हृदय होकर आकाश की तरफ देखकर दीर्घ निःश्वास छोड़ा तो तत्क्षण ही यह घोड़ा आकाश से भूमि पर गिरा। तथा साथ ही भविष्यवाणी

हुई । यह दिव्य घोड़ा आकाश, पाताल एवं जल तथा तल में कहीं भी दुर्गम से दुर्गम मार्गों में भी अबाध गति से बढ़ता जायेगा । कभी भी यह विचरण करने में थकेगा नहीं । इसलिए यह विश्व में कुवलय नाम से प्रसिद्ध होगा । अतः जो दुष्ट दानव तुम्हें कष्ट दे रहा है । उस दानव को को हैहय नरेश शत्रुजित का पुत्र ऋतुध्वज इस घोड़े पर चढ़कर मारेगा तथा वह ख्याति को प्राप्त करेगा । हे राजन ! इसीलिए मैं आपके यहाँ आया हूं कि इस अश्व रत्न को आप अपने पुत्र को देकर उस दानव को मारें । जिससे हमारी पूजा-पाठ की बाधा दूर हो ।

इस प्रकार ऋषि गालव की बातों को सुनकर राजा शत्रुजित ने अपने पुत्र को अश्व रत्न पर बैठाकर उसे आशीर्वाद देकर ऋषि के साथ भेज दिया ।

ऋतुध्वज मदालसा का विवाह

ऋतुध्वज गालव मुनि के साथ आश्रम में आ गये । इनके आने के बारे में दानव नहीं जान सका । एक दिन गालव ऋषि सन्ध्योपासन कर रहे थे कि दानव सुअर का रूप धारण कर आया और ऋषि की पीठ से अपनी पीठ रगड़ने लगा । शिष्यगण शोर मचाने लगे । तभी ऋतुध्वज

ने एक अर्ध चन्द्राकार तीक्ष्ण बाण मारा। वह बाण सूअर को लगा जिस कारण वह तीव्र गति से भागा। ऋतुध्वज ने भी घोड़े पर चढ़कर उसका पीछा किया। कुछ दूर जाकर वह सूअर छलांग मारकर एक भयंकर गड्ढे में गिर गया ऋतुध्वज भी घोड़े के साथ उस गड्ढे में गिर गये। उस गड्ढे में भीषण अन्धकूप था। घोड़ा चलता गया और एक प्रकाशमय स्थान में पहुंच गया। वहाँ स्वर्णिम रत्नों से जड़ित भव्य भवनों वाला एक सुन्दर नगर था जो साक्षात् अमरावती के समान लग रहा था। वहाँ कोई भी दिखाई नहीं दे रहा था। परन्तु उसी समय एक स्त्री इधर-उधर घूमती हुई दिखाई दी। उससे राजकुमार ने पूछा—तुम कौन हो ? तुम्हें किसने भेजा है तथा तुम कहाँ जा रही हो ? परन्तु वह बिना उत्तर दिये ही तीव्र गति से एक मकान के अन्दर चली गई। राजकुमार ने भी उस घोड़े को एक स्थान पर बाँधकर स्त्री का पीछा किया। उस स्त्री के पीछे-पीछे एक कमरे के अन्दर पहुंचकर देखा कि एक अति सुन्दरी, नीली आँखों वाली, सुन्दर दांतों वाली हाथी के सूंड के समान सुडौल जाँघों वाली, हाथ पाँव के तलुवे को लाल रंग में रंगी हुई, कोमलाङ्गी, नवयुवती एक सुन्दर रत्न जड़ित पलंग पर लेटी हुई है। राजकुमार ने समझा यह पाताल की रानी है।

उस सुन्दरी ने भी घुंघराले केशों, उच्च व चौड़ी छाती, मजबूत कंधे व लम्बे बाँहों वाले राजकुमार को देख कर समझा कि साक्षात् कामदेव ही आ गये हैं। राजकुमार पर मोहित होकर वह नवयुवती लज्जा विनय व दीनता के वशीभूत हुई यह विचार करके कि यह कोई देवता, यक्ष, गन्धर्व, नाग, विद्याधर अथवा कोई धर्मात्मा पुरुष आया है मूर्छित हो गई। तब जो दूसरी स्त्री थी जो कि राजकुमार के आगे प्रविष्ट हुई थी ताड़ के पंखे से शीतल वायु उस रमणी के मुख पर झोलने लगी। राजकुमार ने उस स्त्री से इस युवती के बारे में तथा मूर्छित होने के विषय में सारा वृतान्त जानना चाहा। स्त्री बोली —यह रमणी स्वर्ग में स्थित विश्वासु नामक गन्धर्व राज की मदालसा नाम की कन्या है। एक दिन यह वाटिका में खेल रही थी कि वज्रकेतु राक्षस का पुत्र पातालकेतु अपनी तामसिक माया से इसे अपहरण कर लाया। वह इस कन्या से आगामी त्रयोदशी को विवाह करना चाहता है। परन्तु वह दानव इस कन्या के पति होने योग्य नहीं है। कल यह युवती आत्महत्या करने जा रही थी कि सुरभि ने कहा—हे सुभगे ! तुम चिन्ता न करो। यह दानव तुम्हारा पति किसी भी दशा में नहीं बन पायेगा। जो पुरुष मृत्युलोक में इस दानव को बाण से मारेगा। वही तुम्हारा पति

होगा। मैं इस कन्या की कुण्डला नाम की सखी हूं। मैं विद्यावान की पुत्री तथा पुष्कर माली की स्त्री हूं। मेरे पति को शुम्भ ने मारा तभी से मैं प्रत्येक तीर्थों का भ्रमण करती रहती हूं। दानव पातालकेतु ने सूअर का रूप धारण किया था। किसी वीर पुरुष ने तपस्वियों की रक्षा करते हुए अपने तीखे बाणों से मारा है। क्या यह सच्ची घटना है जानने के लिए निकली। यहां आकर मैंने देखा कि उस नीच दानव को किसी ने अपने बाणों से अवश्य ही मारा है। यह कन्या आपको देखकर आप पर मोहित हो गई। यह हृदय से आपको चाहने लगी है। परन्तु इसके हृदय को यह सोचकर धक्का लगा कि सुरभि की भविष्य वाणी के अनुसार इसकी शादी उस पुरुष से होगी जिसने कि इस दानव को अपने बाणों से बींधा है। इसीलिये यह मूर्छित हो गई। हमने तो अपना सब कुछ बता दिया। अब आप भी अपना परिचय देने की कृपा करें कि आप कौन हैं? देवता, दैत्य, गन्धर्व नाग आदि में से कौन हैं क्योंकि मनुष्य का शरीर होना सम्भव नहीं है।

राजकुमार ऋतुध्वज ने अपना परिचय देते हुए कहा कि मैं देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, नाग आदि में से कोई भी नहीं हूं। मैं मृत्युलोक का एक साधारण राजकुमार हूं, मैं गालव ऋषि के आश्रम में रहकर अपने पिता की आज्ञा

का पालन करते हुए मुनियों की रक्षा में तत्पर था। उसी समय यह सूअर वहां आकर विघ्न डालने लगा। अतः मैंने ही उसे अपने अर्ध चन्द्राकार बाणों से बींधा है। बाण लगते ही यह तीव्र गति से भागा। मैंने भी अपने घोड़े पर चढ़कर उसका पीछा किया। यह एक विशाल गड्ढे में कूद गया। पीछे-पीछे मैं भी अपने घोड़े के साथ उस गड्ढे में कूद गया तो वहां अन्धकार ही अन्धकार था। परन्तु मैं आगे बढ़ता गया और अन्त में प्रकाश युक्त स्थान में पहुंच गया। यहां कोई भी मुझे दिखाई नहीं दिया। जब तुमको देखा और तुमसे प्रश्न किया तो तुम बिना उत्तर दिये ही चल दीं। मैं तुम्हारे पीछे-पीछे इस भवन में आ गया हूं। मैं मनुष्य हूं। इसमें रंचमात्र भी संशय मत करो। देवता आदि तो हमारे पूज्य हैं।

मदालसा राजकुमार की बातों को सुनकर सकुचा गई। प्रसन्नचित्त होकर कुण्डला बोली—हे वीरवर! आपके कथन की सत्यता में तिलमात्र भी हम लोगों को सन्देह नहीं है। क्योंकि चन्द्रमा में ही कान्ति, सूर्य में प्रभा, धन्य पुरुष को ऐश्वर्य, धीर पुरुष को धैर्य और उत्तम पुरुष को ही शाँति प्राप्त हो सकती है किसी अन्य को नहीं। गोमाता सुरभि असत्य नहीं बोल सकती। निश्चय ही आपने इस नीच दानव को अपने बाणों से बेधा है। तुमको पाकर यह

मेरी सखी मदालस धन्य हो गई है। अब तुम इसके साथ विधि पूर्वक पाणिग्रहण संस्कार करो। राजकुमार बोला— मैं पिता की आज्ञा के बिना कुछ भी करने में असमर्थ हूं। तब कुण्डला बोली—हे वीर ! यह देवकन्या है। इसके साथ विवाह रचाने में कोई दोष नहीं है। कुण्डला द्वारा समझाने पर राजकुमार ने शादी करने की स्वीकृति दे दी। मदालसा ने अपने कुल गुरु तुम्बुरू का ध्यान किया। तत्क्षण ही कुल गुरु समिधा एवं कुश आदि माङ्गलिक सामग्री लेकर आ गये। और वहीं वेदी बनाकर अग्नि जलाकर आहुति देकर विधि विधान पूर्वक मदालसा का पाणिग्रहण संस्कार ऋतु-ध्वज के साथ करा दिया। तत्पश्चात् तपस्वी तुम्बरू अपने धाम को चले गये।

कुण्डला अपनी सखी मदालसा से बोली—हे सुभगे ! तुम्हारी शादी इस राजकुमार के साथ देखकर मैं धन्य हो गई हूं। और मैं निश्चिन्त भाव से तपस्या करते हुए सभी तीर्थों का भ्रमण करते हुए उसके जल से अपने पापों को धोऊँगी। जिससे कि अगले जन्म में इस प्रकार से विधवा न बनूं। फिर ऋतुध्वज से बोली—हे राजकुमार ! मैं तुम्हें क्या उपदेश दे सकती हूं। लेकिन इतना जरूर कहूंगी कि पति का धर्म पत्नी की रक्षा करना है। क्योंकि पुरुष धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति पत्नी की सहायता से ही कर

सकता है। पत्नी भी पति के बिना धर्म आदि कार्यों के करने में समर्थ नहीं हो सकती अर्थात् धर्म अर्थ व काम की सिद्धि में पति-पत्नी का और पत्नी-पति का अर्थात् दोनों ही एक,दूसरे के सहयोगी हैं। त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) दाम्पत्य जीवन पर ही निर्भर हैं। तुम दोनों आजीवन सुखी रहो, तुम दोनों का विछोह कभी न हो, धन, पुत्र, सुख आयु के साथ वृद्धि को प्राप्त होवो। अब मैं अपने इच्छित स्थान को जा रही हूं। इस प्रकार कहकर कुण्डला ने सखी मदालसा को आलिंगन कर माथा चूमा व राजकुमार को प्रणाम करके चल दी।

राजकुमार ऋतुध्वज ने मदालसा को घोड़े पर बैठा कर पाताल लोक से बाहर निकलना चाहा कि पातालकेतु ने अपनी सेनाओं के साथ परिघ, तलवार, गदा, शूल, धनुष बाण आदि लेकर ठहरो-ठहरो, मारो-मारो कहते हुए घेर लिया। दानवों ने राजकुमार पर भीषण प्रहार किया। पराक्रमी राजकुमार ने दानवों के सभी अस्त्रों को काट गिराया। तत्पश्चात् राजकुमार ने त्वाष्ट्र अस्त्र ग्रहण करके दानवों पर चलाया। इस भयंकर दिव्यास्त्र ने अपनी भीषण ज्वाला से क्षण भर में ही सभी दानवों को भस्मीभूत कर दिया। इस प्रकार सभी दानवों का नाश कर राजकुमार ऋतुध्वज पाताल लोक से अपनी पत्नी मदालसा के साथ

अपने पिता के घर पहुंचे। पिता के चरणों में प्रणाम किया, फिर सारा वृतान्त गालव ऋषि के आश्रम, सूअर को मारना, पाताल लोक में जाना, कुण्डला का दर्शन, मदालसा की प्राप्ति, पाताल लोक में दानवों के साथ युद्ध, व दानवों का विनाश करके वापस आना सुनाया।

राजा शत्रुजित अति प्रसन्न होकर बोले—हे पुत्र ! तुम महान हो, तुमने मुझे तार दिया। क्योंकि जो व्यक्ति पिता द्वारा कमाये गये यश, धन अथवा पराक्रम को घटाता है वह नीच अधम मनुष्य है, जो घटाता नहीं उतना ही बनाये रखता है वह मध्यम मनुष्य है और जो उसकी रक्षा ही केवल नहीं करता बल्कि पिता द्वारा अर्जित यश, धन व पराक्रम को बढ़ाता है। विद्वतगण उसे उत्तम कोटि का मनुष्य कहते हैं। अतः हे पुत्र ! तुम पुरुषोत्तम हो, क्योंकि मैंने तो केवल ब्राह्मणों की ही रक्षा की थी परन्तु तुमने तो ब्राह्मणों की रक्षा करने के अतिरिक्त पाताल में जाना व दानवों का नाश करना अधिक कार्य किया है। मैं तुम जैसा सुपुत्र पाकर पुण्यात्माओं में भी प्रशंसनीय हो गया हूं। हे पुत्र तुम धन्य हो। तुम धन, पराक्रम व सुख की वृद्धि करो। यह गन्धर्व पुत्री सदा ही तुम्हारे साथ रहे। इसका वियोग तुम्हें कभी न सतावे। इस प्रकार मधुर वाणी बोलते हुए नाना प्रकार के आशीर्वाद देते हुए पुत्र के सिर पर हाथ

फेरते हुए आलिंगन कर पुत्र को उसकी पत्नी के साथ उसके निवास स्थान की ओर भेज दिया। वह कल्याणी मदालसा भी अपने सास श्वसुर की सेवा करते हुए उन्हें प्रसन्न रखने लगी। तथा राजकुमार भी पत्नी के साथ क्रीड़ा बिहार करते हुए आनन्द पूर्वक जीवन बिताने लगा।

तालकेतु द्वारा कुवलयाश्व को धोखा

राजा शत्रुजित ने अपने धर्मात्मा पुत्र को आदेश दिया कि वह घोड़े पर चढ़कर ब्राह्मणों की रक्षा हेतु पृथ्वी पर भ्रमण करे और जहाँ कहीं भी मुनियों ऋषियों को कोई नीच दुष्ट पापकर्ता या दानव परेशान करता हो अथवा उनके कार्यों में बाधा उत्पन्न करता हो उनका नाश करे।

राजकुमार कुवलयाश्व (ऋतुध्वज) पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर नित्य प्रति प्रातः घोड़े पर चढ़कर ब्राह्मणों की रक्षा हेतु भ्रमण पर निकल जाता था और दोपहर के बाद आकर माता-पिता के चरणों में प्रणाम करता शेष समय अपनी पत्नी के साथ व्यतीत करता था। एक दिन राजकुमार भ्रमण करते हुए यमुना तट पर पहुंचा। वहाँ पातालकेतु का छोटा भाई तालकेतु माया से आश्रम की रचना करके उस आश्रम में ऋषि के वेश में रहता था। उसने राजकुमार को देखा और पहचान करके

कुवलयाश्व से अपने भाई का बदला लेने का निश्चय किया। तालकेतु कुवलयाश्व से बोला—हे राजपुत्र ! तुमने आज तक किसी याचक को खाली हाथ लौटाया नहीं है। अतः मैं विश्वास करता हूं कि तुम हमारी भी याचना को नहीं टालोगे। मैं अपनी आवश्यकता तुमसे कहता हूं। यदि तुम उचित समझना तो पूरा करना अन्यथा नहीं। मैं धर्मार्थ यज्ञ करने वाला हूं तथा नाना प्रकार की इष्टियाँ भी करनी हैं। परन्तु यज्ञ में उचित दक्षिणा देने हेतु धन नहीं है। हे वीर श्रेष्ठ ! यदि तुम यह अपना कंठ का आभूषण दे दो और मैं प्रजा को सुख समृद्धि हेतु वेद के वरुण देवता के मन्त्रों द्वारा जल देवता वरुण की आराधना हेतु जल के भीतर जा रहा हूं। जब तक मैं जल से वापस न आऊं तब तक तुम मेरे आश्रम की रक्षा करना।

राजकुमार ने अपने कण्ठाभूषण को देते हुए कहा—हे मुनिवर ! आप शंका रहित होकर अपने इच्छित कार्य को करिए। जब तक आप आश्रम में वापस नहीं आयेंगे तब तक मैं आपके आश्रम की रक्षा करता रहूंगा।

तालकेतु राजकुमार का कण्ठाभूषण लेकर जल में प्रविष्ट हो गया और अन्दर ही अन्दर दूर जाकर जल से बाहर निकलकर कुवलयाश्व के माता-पिता के पास पहुंच गया तथा उस कण्ठाभूषण को देते हुए दुःखी स्वर में

कहा—हे राजन ! आपका वीर पुत्र कुवलयाश्व मेरे आश्रम के पास दैत्यों से तपस्वियों की रक्षा कर रहे थे कि युद्ध में दैत्यों ने उन्हें मार गिराया और घोड़े को लेकर चले गये। शोकमग्न तपस्वियों ने उनका दाह-संस्कार कर लिया है। राजकुमार ने मरते समय मुझे यह कण्ठाभूषण दिया। इसका मुझे क्या करना। इसे आप अपनी सांत्वना के लिए रखें देकर वापस आ गया।

राजकुमार के माता-पिता एवं अन्य सभी प्रियजन कुवलयाश्व का मृत्यु संवाद सुनते ही शोकमग्न होकर मूर्छित हो गये मदालसा ने भी अपने पति के कण्ठाभूषण को पहचान कर और मृत्यु संवाद पर विश्वास कर मृत्यु का वरण कर लिया। कुछ चेतना जागृत होने पर सभी करुण क्रन्दन करने लगे। राजा अपनी पुत्रवधू को भी मरी हुई देखकर अत्यन्त दुःखी हुए। कुछ समय पश्चात् स्वस्थ मन होकर सभी को राजा समझाने लगे। निश्चय ही हम सबको पुत्र व पुत्रवधु की मृत्यु पर शोक नहीं करना चाहिए। क्योंकि दोनों कृतकृत्य और शोक न करने योग्य हैं। क्योंकि मेरे पुत्र ने मेरी आज्ञा का पालन करके ब्राह्मणों की रक्षा करते हुए अपने प्राणों का त्याग किया है इसलिए वह पुण्यवान है धर्मात्मा है। शोक करने योग्य नहीं है। उत्तम कुल की कन्या और मेरी पुत्रवधु मदालसा

भी शोक करने योग्य नहीं है क्योंकि स्त्री के लिए पति से बढ़कर कोई दूसरा देवता नहीं होता। इसलिए जिस स्त्री ने अपने पति के मृत्यु संवाद को पाकर पति का अनुसरण किया है वह बुद्धिमानों के लिए शोक करने योग्य नहीं है। शोक करने योग्य वह स्त्री होती है जो पति की वियोगिनी होती है जो अपने पति के साथ मर गई उसके लिए क्या शोक करना। इन दोनों में कोई भी शोक करने योग्य नहीं है। क्योंकि पुत्र ने ब्राह्मणों की रक्षा में अपने को न्यौछावर करके हम सभी का उद्धार किया है। प्राण त्याग करके उसने अपनी माता के सतीत्व को मेरे पवित्र वंश को तथा अपने पराक्रम को प्रशंसा करने योग्य बनाया है।

कुवलयाश्व की माता भी स्वस्थ मन होकर बोली—आप ठीक कहते हैं ब्राह्मणों की रक्षा करते हुए अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार पाकर जो खुशी हमें हुई। यह खुशी न तो मेरी माता को ही मिली और न ही मेरी बहन को ही। सच में उसी मनुष्य का जीवन सफल है जो गौ, ब्राह्मण की रक्षा करते हुए युद्धभूमि में शस्त्रों से घायल होकर प्राण त्याग करता है। जो रोग व्याधियों से कष्ट पाते हुए शोक मग्न प्रियजनों के समक्ष अपना प्राण त्याग करता है उसकी माता का सन्तानशाली होना निरर्थक है। जो याचक, मित्र एवं शत्रुगणों द्वारा विमुख नहीं होता उसी

का पिता पुत्रवान होता है और जब पुत्र युद्धभूमि में युद्ध करते मारा जाता है या शत्रु को परास्त कर वापस आता है। उसी की माता की गर्भ-पीड़ा सफल होती है।

तत्पश्चात् राजा शत्रुजित ने नगर के बाहर पुत्रवधु का दाह संस्कार किया एवं स्नान करके पुत्र को जलांजलि दी।

इधर तालकेतु यमुना जल से निकलकर आश्रम में आया और राजकुमार से मधुर वाणी में बोला—हे राजपुत्र! अब तुम जाओ। तुम्हारे सहयोग से मैंने अपने चिरकालिक इच्छित यज्ञ को पूर्ण कर लिया। तुमने मुझे कृतार्थ कर दिया। जल देवता वरुण का यज्ञ जल के अन्दर करना ही उत्तम माना गया है जिसे मैंने कर लिया तुम प्रशंसा के पात्र हो, अब जाओ।

राजकुमार मुनि रूप तालकेतु को प्रणाम कर अपने घोड़े पर सवार होकर द्रुतगति से चल दिया।

नागराज अश्वतर को मदालसा की प्राप्ति

कुवलयाश्व ने अपने पिता की नगरी में प्रवेश करते ही सभी प्रजाजनों को शोक से उद्विग्न देखा। फिर प्रजाजनों की आश्चर्य से युक्त प्रसन्नता को भी देखा। इस

प्रकार उसने अपने मित्रों एवं बन्धुओं से मिलते हुए अपने महल में जाकर अपने माता एवं पिता के चरणों में प्रणाम किया। सभी नगरवासी कह रहे थे 'अहो भाग्य' चिरंजीवी होवो, तुम्हारा कल्याण होवे, तुम्हारे दुश्मनों का नाश हो। आदि इस प्रकार के आशीष वचन को सुनकर राजकुमार ने अचम्भित होकर इसका कारण अपने पिता से पूछा। पिता ने सारा हाल विस्तार पूर्वक सुना दिया। राजकुमार पत्नी मदालसा की मृत्यु सुनकर बड़ा ही दुःखी हुआ। परन्तु धीरे-धीरे उसने अपने हृदय को धैर्य बंधाया और मन को स्वस्थ चित्त होकर स्थित किया। राजकुमार ने विचार किया। नहीं-नहीं मुझे शोक नहीं करना चाहिए। क्योंकि यदि मैं शोक करता हूं तो शोक संतप्त, दीन, बलहीन एवं रक्तहीन हो जाऊंगा। मुझे तो पिता की सेवा करते हुए शत्रुओं का नाश करना है। इस प्रकार विचार करते हुए राजकुमार ने अपने मन को स्थिर किया। इसके बाद राजकुमार ने मदालसा के लिए तर्पण दान आदि करके दृढ़ प्रतिज्ञा की कि मैं गन्धर्व पुत्री अपनी पत्नी मृगनयनी मदालसा की अनुपस्थिति में किसी अन्य स्त्री को अपनी पत्नी नहीं बनाऊंगा, किसी अन्य स्त्री के साथ समागम नहीं करूंगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके वह अपने समवयस्क लड़कों के साथ खेलते रहते थे। नागराज के पुत्रों ने

कुवलयाश्व की इस प्रकार की घटना का वर्णन अपने पिता से किया।

नागराज अश्वतर ने मुस्कराते हुए अपने पुत्रों से कहा—हे पुत्रों! मनुष्य को आलस्य एवं प्रमाद रहित होकर कार्य करना चाहिए। उद्यमी पुरुष को फल की (परिणाम) चिन्ता छोड़कर अपनी कार्य सिद्धि के लिए उद्यम करना चाहिए। हे पुत्रों! मैं तपोबल के द्वारा प्रयत्न करूंगा कि यह कार्य निश्चय ही पूर्ण हो जाये। इस प्रकार कह करके नागराज हिमालय पर्वत प्लाक्षावतरण तीर्थ में जाकर कठिन तपस्या करने लगे। तीन समय स्नान व नियमित आहार करते हुए सरस्वती की स्तुति करने लगे। जब कुछ काल तक नागराज ने नाना प्रकार से सरस्वती की स्तुति की तो सरस्वती देवी प्रसन्न हो गईं।

प्रसन्न सरस्वती देवी नागराज से बोलीं—हे नागराज! मैं तुम्हें व तुम्हारे भाई कम्बल को वर देती हूं इसलिये तुम्हारी जो इच्छा हो व मुझसे मांगो।

नागराज बोला—हे देवि! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे भाई कम्बल को मेरा सहयोगी बनाते हुए हम दोनों भाइयों के सभी प्रकार के स्वरों को प्रदान करो।

सरस्वती जी बोलीं—हे नाग श्रेष्ठ! तुम दोनों भाई सातों स्वर, सातों ग्राम, सातों रागों से युक्त संगीत 'स्वर'

एवं उनकी सातों मूर्छनायें, उनचास ताल अर्थात जितने भी प्रकार के ताल लय मात्रा छन्द आदि जितने स्वर हैं उन सभी से युक्त होकर तीनों लोकों में इस ज्ञान के प्रणेता माने जाओगे। कहकर देवी अन्तर्धान हो गई।

नागराज दोनों भाई पदताल एवं स्वर आदि के श्रेष्ठ विज्ञ हो गये। फिर उसके बाद कैलाश पर्वत पर जाकर दोनों भाइयों ने तीन प्रकार के लय और सातों प्रकार के गीतों में प्रातः, मध्यान्ह, संध्या एवं रात्रि के समय में भी मृदु वाणी में भगवान शंकर की प्रार्थना करने लगे। दोनों की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान शंकर बोले—हम तुम दोनों की आराधना से प्रसन्न हैं वर माँगो।

दोनों भाई देवाधिदेव भगवान शंकर को प्रणाम कर बोले—हे प्रभु! कुवलयाश्व की पत्नी मदालसा की मृत्यु हो गई है अतः वह (मदालसा) उसी आयु एवं रूप गुण तथा शरीर में शीघ्र ही मुझे पुत्री के रूप में प्राप्त होवे। उसे अपने पूर्व जन्म की सारी घटनायें अक्षरशः याद हों।

भगवान शंकर बोले—हे नागराज! जैसा तुम चाहते हो वैसा ही होगा। तुम मदालसा का श्राद्ध करो। श्राद्ध समाप्त होने पर अपने मध्यम पिंड का भक्षण करके मदालसा का ध्यान करके पितृपूजन करना। तत्क्षण ही मृगनयनी रूपवती मदालसा तुम्हारे मध्यम फल से उसी

शक्ल सूरत में उत्पन्न हो जायेगी जिस रूप में वह मरी थी।

दोनों भाई नागराज भगवान शंकर को प्रणाम करके पाताल लोक आ गये। यहां नागराज अश्वतर ने भगवान शिव द्वारा बताये अनुसार श्राद्ध करके मध्यम पिण्ड का भक्षण किया। उसी क्षण नागराज के मध्यम फल से मध्यम प्रमाण की कमर व देह सौष्ठव वाली निःश्वास लेती हुई मदालसा उत्पन्न हो गई। नागराज ने इसकी चर्चा कहीं नहीं की। तथा मदालसा को अन्य स्त्रियों के मध्य अपने महल में रख दिया।

कुवलयाश्व का पाताल लोक में नागराज के पास आना

नागराज अश्वतर के दोनों पुत्र सदा की भांति मृत्यु-लोक में जाकर विप्रवेश में कुवलयाश्व के साथ क्रीड़ा करते रहे। एक दिन इन्होंने कुवलयाश्व को नागलोक में अपने घर चलने का आग्रह किया। कुवलयाश्व ने नागपुत्रों से कहा—यह मेरा घर आप लोगों का ही घर है, यहां धन, सम्पदा, अस्त्र-शस्त्र, वस्त्र एवं वाहन आदि जो कुछ भी हैं आप लोगों का ही है। आप लोग जिस किसी वस्तु का उपभोग करना चाहें अपना समझ कर निःशंक भाव से

करें। अथवा धन रत्न आदि जो कुछ भी किसी को यदि देना चाहें तो खुले हाथ देवें। यदि आप दोनों का वास्तव में मेरे प्रति गहरा प्रेम है तो आप लोग मेरे घर एवं मेरे धन सम्पदा के साथ भी अपनत्व रखो। आप लोग ऐसा समझें कि जो कुछ मेरा है वह आप लोगों का है और जो कुछ आप लोगों का है वह मेरा है। अतः हे विप्र! आप दोनों को मेरी शपथ है कि आप लोग अपने में व मुझमें कोई भेद न समझें।

नागपुत्रों ने कुवलयाश्व से पुनः प्रार्थना पूर्वक कहा—हे राजपुत्र! जैसा आप कहते हैं हम लोग ठीक वैसा ही समझते हैं। इसमें लेशमात्र भी आपको संदेह नहीं करना चाहिए। परन्तु हमारे पूज्यनीय पिताजी आपके दर्शन करने के लिए सदा ही कहते रहते हैं।

कुवलयाश्व पृथ्वी को प्रणाम कर खड़े हो गये और बोले—मैं धन्य हूं, पुण्यात्मा हूं। मेरे जैसा भाग्यशाली कौन है कि पिता (नागराज) ने मुझे देखने की इच्छा व्यक्त की है। अपने अन्य साथियों को सम्बोधित करते हुए बोले—आप सभी चलने के लिए तैयार हो जाइये। अब मैं क्षण के लिए भी देर करना उचित नहीं समझता।

कुवलयाश्व नागपुत्रों के साथ नागलोक में पहुंच गये। वहां नागपुत्रों ने अपने वास्तविक वेश को धारण कर अपने

मणि के प्रकाश से प्रकाशित हो गये। नागपुत्र अपने मित्र कुवलयाश्व एवं अन्य मित्रों को साथ लेकर अपने पिता के पास पहुंच गये। उन दोनों ने अपने पिता नागराज अश्वतर एवं कुवलयाश्व दोनों का एक-दूसरे से परिचय कराया कुवलयाश्व ने पिता नागराज के चरणों में प्रणाम किया। नागराज ने आशीष वचन कहे। दोनों ही एक-दूसरे का दर्शन करके प्रफुल्लित हो रहे थे राजकुमार ने शैशवावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक के सभी आयु के सर्पों को तथा क्रीड़ा करती हुई एक से एक सुन्दर नागकन्याओं को देखा चारों तरफ का वातावरण मधुर संगीत ध्वनियों से परिपूर्ण तथा मनमोहक मृदु वाद्यसुरों से गुञ्जित था। पाताललोक में दिव्य मालाओं को धारण किए हुए, मणिमय कुण्डलों से युक्त, शुभ्र, पवित्र मोतियों का हार एवं केयूर धारण किये हुए रत्नों से जड़ित स्वर्णासन पर नागाधिराज महाव पुण्यात्मा अश्वतर सुशोभित थे।

नागराज ने कुवलयाश्व से कहा—हे पुत्र ! तुम धन्य व पुण्यात्मा हो। तुम पिता की सेवा करते हुए शत्रुओं का संसार करते रहो। ये दोनों मेरे ही लड़के तुम्हारी अनुपस्थिति में तुम्हारी बराबर प्रशंसा करते रहे। गुणवान व्यक्ति का ही जीवन प्रशंसनीय होता है। गुणहीन व्यक्ति तो जीवन धारण किये हुए भी मरे हुए के समान है। इस-

लिए तुम प्रशंसनीय हो, तुम मन, वाणी एवं शरीर की चेष्टाओं से सदा ही वृद्धि को प्राप्त होओ। इस प्रकार से नाना विधि से कुवलयाश्व की प्रशंसा करते हुए पूजा करने के इच्छुक नागराज ने अपने पुत्रों से कहा—हम सभी स्नान ध्यान करके मधुपान आदि सुन्दर भोज्य पदार्थों को खाकर फिर शान्तचित्त बैठकर कुवलयाश्व के साथ बातचीत करेंगे। राजकुमार ने भी मौन रहते हुए अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी।

तत्पश्चात् नागाधिराज अश्वतर ने अपने पुत्रों एवं कुवलयाश्व तथा उसके अन्य साथियों सहित स्नान ध्यान करके प्रसन्नचित्त मन से अन्न, मधु, फल-फूल आदि सुन्दर स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों का भोजन किया।

———

कुवलयाश्व को मदालसा की पुनः प्राप्ति

नागराज अश्वतर ने अपने पुत्रों एवं कुवलयाश्व के साथ भोजनोपरांत सुन्दर आसन पर बैठकर वार्ता प्रारम्भ की नागराज ने कुवलयाश्व से कहा—हे राजकुमार! हालांकि तुम हमारे यहाँ पुत्रवत आये हो। फिर भी हमारे अतिथि हो। जिस प्रकार पुत्र अपने पिता के साथ शंका रहित होकर बातें करता है उसी प्रकार तुम मेरे साथ शंका

रहित होकर बातें करो। हिरण्य या सोना या वस्त्र या वाहन या आसन अथवा यदि कोई दुर्लभ वस्तु की भी इच्छा हो उसे मुझसे माँगो।

कुवलयाश्व बोला—आपकी कृपा से स्वर्ण, रत्न, वस्त्र, यान, आसन आदि सभी कुछ है। अतः हमें इस प्रकार की किसी वस्तु की कोई आवश्यकता नहीं है। सहस्र वर्षायु वाले मेरे पिता ने पृथ्वी पर शासन किया और आपने पाताल लोक में शासन किया। परन्तु आज तक मैंने किसी वस्तु को किसी से कोई याचना नहीं की। जब तक पिताजी की शक्तिशाली भुजाओं के मेरे ऊपर छाया है। तब तक मुझे किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता भी नहीं है। मेरे मित्र शिष्ट एवं सदाचार युक्त हैं, मेरा शरीर स्वस्थ है। मनुष्य तो धन और सुन्दर यौवन की कामना करता है। परन्तु मुझे किसी प्रकार की कामना नहीं है। मैं तो पिता के द्वारा अर्जित किये गये धन को सदा ही नित्य प्रति बाँटता रहता हूं। क्या मांगूं। जब मेरे चूड़ा-मणि ने आपके चरणों को स्पर्श कर लिया तो सभी कुछ प्राप्त कर लिया। आपके दर्शन करके मेरा जीवन धन्य हो गया। जब मैंने आप जैसे देवता का चरण-रज अपने मस्तक पर लगा लिया। तो मैंने सभी कुछ प्राप्त कर लिया। फिर भी यदि मेरे मनोनुकूल वर देना ही चाहते हैं तो मेरी

समझ से स्वर्ण, मणि, रत्न, वाहन, घर, आसन, स्त्री, अन्न पान, पुत्र आदि सुन्दर माल्यानुलेपन, गीत वाद्य आदि नाना प्रकार की उपभोग वाली वस्तुयें पुण्य से ही प्राप्त होती हैं क्योंकि इस पृथ्वी पर पुण्यशील व्यक्तियों को कुछ भी दुर्लभ नहीं है अतः आप हमें ऐसा आशीर्वाद दें कि मेरे हृदय में पुण्य कर्मों का संस्कार सदा ही बना रहे।

नागराज बोले—हे वीरवर! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। तुम्हारी बुद्धि सदा ही धर्म परायण रहेगी। फिर भी जो मृत्युलोक में प्राप्त नहीं है उसे आज तुम्हें अवश्य ही ग्रहण करना चाहिए।

राजकुमार कुवलयाश्व दोनों नागपुत्रों के मुख को देखने लगे। नागपुत्रों ने अपने पिता से कहा--हे पिताजी! किसी दुष्ट ने इनकी मृत्यु का झूठा समाचार इनके माता-पिता एवं पत्नी को दिया। अतः इनकी मृत्यु का समाचार सुनकर इनकी पत्नी ने प्राणों को त्याग दिया। इनकी पत्नी मदालसा गन्धर्वराज की पुत्री थी इन्होंने यह प्रतिज्ञा की है कि ये मदालसा को छोड़कर किसी अन्य स्त्री को पत्नी रूप में स्वीकार नहीं करेंगे। ये सर्वाङ्ग सुन्दरी मदालसा को देखना चाहते हैं। यदि ऐसा सम्भव हो सके तो इनका उत्तम उपकार होगा।

नागराज ने कहा—पञ्चभूतात्मक शरीर के विमुक्त

होने पर उसके पञ्चभूतों के साथ उसी प्रकार का संयोग माया के द्वारा ही सम्भव है।

कुवलयाश्व ने तत्क्षण ही हाथ जोड़कर विनय पूर्वक कहा—हे तात! यदि इस समय आप मेरी मायामयी मदालसा को दिखाते हैं तो आपका मेरे प्रति बड़ा ही उपकार होगा।

तत्पश्चात् नागराज ने राजकुमार को सम्मोहित करने के लिए अस्पष्ट शब्दों में मन्त्रों का उच्चारण करते हुए छिपाई गई मदालसा को सामने बुलाया। मदालसा को देखते ही आलिंगन करने के लिए संकोच को त्यागते हुए कुवलयाश्व बढ़े। परन्तु स्पर्श करने से पूर्व ही नागराज ने राजकुमार को रोकते हुए कहा—हे राजपुत्र! यह माया है। इसे स्पर्श मत करना। अन्यथा ये स्पर्श करते ही अन्तर्धान हो जायेगी। यह सुनकर राजकुमार 'हाय प्रिये, हाय प्रिये' कहते हुए मूर्छित होकर गिर पड़े। सचेत होने पर राजकुमार सोचने लगे—यह वह वास्तव में मेरी पत्नी मदालसा ही है या झूठी माया। समझ में नहीं आता। देखने से तो मेरी वास्तविक पत्नी मदालसा ही लगती है।

फिर नागराज ने राजकुमार को अच्छी तरह सांत्वना देकर समझाया कि किस प्रकार मैंने मृत मदालसा को जीवित किया है। अन्त में मदालसा को राजकुमार के हाथ

सौंप दिया। तत्पश्चात् कुवलयाश्व पत्नी को पाकर प्रफुल्लित हुए तथा अपने घोड़े का ध्यान किया। घोड़ा उपस्थित हो गया। फिर नागराज को प्रणाम कर अपनी-पत्नी को घोड़े पर बैठा कर अपने पिता के पास आये। माता-पिता के चरणों में प्रणाम कर पत्नी मदालसा का सारा वृतान्त सुना दिया। इस खुशी के संवाद को सुनकर सभी नगरवासियों ने हर्षोल्लास के साथ उत्सव का आयोजन किया।

जो मनुष्य इस कथा को श्रद्धापूर्वक श्रवण करता है। उसकी सारी कामनायें पूर्ण होती हैं। सुख एवं दुर्लभ वस्तुओं को प्राप्त करता है।

मदालसा द्वारा अपने पुत्रों को आत्मज्ञान कराना

कुछ समय बाद राजा शत्रुजित का स्वर्गवास हो गया। तदुपरान्त कुवलयाश्व 'ऋतुध्वज' सिंहासनारूढ़ हुए। मदालसा ने प्रथम पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम पिता ऋतुध्वज ने विक्रांत रखा। विक्रान्त की उत्पत्ति से राजमहल के सभी कर्मचारी सेवक और प्रजाजन खुशी मना रहे थे। पुत्र के पैर को फैलाकर सोने एवं

रोने पर मदालसा हंसी और बोली—अरे बेटे ! तुम तो पवित्र आत्मा हो, तुम्हारा नाम तो कुछ भी नहीं है। तुम्हारा यह विक्रान्त नाम मात्र कल्पना है और कुछ नहीं। पञ्चभूतात्मक यह शरीर न तो तुम्हारा है और न तुम इसके हो। इस शरीर की वृद्धि तो अन्न जल के द्वारा होती है। आत्मा की नहीं। इस शरीर के बढ़ने न बढ़ने पर तुम्हारी वृद्धि या हानि नहीं होती है। मात्र तुम तो शरीर के आवरण से ढके हुए हो। इसलिए इस देह के जीर्ण शीर्ण हो जाने पर इससे मोह मत करना। मूर्ख अज्ञानी पुरुष ही इस शरीर का मोह करते हैं। कोई किसी का नहीं है न कोई किसी की माता है न पिता है, न भाई है न बहन है न पत्नी है न कोई अपना सम्बन्धी जन है। यह सब दुःख का कारण है। इस देह के माया मोह में पड़ कर अज्ञानी पुरुष दुःख को ही सुख मान बैठा है। देखो न जिसके हंसने से हड्डियाँ दिखाई देती हैं, नयनों के कटाक्ष चितवन में वसा की कलुषता है, उसके उभरे हुए स्तन व कमर तथा कमर के पीछे का भाग मांसपिण्ड है और इसका गुह्यस्थान भी तो इसी का बना है तो क्या स्त्री साक्षात नर्क नहीं हुई। पृथ्वी पर यान, यान में स्थित शरीर एवं शरीर में अन्य पुरुष का निवास है अर्थात् यह देह पृथ्वी का ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश है। फिर भी मूर्ख मनुष्य जितना इस

शरीर से प्रेम करता है उतना पृथ्वी से नहीं। कैसी विडम्बना है। इसलिए हे पुत्र! धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य दोनों को त्याग दो और इन दोनों को जिसके लिए त्यागते हो उसे भी त्याग दो। इस प्रकार माँ मदालसा पुत्र को प्रतिदिन आत्मज्ञान का बोध कराती थी। नित्यप्रति वृद्धि को प्राप्त करते हुए बालक ने पिता द्वारा बल एवं बुद्धि का तथा माता के सदुपदेशों द्वारा आत्मज्ञान को प्राप्त किया। इस प्रकार विक्रान्त के हृदय में विरक्ति भाव उत्पन्न हो गया।

कुछ समय पश्चात् मदालसा ने दूसरे पुत्र को जन्म दिया। जिसका नामकरण पिता ने सुबाहु किया। मदालसा ने द्वितीय पुत्र को भी पहले पुत्र की भाँति उपदेश दिया। जिस कारण सुबाहु भी बचपन से ही श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करके गृहस्थ धर्म से विरक्त हो गया।

कुछ समयोपरान्त मदालसा ने तृतीय पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम पिता ने शत्रुमर्दन रखा। माँ ने शत्रु-मर्दन को भी बचपन से ही आत्मज्ञान का उपदेश देकर इस असार संसार के प्रति विरक्त बना दिया।

फिर कुछ समय पश्चात् मदालसा ने चौथे पुत्र को जन्म दिया। इसका भी जब राजा ने नामकरण करना चाहा। मदालसा हंस पड़ी। राजा बोले—जब-जब मैं पुत्रों

का नामकरण करता हूं। तब-तब तुम हंसती हो। इसका कारण क्या है ? मैंने तो अपने विचार से विक्रान्त, सुबाहु एवं शत्रुमर्दन पुत्रों का उत्तम ही नाम रखा था। हे भद्रे ! क्षत्रियों के नाम तो वीरसूचक ही होने चाहिए। यदि तुम्हारे विचार में ये नाम उपयुक्त नहीं हैं तो इस चौथे पुत्र का नाम तुम ही रखो।

मदालसा बोली—हे महाराज ! मैं आपकी आज्ञा अनुसार इस चौथे पुत्र का नाम 'अलर्क' रखती हूं। इसी नाम से यह पुत्र विश्व में ख्याति प्राप्त करेगा व सबसे अधिक बुद्धिमान भी होगा।

महाराज ने पत्नी से प्रश्न किया। हे प्रिये ! जबकि तुमने इस बालक का नाम 'अलर्क' रखा है जो कि असंगत एवं अर्थहीन भी है। अतः इसका क्या अर्थ है। हमें समझाओ।

मदालसा बोली—हे प्रियतम ! नामों का प्रयोग तो मात्र व्यवहार के लिए उपयोगी मात्र कल्पना मात्र है। पुकारने के लिए कोई सा भी एक नाम रखना है सो रख लिया। वैसे आपके द्वारा भी रखे गये नामों का कोई विशेष अर्थ नहीं है। क्योंकि आत्मा तो सर्वव्याप्त है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की गति को क्रांति कहते हैं। आत्मा सर्वगत एवं सर्वव्यापी है। अतः यह शरीर का

अधिपति है। शरीर तो सर्वव्यापी नहीं है, उसमें कोई गति नहीं है। इसलिए विक्रान्त नाम निरर्थक है। तथा आत्मा का कोई अपना रूप नहीं होता, देह का अपना रूप होता है इसलिए सुबाहु नाम भी निरर्थक है। तीसरे पुत्र का नाम आपने शत्रुमर्दन रखा है। मेरे विचार से आत्मा न किसी का शत्रु है न मित्र। आत्मा, आत्मा को नहीं मारती. क्योंकि एक ही आत्मा सभी के शरीर में विद्यमान है। देह ही देह को मारता है। इसलिए शत्रुमर्दन नाम भी निरर्थक है। यदि मात्र व्यवहार के लिए नामों की कल्पना की जाती है तो 'अलर्क' नाम कैसे निरर्थक है। पुकारने के लिए कुछ भी नाम रखना था सो रख लिया। और मदालसा इस पुत्र को भी आत्मज्ञान का उपदेश देने लगी।

राजा मदालसा से बोले—हे मधुर सत्य भाषिणी! सुनो। यदि तुम इस पुत्र को भी आत्मज्ञानोपदेश देकर गृहस्थ धर्म से विरक्त कर दोगी जैसा कि पहले तीन पुत्रों को कर चुकी हो तो इन तत्वज्ञानी पुत्रों से मेरी वंश परम्परा ही नष्ट हो जायेगी। जिस प्रकार आत्मज्ञान का उपदेश देकर उन तीनों पुत्रों को भाव रहित किया है वैसा इसे मत करो। यदि तुम मेरे व मेरे वंश का हित चाहती हो तो इस पुत्र को प्रवृत्ति मार्ग में लाओ। कर्म योग का ज्ञान दो जिससे पितृ पिण्ड का नाश न हो। क्योंकि पितर

लोग 'जो अपने पाप पुण्य के आधार पर स्वर्ग या तिर्यक योनि या नरकत्व में होते हैं। भूख-प्यास से व्याकुल रहते हैं। वे पितृ पिण्ड से ही सन्तुष्ट होते हैं तथा पिण्डोदक द्वारा देवताओं एवं अतिथियों को सत्कार करते हैं। इस लिये हे तन्वाङ्गी! तुम इसको ऐसी शिक्षा दो जो कि क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का पालन करने वाला हो एवं इहलोक तथा परलोक में भी उत्तम फल को देने वाला हो।

मदालसा अपने पति ऋतुध्वज की आज्ञा को स्वीकार करके राजा के अनुरूप ही अलर्क को शिक्षा देने लगी। बोली, हे पुत्र! तुम पुत्रवान होवो, वंश की वृद्धि करो। अपने उत्तम कार्यों के द्वारा मेरे पति के हृदय को आनन्दित करो, मित्रों का कल्याण तथा शत्रुओं का नाश करो। हे पुत्र! तुम धन्य एवं पुण्यवान हो। क्योंकि दीर्घकाल तक तुम शत्रु रहित इस पृथ्वी पर राज्य करोगे। ब्राह्मणों की सेवा एवं रक्षा करके उन्हें प्रसन्न रखो, प्रजा के कल्याण के लिए कार्य करो। सदा ही दूसरे की भलाई करो। परायी स्त्री पर ध्यान न दो। भगवान को सदा हृदय में स्मरण करते हुए काम क्रोध, मद लोभ आदि छहों शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो। जीवों पर दया करो, यश के लिए व्यय करो, निंदा से डरो, शरणागत की रक्षा करो, यज्ञ आदि विभिन्न अनुष्ठानों से देवताओं को, दान से ब्राह्मणों एवं आश्रितों

को, उत्तम भोगों से स्त्रियों को सन्तुष्ट करो। बाल्यावस्था में बान्धवों को कौमारावस्था में आज्ञा पालन द्वारा माता पिता को, युवावस्था में स्त्री को एवं वृद्धावस्था में संन्यास धारण करके वन्य प्राणियों को सन्तुष्ट करो। इस प्रकार हे पुत्र ! तुम राज करते हुये मित्रों को प्रसन्न रखो, यज्ञादि द्वारा साधुओं की रक्षा करो। युद्ध में दुष्टों-नीचों एवं शत्रुओं को मार कर ब्राह्मण एवं गौओं की रक्षा करते हुए परलोक को गमन करो।

अलर्क को राजधर्म की शिक्षा

माता द्वारा नित्य प्रति उपदेश सुनते हुए अलर्क कौमारावस्था को प्राप्त हुआ। उसका उपनयन संस्कार हो गया एक दिन अलर्क ने अपनी माता से कहा—हे माँ ! जो कर्म इहलोक और परलोक में भी सुख दे तथा जो प्रजा के कल्याणार्थ और धर्म तथा अर्थ हेतु जो उचित कर्त्तव्य हो उसे समझाओ।

मदालसा बोली—हे पुत्र ! राजा का राज्याभिषेक हो जाने पर सर्वप्रथम कर्त्तव्य प्रजा को खुश रखना है। व्यसनों का त्याग करना चाहिए, अपना मन्त्र अर्थात भेद बाहर नहीं जाना चाहिए। शत्रुओं से अपनी रक्षा करनी चाहिए। शत्रु की कमजोरियों का पता करना चाहिए,

अच्छे एवं बुरे मन्त्रियों की पहचान रखनी चाहिए। ऐसा उपाय करना चाहिए कि मन्त्री शत्रु के सम्पर्क में न आवे तथा अपना गुप्त भेद किसी भी तरह से बाहर न जाये नहीं तो राजा का आठ प्रकार से नाश होता है। राजा को मित्र, आप्त पुरुष एवं बन्धुओं पर भी विश्वास स्वप्न में भी नहीं करना चाहिए। वैसे समय का औचित्य देखकर शत्रु पर भी विश्वास किया जा सकता है राजा को स्थान, क्षय, वृद्धि को जानने वाला तथा संधि विग्रह आदि छहों गुणों को जानने वाला होना चाहिए। कामी नहीं होना चाहिये। राजा को सदा ही शत्रु का विरोध करने से पूर्व सर्वप्रथम अपने को, फिर मंत्रियों को, फिर सेवकों को फिर प्रजाजन को वश में करना चाहिए। अन्यथा राजा को ही शत्रु के वशीभूत होना पड़ता है। काम क्रोध आदि शत्रुओं पर राजा को सर्वप्रथम विजय प्राप्त करनी चाहिए क्योंकि काम, क्रोध, मद, लोभ, मान एवं हर्ष ये सभी नीच स्वभाव वाले राजाओं के विनाश करने वाले भयंकर शत्रु हैं। क्योंकि काम के वशीभूत होने के कारण पाण्डु को मृत्यु प्राप्त हुई क्रोध के वशीभूत होने के कारण अनुहलाद को पुत्र से हाथ धोना पड़ा, लोभ के कारण ऐल 'पुरुरवा' का स्वर्ग-वास हुआ मद, 'अहंकार' के कारण वेन ब्राह्मणों के द्वारा नष्ट हुआ, मान के कारण अनायु के पुत्र की मृत्यु हुई तथा

हर्ष के कारण पुरञ्जय का विनाश हुआ। परन्तु महात्मा मरुत ने इन छहों दोषों को अपने वश में करके सम्पूर्ण विश्व पर राज्य किया।

फिर माँ ने आगे कहा—हे पुत्र ! राजा को सदा ही कौआ, कोयल, भौंरा, बकुला, सर्प, मोर, हंस, मुर्गी और लोहा से, वेश्या, कमल, शरभ् शूलिका, गुर्विस्तानी स्त्री तथा गोपाङ्गना से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। राजा को आग की चिनगारी तथा शाल्मली बीज के समान चेष्टा वाला तथा इन्द्र, सूर्य, यम, चन्द्रमा एवं वायु के समान पृथ्वी का पालन करने वाला होना चाहिए। जैसे इन्द्र वर्ष में चार माह वर्षा करके पृथ्वी को संतुष्ट करते हैं उसी प्रकार राजा को भी दान आदि के द्वारा प्रजा को प्रसन्न रखना चाहिए, जिस प्रकार सूर्य वर्ष में आठ माह पृथ्वी से जल का शोषण करता है उसी प्रकार राजा को प्रजा से थोड़ा-थोड़ा ग्रहण करना चाहिये। जिस प्रकार यमराज समय आने पर 'मृत्यु के समय' शत्रु एवं मित्र के साथ एक-सा ही व्यवहार करते हैं उसी प्रकार राजा को भी समदर्शी होना चाहिए। जिस प्रकार चन्द्रमा से सभी प्राणी सुख शान्ति को प्राप्त करते हैं ठीक उसी प्रकार राजा को प्रजा के साथ ऐसा सद् व्यवहार करना चाहिए जिससे कि सभी प्रजा राजा के आचरण से प्रसन्नता अनुभव करे। जिस प्रकार वायु सभी

प्राणियों में गुप्त रहकर विचरण करता है ठीक उसी प्रकार राजा को भी अपने गुप्तचरों के द्वारा नगरवासियों मंत्रियों, शत्रुओं एवं मित्रों तथा बान्धवों में गुप्त रूप से विचरण करना चाहिए। हे पुत्र ! जिस राजा का मन लोभ, अर्थ एवं अन्य किसी भी कारण से आकृष्ट नहीं होता वह स्वर्ग को प्राप्त करता है। जो राजा नीति पूर्वक दंड धारण करके पृथ्वी पर राज्य करता है तथा धर्म विरुद्ध आचरण करने वाले को एवं भ्रष्ट कुमार्गी व्यक्ति को सही राह पर लाता है वह स्वर्ग को प्राप्त करता है। तथा जिस राजा के राज्य में वर्णाश्रम धर्म एवं धर्म का नाश नहीं होता वह राजा इहलोक एवं परलोक दोनों लोक में ही सुख पाता है। हे पुत्र ! राजा का महान कर्त्तव्य एवं वृद्धि का मूलभूत कारण यही है। इस प्रकार चारों वर्णों की रक्षा करता हुआ राजा इस लोक में सुखों का भोग करता हुआ इन्द्र-लोक को प्राप्त होता है।

वर्णाश्रम धर्म की शिक्षा

अलर्क ने अपनी माता मदालसा से कहा—हे माँ ! आपने हमें राजधर्म को बताया। अब कृपा करके वर्णाश्रम धर्म को बताने की कृपा करें।

माँ मदालसा बोली—हे पुत्र ! चार वर्णाश्रम होते हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। अब एक-एक का धर्म सुनो। ब्राह्मण को दान, अध्ययन एवं यज्ञ करना ये तीन धर्म हैं। कोई भीषण संकट आने पर ही वह चौथा धर्म अपनाओ, ब्राह्मण की जीविका के तीन साधन हैं। पवित्र मन से यज्ञ करना, अध्यापन एवं पवित्र भाव से प्रतिग्रह कर्म। क्षत्रियों के भी तीन धर्म हैं दान अध्ययन एवं यज्ञ करना तथा जीविका के साधन हैं। पृथ्वी पालन व शास्त्रभ्यास करना। वैश्यों के भी दान, यज्ञ एवं अध्ययन करना तीनों ही धर्म हैं तथा जीविका के साधन हैं, व्यापार करना, पशुपालन तथा कृषि करना। इसी प्रकार शूद्रों के तीन धर्म दान, यज्ञ एवं तीनों जातियों ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य' की सेवा करना है तथा जीविका का साधन कारू कर्म 'ब्राह्मण की सेवा' पशुपालन व क्रय विक्रय आदि हैं।

माँ बोली यह रहे वर्ण व्यवस्था के अनुसार धर्म कर्म, अब आश्रम के अनुसार कर्म सुनो, मनुष्यों को सदा ही अपने-अपने धर्मानुसार आचरण करना चाहिए। तभी वह किसी भी प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त कर सकता हैं अन्यथा दूसरे धर्म के पालन करने से उसका अपना धर्म नष्ट तो होता ही है। परन्तु मृत्यु के पश्चात् वह नरक का भागी बनता है। जब तक द्विजातियों का उपनयन संस्कार नहीं होता तब तक तो वे अपनी इच्छानुकूल आहार,

विहार, आलाप आदि कर सकते हैं परन्तु उपनयन संस्कार के बाद नियमबद्ध जीवन व्यतीत करना होगा। जैसे उपनयन संस्कार होने के बाद मनुष्य को ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गुरु के घर पर ही निवास करके स्वाध्याय, अग्नि पूजा अर्थात हवन आदि स्नान करके भिक्षाटन करके गुरु को समर्पित करना फिर गुरु की आज्ञा से ही भोजन आदि करना चाहिए। तन मन से गुरु की आज्ञा पालन करते हुए अनन्य भाव से अध्ययन करना चाहिए। गुरु के चरणों में प्रणाम करके उत्तम दक्षिणा देनी चाहिए। फिर उसके बाद ब्रह्मचारी अपनी इच्छानुसार गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर विवाह आदि कर्म करे अथवा यदि वह चाहे तो वानप्रस्थाश्रम या चतुर्थ आश्रम में भी निवास कर सकता है। अथवा ब्रह्मचारी को गुरु के पास, गुरु न हो तो उनके लड़के या शिष्य के पास एकनिष्ठ भाव होकर रहना चाहिए। एकनिष्ठ होकर सेवापरायण होना चाहिए। जब उसे गृहस्थाश्रम में आने की इच्छा हो तो तब वह गुरु की आज्ञा लेकर घर आकर असमान कुल एवं गोत्र वाली जो कि स्वस्थ हो तथा हीन अंग वाली कन्या न हो उस कन्या से विवाह करना चाहिए। और वर्णानुसार कर्मों का पालन करते हुए धनोपार्जन करना चाहिए। फिर पितर देवता एवं अतिथि को श्रद्धापूर्वक प्रसन्न रखते हुए अपने शरण में आये

हुए का पालन करना चाहिए। भृत्यों, पुत्रों, दीन, अन्धा, याचक, पतित एवं पशु पक्षी आदि को भी अन्न आदि देकर पालन करना चाहिए। ऋतुकाल के समय स्त्री सहवास निश्चय ही करना चाहिए तथा पंचयज्ञ करना चाहिए यही गृहस्थ धर्म है। अपनी यथाशक्ति पितरों, देवताओं, अतिथियों तथा स्वजातियों को खिलाने के बाद ही शेष बचे हुये भोजन को अपने सेवकों के साथ खाना चाहिए।

मदालसा बोली—गृहस्थ धर्म का संक्षिप्त रूप वर्णन कर दिया। अब वानप्रस्थ धर्म को सुनो। बुद्धिमान पुरुष का कर्त्तव्य है कि जब वह अच्छी तरह अनुभव करने लगे कि उसका घर धन व सन्तान आदि से पूर्ण है तथा अपना शरीर अब बुढ़ापे की ओर जा रहा है तो उसे आत्मशुद्धि के लिये वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण करना चाहिए। वह वानप्रस्थ आश्रम में भूमिशयन, ब्रह्मचर्य का पालन, अतिथि देवता एवं पितरों का पूजन आदि क्रियाओं से सम्पन्न करना व फल मूल का आहार लेते हुए अपनी आत्मोन्नति करनी चाहिए। हवन, त्रिकाल स्नान ध्यान, जटा व वल्कल धारण, मौन व्रत का पालन, योगाभ्यास एवं वन्य प्राणियों के साथ स्नेह करते हुए शुद्ध आचरण करना चाहिए। वानप्रस्थाश्रम के बाद भिक्षु नामक चौथा उत्तम आश्रम है। इस आश्रम में सभी प्रकार के संग का त्याग

करना चाहिए, क्रोध रहित होकर, इन्द्रियों को वश में करके ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। किसी भी एक स्थान पर बहुत दिनों तक निवास नहीं करना चाहिए। कर्म का विसर्जन, भिक्षान्न से केवल एक बार भोजन, आत्मज्ञान की कामना तथा आत्मदर्शन आदि करना चाहिये।

सभी वर्णाश्रमों के सामान्य धर्म

सभी वर्णाश्रमों के सामान्य धर्म इस प्रकार हैं जैसे— सत्य, शौच, अहिंसा, अनसूया, क्षमा, उदारता, अकृपणता, अनृशस्त्र ये आठ गुण हैं। जो व्यक्ति इन नियमों का पालन करता है वह ब्रह्मलोक में तब तक निवास करता है जब तक चौदहों इन्द्रों का पतन नहीं हो जाता तथा अपने वर्णाश्रमों के नियमों का उल्लंघन नहीं करता। अन्य धर्म को अपनाने वाला राजदण्ड का भागी होता है। यदि राजा उस धर्म के उल्लंघन करने वाले को राजदण्ड देकर उसके सही धर्म पर नहीं लगाता है तो राजा अपने इष्ट और पुण्यों का विनाश करता हुआ अधोपतन को जाता है इसलिए राजा को चाहिए कि धर्म से च्युत व्यक्ति को राजदण्ड देकर सही धर्म पालन करने के लिये बाध्य करे।

गार्हस्थ्य धर्म वर्णन

अलर्क ने माता मदालसा से कहा—हे माँ ! अब तुम मुझे गार्हस्थ्य धर्म के विषय में बताओ कि गृहस्थी व्यक्ति का कर्त्तव्य, मोक्ष प्राप्ति जन्य अनुष्ठान एवं त्यागनीय कर्म क्या हैं ?

मदालसा बोली—हे पुत्र ! गृहस्थी व्यक्ति इस संसार के सम्पूर्ण प्राणियों का पालन करके अपने सभी प्रकार की कामना सिद्धि को प्राप्त करता है। पितर, ऋषि, देवता, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट, पतङ्ग, पक्षी, पशु, असुर आदि सभी गृहस्थाश्रम में ही अपना जीवन निर्वाह करते हुए तृप्त होते हैं तथा अन्य के लिए इसी आश्रम की ओर मुखापेक्षी रहते हैं। गृहस्थाश्रम को सम्पूर्ण विश्व का कारण मानते हैं यह संसार के लिए गृहस्थ रूपी कामधेनु है। ऋग्वेद पीठ, यजुर्वेद मध्य भाग, सामवेद मुख, इंष्टापूर्त इसके सींग, सुन्दर सूक्त शरीर पर निकले रोम, शान्ति और पुष्टि इसके मल-मूत्र एवं वर्णाश्रम इसकी पाद प्रतिष्ठा हैं। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण किये हुए, कभी भी क्षय को प्राप्त न होने वाली गृहस्थाश्रम रूपी कामधेनु है। इसके चारों थन रूपी स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार एवं हन्तकार हैं। इन चारों स्तनों में स्वाहाकार

स्तन को देवता गण, स्वधाकार स्तन को पितरगण तथा अन्य देवतुल्य मुनिगण वषट्कार स्तन को और हंतकार रूपी स्तन को मनुष्य पीते रहते हैं। इस प्रकार त्रिगुण-मयी यह धेनु ही देवता पितर आदि सभी को सन्तुष्ट करती है। जिस गृहस्थाश्रम रूपी धेनु के द्वारा मनुष्य, देवता, पितर आदि सभी योनियों के प्राणी पोषित होते हैं उसको नष्ट करने वाला व्यक्ति घोर पापी होकर अंधता-मिस्र एवं तामिस्र नामक नरक में गिरता है।

जो गृहस्थी उचित समय पर देवता, पितर, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी योनियों के प्राणियों को प्रतिदिन अपने शरीर के समान पोषण करता है। स्नान ध्यान करके प्रातःकाल में जल, चन्दन, गंध, पुष्प, धूप आदि से देव, ऋषि, पितर एवं प्रजापतियों का देवतुल्य पूजन करता है वह देवलोक में जाता है। घर में फिर अग्नि का तर्पण करके दधि की बलि देनी चाहिए। घर के मध्य में ब्रह्मा एवं विश्वेदेवा के लिये, उत्तर दिशा में धन्वन्तरि के लिये, पूर्व दिशा में इन्द्र के लिये, पश्चिम में वरुण के लिये, सोम-वार को उत्तर दिशा में धाता विधाता को घर के द्वार पर बलि देना चाहिए। घर बाहर अर्यमा के लिए, आकाश में निशाचर एवं भूतों के लिए, दक्षिण दिशा में एकाग्र मन होकर पितरों को बलि देनी चाहिए। तत्पश्चात् आचमन

के लिये जल लेकर सभी देवताओं को बारी-बारी से लक्ष्य करके विभिन्न स्थानों पर जल छोड़ना चाहिए। प्रातः एवं सायं में श्वान, श्वपच, एवं पक्षि के लिए भूमि में बलि देनी चाहिए। इसे 'वैश्वदेव' बलि कहते हैं। तत्पश्चात् आचमन करके घर की तरफ देख करके मुहूर्त के आठवें भाग तक अतिथि की प्रतीक्षा करनी चाहिए। उस समय आये हुए अतिथि को यथाशक्ति अन्न, जल, गन्ध, पुष्प आदि से उसका स्वागत करना चाहिए। अतिथि उसी क्षण में आया व्यक्ति जो कि अज्ञात कुल एवं गोत्र का हो, वास्तव में भूखा एवं श्रम से थका हुआ, उसके पास खाने को कुछ न हो। वह व्यक्ति अतिथि नहीं बन सकता जो कि मित्र है अथवा अपने ही गाँव का रहने वाला है। इसी प्रकार ब्राह्मण भी अतिथि होता है। बशर्ते नित्य प्रतिदिन न आता हो। वह चाहे सुन्दर हो या कुरूप जैसा भी हो उसे ब्रह्म समझ करके यथाशक्ति प्रेमपूर्वक उसका सत्कार करना चाहिये।

जो गृहस्थ अतिथि को सन्तुष्ट नहीं करता वह गृहस्थ आश्रम के यज्ञ के ऋण से मुक्त नहीं होता। जो व्यक्ति अतिथि को बिना भोजन कराये स्वयं ही भोजन कर लेता है वह महापाप को भोगते हुए अगले जन्म में केवल विष्ठा ही खाते हैं। जिसके घर से अतिथि वापस हो जाता है

वह अपने द्वारा किये गये पापों को छोड़कर उस गृहस्थी द्वारा किये गये पुण्यों को ले जाता है। गृहस्थी जो स्वयं खाता हो उसे ही अतिथि को भी सादर समर्पित करना चाहिए। प्रतिदिन अन्न जल आदि के द्वारा पितरों के लिए श्राद्ध करना चाहिये और कम से कम एक ब्राह्मण को इससे अधिक अपनी सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मणों को खिलाना चाहिये। अन्न का अग्र भाग ब्राह्मण को देना चाहिये तथा साधु एवं ब्रह्मचारी को भिक्षा देनी चाहिए बिना भिक्षा दिये भोजन नहीं करना चाहिये। अतिथि सत्कार के बाद अपनी जाति, बन्धु, याचक, विकल, बालक, आतुर एवं वृद्ध को भोजन कराना चाहिये। या यदि कोई भूखा हो और खाने की इच्छा प्रकट कर रहा तो उसे भी खिलाना चाहिये। ऐश्वर्यवान धनवान होने पर यदि उस जाति का कोई व्यक्ति दुःखी होकर पाप कर्म करता है तो वह धनवान व्यक्ति भी पाप का भागी होता है। संध्याकाल में आये अतिथि को भोजन के साथ-साथ बिस्तर भी सोने के लिए देना चाहिए। इस प्रकार जो व्यक्ति गृहस्थाश्रम में रह-कर विधाता, देव, पितर, महर्षि, पशु पक्षी, नृप, अतिथि तथा अन्य सूक्ष्म कीटों को तृप्त करता है वही गृहस्थी श्रेष्ठ है, यशस्वी है।

———

सदाचार वर्णन

अलर्क को माता द्वारा गृहस्थ धर्म की नित्य नैमित्तिक क्रियाओं के विषय में बताये जाने के बाद अलर्क बोला— हे माँ ! मुझे तुम्हारे द्वारा नित्य, नैमित्तिक क्रियाओं को एवं नित्य नैमित्तिक त्रिविध कर्मों को सुनने के पश्चात् अब इस लोक और परलोक में सुख देने वाला सदाचार के विषय में जानने की अभिलाषा जागृत हुई है अतः कृपया इसे सुनाकर मेरी इच्छा पूरी करो।

मदालसा बोली—हे वत्स ? गृहस्थी को सदाचार का सदा ही पालन करना चाहिये। क्योंकि सदाचार का उल्लंघन करके यज्ञ, दान, तप आदि धार्मिक कर्मों को करना व्यर्थ है क्योंकि बिना सदाचार का पालन किये कोई सिद्धि नहीं मिलती। सदाचार के पालन करने से सारे दुर्गुण समाप्त होते हैं। सदाचार पालन न करने वाले व्यक्ति की आयु यश एवं धन क्षीण होते हैं।

गृहस्थी व्यक्ति को त्रिवर्ग अर्थात् काम, धर्म एवं अर्थ के प्राप्ति हेतु प्रवृत्त होना चाहिये। क्योंकि त्रिवर्ग की सिद्धि हो जाने पर ही गृहस्थी व्यक्ति इहलोक और पर-लोक में सुख की प्राप्ति करता है। गृहस्थ को चाहिये कि अपने द्वारा उपार्जित आय का एक चौथाई भाग धार्मिक

कार्यों के लिये आधे भाग से नित्य नैमित्तिक कार्यों को करते हुए अपना पालन-पोषण करे तथा शेष चौथाई भाग को मूलधन के रूप में संचित करना चाहिये। जो भविष्य में किसी आपत्तिकाल में काम आ सके। जिस प्रकार से धनोपार्जन किया गया हो उसी प्रकार से गृहस्थ व्यक्ति को अपने पापों के विनाश हेतु भी धार्मिक कार्यों को करना चाहिये।

धर्म दो प्रकार का होता है—१. काम्य और निष्काम्य। काम्य धर्म इसी लोक में एवं निष्काम्य धर्म परलोक में सुख के देने वाला होता है। किसी प्रकार के कार्यों में विघ्न या भय उपस्थित होने पर काम्य व निष्काम्य दोनों धर्मों को करना चाहिये। काम्य धर्म दो प्रकार का होता है। त्रिवर्ग अर्थात धर्म, अर्थ और काम तीनों एक ही साथ संयुक्त भी हैं और असंयुक्त भी। गृहस्थी व्यक्ति को प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त में उठकर धर्म व अर्थ की सिद्धि हेतु चिंतन करना चाहिये। फिर बिस्तर (शय्या) को त्याग कर आचमन करे यानि हाथ मुंह धोये अच्छी तरह कुल्ला करके मुख का प्रक्षालन करे फिर संयतात्मा होकर पवित्र भाव से पूर्व दिशा की ओर मुख करके सूर्योदय से पूर्व ही जब कि अभी आकाश में दो चार तारे टिमटिमाते हों, प्रातः की संध्या करनी चाहिये। इसी प्रकार सायं काल में

भी सूर्यास्त होने से पूर्व ही संध्या, करनी चाहिये। आपात काल में संध्योपासना का समय इधर-उधर हो सकता है अथवा नहीं भी हो सकता है अन्यथा सन्ध्योपासना प्रातः एवं सायं पूर्ण विधिपूर्वक करना चाहिये। असत्य वचन, कठोर वचन, प्रलाप, असत्य शास्त्र, असत्य वाद एवं असत्य वाद का त्याग करना चाहिये। संयमी होकर पवित्र मन से प्रातः एवं सायं नित्य प्रति हवनादि करना चाहिये। सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय सूर्य को नहीं देखना चाहिये। केश विन्यास (बालों में कंघी इत्यादि करना), दन्तधावन, दर्पण में मुख देखना एवं देवों का तर्पण पूर्वाह्न में करना चाहिये। ग्राम, निवास, तीर्थ क्षेत्र, जुते हुये खेत एवं गोशाला में मल-मूत्र नहीं त्यागना चाहिये। परायी नग्न स्त्री को एवं अपने मल को न देखे तथा ऋतुमति स्त्री का भी न तो दर्शन करना चाहिये, न स्पर्श करना चाहिये और न उनके साथ बोलना ही चाहिये। जल में तथा केश, भस्म, कपाल, अंगार अस्थि एवं किसी रजस्वला स्त्री के वस्त्र पर और रास्ते पर मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिये। जैसी अपनी शक्ति हो उसी के अनुसार दान देवे, मनुष्य और अन्य योनियों के प्राणियों का पूजन करने के बाद ही स्वयं भोजन करना चाहिए। हाथ पैर धोकर पवित्र मन से एकाग्रचित होकर शुद्ध आसन पर उत्तर या

पूर्व को मुख करके बैठकर शान्त भाव से भोजन करना चाहिये। भोजन में अधिक नमक व अधिक गर्म नहीं खाना चाहिये। खाना खा लेने के बाद हाथ मुंह धो लेने पर फिर कुछ नहीं खाना चाहिए। उच्छिष्ट देह होने पर किसी वार्तालाप, वेदाध्ययन, गौ, ब्राह्मण, अग्नि एवं अपने मस्तक का स्पर्श सूर्य, चन्द्रमा एवं नक्षत्रों का दर्शन भी नहीं करना चाहिये। टूटे हुए आसन, शय्या एवं पात्र का त्याग कर देना चाहिये। अपने गुरुजनों एवं श्रेष्ठजनों को आते देखकर आसन से खड़े होकर आदर पूर्वक प्रणाम कर उनसे वार्ता करनी चाहिये। अपने से श्रेष्ठजनों के साथ चलने पर उनके पीछे-२ चलना चाहिए। तथा अपने से बड़ों के साथ अभद्रता पूर्ण वार्ता नहीं करनी चाहिये। मात्र एक वस्त्र पहन कर न तो भोजन करना चाहिये और न देवार्चना ही करनी चाहिये। ब्राह्मणों की निन्दा, अग्नि में मूत्र त्याग, नंगा स्नान व बिस्तर में नंगा शयन, दोनों हाथों से अपने सिर को खुजलाना, अकारण स्नान तथा बार-बार सिर से स्नान नहीं करना चाहिये। सिर से स्नान करने के बाद शरीर के किसी भी अंग में तैल मालिश नहीं करनी चाहिये। अनध्याय के दिनों में वेदाध्ययन का त्याग करना चाहिये।

गौ, ब्राह्मण, अग्नि, सूर्य और अन्य की ओर मुख करके

टट्टी पेशाब नहीं करना चाहिये। दिन में उत्तराभिमुख, रात्रि में दक्षिणाभिमुख होकर निर्विघ्न स्थान में मल-मूत्र शान्त भाव से करना चाहिये। गुरुजनों द्वारा किये बुरे कार्यों का प्रचार किसी से नहीं करना चाहिए। अपितु उनके अप्रसन्न होने पर उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। किसी अन्य के द्वारा भी गुरु की बुराई को नहीं सुनना चाहिये। ब्राह्मण, राजा, रोगी, दुःख से दुःखी, अपने से विद्या में अधिक विद्वान, गर्भवती स्त्री, भार से लदा हुआ व्यक्ति, गूँगा, अन्धा, बहरा, मत्त, उन्मत्त, पुंश्चली, शत्रु, बालक एवं पतित व्यक्ति का रास्ता छोड़ देना चाहिये। देवालय, तरु, चैत्य, चौराहा, गुरु एवं अपने से अधिक विद्वान की प्रदक्षिणा करनी चाहिये। किसी अन्य के द्वारा धारण किये गये वस्त्र, जूता एवं माला आदि को भी धारण नहीं करना चाहिये। दूसरे व्यक्ति के यज्ञोपवीत, आभूषण एवं कमंडलु को भी धारण नहीं करना चाहिये। ऐसा प्रशस्त कार्य करने वाला व्यक्ति लम्बी आयु को प्राप्त करता है।

चतुर्दशी अष्टमी और पूर्णमासी इन पर्वों को तेल मालिश एवं संभोग को त्याग करना चाहिये। पैर तथा जंघा को फैला कर न बैठे तथा पैर पर पैर मारना व लात मारना भी दोष है। किसी के मर्म पर चोट करना, किसी को कोसना, चुगली करना, दम्भ, अभिमान तीक्ष्ण

व्यवहार का त्याग करना चाहिये। किसी पर डण्डे का प्रहार नहीं करना चाहिए तथा मूर्ख, पागल, व्यसनी, कुरूप, मायावी, अंगहीन तथा अधिक अंग वाले का मजाक नहीं उड़ाना चाहिये। डण्डे का प्रयोग मात्र अपने पुत्र एवं शिष्यों के दुर्गुणों को सुधार के लिये ही करना चाहिये। आसन पर पैरों से चोट मारते हुए नहीं बैठना चाहिये।

प्रातः व सायं काल में अतिथियों को भोजन कराने के पश्चात् ही स्वयं भोजन करना चाहिये। उत्तर या पूर्व की ओर मुख करके बैठकर दन्त धावन करना चाहिये। दातुन करते समय मौन रहना चाहिये। जिन-जिन काष्ठ आदि वस्तुओं का दातुन के रूप में प्रयोग करना निषेध है उन्हें नहीं करना चाहिये। उत्तर या पश्चिम की ओर सिर करके नहीं सोना चाहिये। दुर्गन्धित जल से तथा रात्रि के समय स्नान करना वर्ज्य है। परन्तु चन्द्रग्रहण में रात्रि स्नान करने का विधान है। स्नानोपरान्त अंगोछे या हाथ से भी शरीर को नहीं रगड़ना चाहिये। गीले केशों को व गीले वस्त्रों को झाड़ना निषेध है। बिना स्नान किये भी चन्दन लगाना मना है। लाल व काले रंग के या छपाई वाले वस्त्र नहीं पहनना चाहिये। वस्त्रों व आभूषणों को भी गलत ढंग से नहीं पहनना चाहिये। जीर्ण-शीर्ण एवं फटे हुए वस्त्रों को नहीं पहनना चाहिये। बालु, केश या कीड़ों

युक्त अथवा कुत्ता के द्वारा देखा गया या चाटा गया या जिसका सार निकाल लिया हो। ऐसे अन्न का त्याग करना चाहिये। वर्जित माँस, प्रत्यक्ष लवण, बासी भोजन तथा बहुत दिनों के रखे हुये भोजन का त्याग करना चाहिये। पिट्ठी, शाक, इक्षु और दुग्ध के विकार एवं दूषित माँस का त्याग करना चाहिये। सूर्योदय के बाद या सूर्योदय के समय, स्नान के बाद, बैठे-बैठे अथवा अनिच्छा सेवन नहीं करना चाहिये। परायी स्त्री से सम्भोग नहीं करना चाहिये। नहीं तो इष्ट एवं पूर्त कर्मों का तथा आयु का ह्रास होता है। इस पाप से बड़ा कोई अन्य पाप नहीं है।

आचमन करने के बाद ही अन्न ग्रहण करना चाहिये। फेन सहित, गन्ध रहित, स्वच्छ एवं पवित्र जल लेकर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके आचमन करना चाहिये। जल के अन्दर की मिट्टी, सूतिका गृह की मिट्टी बांबी तथा चूहे के बिल की मिट्टी, तथा शौच के बाद बची हुई मिट्टी को ग्रहण नहीं करना चाहिये। हाथ पैर धोने के पश्चात् दोनों जानुओं को अन्दर की ओर समेट कर बैठ कर तीन या चार बार जलपान सहित आचमन करना चाहिये। दो बार मुख के इधर-उधर, मुख में दो बार तथा मस्तक एवं इन्द्रिय द्वारों को (नाक, कान, आंख) अच्छी प्रकार प्रक्षालन करते हुए आचमन करके क्रियाओं का

अनुष्ठान करके एकाग्रमन से देव, ऋषि तथा पितरों का पूजन करना चाहिये। वमन करने, खंखारने, वस्त्र पहनने, छींकने, चाटने पर भी आचमन करना चाहिये। गोपृष्ठ या अपने दाहिने कान का स्पर्श या सूर्य का दर्शन करना चाहिये। दाँतों से दाँतों को नहीं घिसना चाहिये तथा अपने शरीर को नहीं पीटना चाहिये। प्रातः एवं संध्या समय में भोजन, अध्यापन, स्वाध्याय, मैथुन एवं कहीं-कहीं का प्रस्थान नहीं करना चाहिये। पूर्वाह्न में देवताओं का, मध्याह्न में मनुष्यों का एवं अपराह्न में पितरों का श्रद्धा पूर्वक पूजन करना चाहिये। सिर से स्नान करने के बाद ही देवताओं एवं पितरों का पूजन करना चाहिये। पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके हजामत बनवानी चाहिये।

विकलांग, रोगिणी, पिंगला, वाचाल, अकुलीन, विकृत पीतवर्ण एवं दोषपूर्ण कन्या का परित्याग करना चाहिये। कल्याण के इच्छुक व्यक्ति को सर्वांग सुन्दरी, सौम्याकृति, कोमलाङ्गी, सुन्दर नासिका वाली सुलक्षणों से युक्त कन्या के साथ विवाह करना चाहिये। पिता अथवा माता पक्ष के सात पीढ़ियों को छोड़कर ही कन्या को ग्रहण करनी चाहिये। स्त्री की रक्षा करनी चाहिये तथा ईर्ष्या का त्याग करना चाहिये। दिन में शयन या मैथुन नहीं करना चाहिये। कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये जिससे किसी

अन्य को कष्ट हो। ऋतुमति स्त्री के साथ चार दिन तक संभोग नहीं करना चाहिये। पुत्र के इच्छुक व्यक्तियों को पाँचवें दिन की रात को छोड़कर छठवें रात्रि में स्त्री के साथ सहवास करना चाहिये। क्योंकि युग्म में ही पुत्रोत्पत्ति के लिए नारी सहवास श्रेष्ठ माना गया है। युग्म दिनों के अलावा अन्य रात्रि के सहवास करने से स्त्री के गर्भ स्थिर होने पर लड़की पैदा होती है। ऋतुकाल में, चौदस, अमावस, अष्टमी तथा संक्रान्ति काल में स्त्री के साथ सहवास नहीं करना चाहिये। पूर्वाह्न में सहवास करने से विधर्मी पुत्र, तथा सायंकाल में सहवास करने से नपुंसक पुत्र उत्पन्न होता है। क्षौर कर्म, वमन कर्म, स्त्री प्रसंग तथा श्मशान भूमि में गमन करने के बाद अवश्य ही स्नान करना चाहिये। गुरुजन, देवता, वेदशास्त्र, यज्ञ करने वाले ब्राह्मण, तपस्वी एवं पतिव्रता स्त्री की न स्वयं निन्दा करनी चाहिये अथवा हंसी करनी चाहिये। और न किसी के द्वारा सुननी ही चाहिये।

अपने से श्रेष्ठ अथवा आसन नीच के शय्या का प्रयोग नहीं करना चाहिये। न अशुभ वेष धारण करना चाहिए और न अशुभ वाणी का ही प्रयोग करना चाहिए। सदा ही श्वेत वर्ण का पवित्र वस्त्र व पुष्प मालादि धारण करना चाहिए।

बुद्धिमान व्यक्ति को उद्धत, उन्मत्त, मूर्ख विनयहीन, व्यभिचारी, चोर, दुष्कर्मी, अपरिमित व्यय करने वाला, लोभी, शत्रु, व्यभिचारिणी स्त्री का पति, नीच व निन्दित बन्धक रखने वाला, नीचाशय व शंकालु व्यक्ति के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिए। केवल सज्जन पुरुषों के साथ सदाचारी, बुद्धिमान, पिशुनता रहित, शक्तिशाली, उद्यमी, विद्वान पुरुष, वेदज्ञ, व्रत परायण एवं स्नातक पुरुष के साथ ही मित्रता करनी चाहिए। सुहृदय, दीक्षित, राजा, स्नातक, श्वसुर और ऋत्विक ये छः व्यक्ति घर पर आने पर पूज्यनीय हैं। उन्हें आलस्य रहित होकर मधुपर्क से पूजा करनी चाहिए। इन लोगों के साथ वाद-विवाद कभी नहीं करना चाहिए और न इन्हें असन्तुष्ट ही करना चाहिए। गृह पूजन के पश्चात ही अग्नि का पूजन करके आहुति देनी चाहिए। प्रथम आहुति ब्रह्मा को, दूसरी आहुति प्रजापति को, तीसरी आहुति गुह्यकरण को एवं चौथी आहुति कश्यप को, पाँचवीं आहुति अनुमति के उद्देश्य से देकर नित्यकर्मों को करके उसके बाद उसी के अनुसार गृह बलि देनी चाहिए। फिर वैश्व देवों को बलि देने के पश्चात् पर्जन्य अन्न और पृथ्वी को उसके बाद धाता, विधाता और घर को उसके बाद वायु को तथा पूर्व आदि के क्रम से प्रत्येक दिशाओं में बलि देनी चाहिए।

तत्पश्चात ब्रह्मा, अन्तरिक्ष में सूर्य, विश्वेदेवा और विश्व-भूतगण को उसके बाद ऊषा तथा भूतपति के लिए 'स्वधा नमः' कहकर के उत्तर दिशा में तथा पितरों को दक्षिण दिशा में बलि देनी चाहिए। उसके बाद शेष अन्न को लेकर अपसव्य करके वायुकोण में 'यक्ष्मै तत्ता' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करके विधि पूर्वक सभी देवों, पितरों एवं भूतों को क्रम से जला देना चाहिए। फिर अन्न के अग्र भाग को लेकर हन्तकार की कल्पना करके यथाविधि ब्राह्मण को देना चाहिए। फिर स्वकीय तीर्थ योग में नियमित कार्यों को करके देवता आदि के लिए ब्रह्मतीर्थ द्वारा आचमन करना चाहिए। दाहिने हाथ के अंगूठे की उत्तर दिशा अर्थात् ऊपर की ओर जो रेखा है वह ब्राह्मतीर्थ है। तर्जनी एवं अंगूठे के मध्य पितृतीर्थ कहा जाता है। नान्दीमुख के अतिरिक्त अन्य सभी कर्मों में पितृतीर्थ से जल देना चाहिए। अंगुली के अगले भाग में देवतीर्थ है अतः देवकार्यों में अंगुली के अग्रभाग से जल देना चाहिए। कनिष्ठा अंगुली के जड़ में कायतीर्थ है अतः प्रजापति को जल कायतीर्थ से ही देना चाहिए। उन उपरोक्त बताये गये तीर्थों के द्वारा ही जो जिसके के लिए है उसे उसी से कार्य करना चाहिए। न कि अन्य के द्वारा। जैसे—पितृतीर्थ के द्वारा पितृ कार्य देवतीर्थ

द्वारा देवकार्य आदि। न कि अन्य तीर्थों द्वारा अन्य का कार्य।

बुद्धिमान व्यक्ति को एक साथ जल एवं आग का ग्रहण तथा अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति की ओर कभी पैर नहीं फैलाना चाहिए। हाथ से पानी नहीं पीना चाहिए, बछड़े को दूध पिलाती गाय को नहीं बुलाना चाहिए। शौच कार्य में देर नहीं करनी चाहिए। तथा आग को मुंह से फूँककर नहीं जलाना चाहिए। और जहाँ ये चारों वस्तुयें न हों वहाँ निवास नहीं करना चाहिए। जिस नगर में सेठ साहुकार, चिकित्सक, श्रोत्रीय, जलयुक्त नदी तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला पराक्रमी, न्याय प्रिय, प्रजा का हित चाहने वाला, धर्मात्मा एवं शक्तिशाली राजा के राज्य में निवास करना चाहिए। दुष्ट राजा के राज्य में निवास नहीं करना चाहिए। क्योंकि वहाँ सुख कभी नहीं मिलता। प्रचुर औषधि वनस्पतियों से युक्त क्षेत्र जहाँ कि सभ्य नागरिकों का निवास हो वहाँ के कृषक व्यसनी न हों, वहाँ निवास करना चाहिए। जिस स्थान पर जिगीषु पूर्व-शत्रु एवं सदा ही उत्सव मनाने वाले हों, वहाँ निवास नहीं करना चाहिए।

माँ द्वारा अलर्क को अँगूठी भेंट

इस प्रकार माता मदालसा के उपदेश देते-देते अलर्क जवान हो गया। विधि पूर्वक शादी हो गयी। फिर अलर्क गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए अनेक पुत्रों की उत्पत्ति तथा अनेक यज्ञानुष्ठानों को करते हुए पिता की आज्ञा का पालन करता रहा। वृद्धावस्था आने पर वन में जाकर तपस्या करने की इच्छा से ऋतुध्वज ने पुत्र अलर्क का राज्याभिषेक किया। वन गमन करते समय माँ मदालसा अलर्क को एक स्वर्ण की अंगूठी देती हुई बोली—हे पुत्र! गृहस्थ जीवन दुःखों का घर है। इसलिये जब कभी तुम्हें अपने प्रिय अथवा बन्धु का वियोग, शत्रुबाधा, धन नाश अन्य कोई भीषण आपत्ति आवे तो इस अंगूठी से पत्र को निकालकर इस पर लिखे गये सूक्ष्मातिसूक्ष्म अक्षरों में लिखे गये पाठ को याद करना। उसके बाद अपने पुत्र को आशीर्वाद देकर राज्य देकर ऋतुध्वज मदालसा के साथ तप करने के लिए वन को गमन कर गये।

अलर्क को आत्मज्ञान

धर्मात्मा अलर्क ने न्यायपूर्वक प्रजा का पुत्रवत् पालन करते हुए बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान आदि किया। दुष्टों

को दण्डित किया तथा सज्जनों को प्रश्रय दिया। सभी प्रजा सब प्रकार से प्रसन्न थी। पृथ्वी पति अलर्क के अनेक पुत्र हुए जो कि शक्तिशाली, पराक्रमी, धर्मात्मा, महात्मा व कुमार्ग के नाश करने वाले थे। धर्म अर्थ एवं काम रूप में प्रवृत्त होकर पृथ्वी का पालन करते हुए अलर्क के अनेक वर्षों का समय एक दिन के समान ही व्यतीत होने लगा। प्रिय विषयों का उपभोग करने के पश्चात् भी उनके हृदय में कोई वैराग्य भाव उत्पन्न नहीं हुआ और न धर्म, अर्थ के अर्जन करने में उदासीनता ही हुई।

अलर्क का बड़ा भाई धर्मात्मा सुबाहु वनवासी जीवन व्यतीत करता था। उसे अलर्क विषय भोगी है जानकर बड़ा कष्ट हुआ। अतः उसने अपने भाई अलर्क को तत्त्व-ज्ञान कराने के उपाय के सम्बन्ध में बहुत समय तक विचार किया। अन्ततोगत्वा उसने शत्रु काशी नरेश की शरण में जाना उचित समझा। वह काशी नरेश के यहाँ गया और राज्य प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। काशी नरेश ने अपने दूत से अलर्क को संदेश भिजवाया कि वह सुबाहु को राज्य सौंप दे। अलर्क ने भी दूत से संदेश भिजवा दिया कि अगर मेरे भाई सुबाहु आकर मुझसे स्वयं राज्य माँगें तो मैं उन्हें सहर्ष राज्य सौंप दूँगा। अन्यथा युद्ध के भय से मैं अल्पांश भी पृथ्वी नहीं दे सकता।

महामति सुबाहु ने भी क्षत्रिय धर्म के अनुसार याचना करना उचित नहीं समझा। अतः काशी नरेश ने एक बड़ी सेना लेकर अलर्क के राज्य पर आक्रमण कर दिया। अलर्क को पराजित होना पड़ा। अलर्क का कोष भी रिक्त हो गया। सैन्यबल समाप्त हो गया। जिससे अलर्क के हृदय को बड़ा कष्ट हुआ। वे घबड़ाकर बहुत व्याकुल हो गये। अन्त में माँ मदालसा द्वारा दी हुई अंगूठी में रखे गये पत्र को पढ़ने की याद आई। उन्होंने पत्र निकाला और उस पर लिखे शासन को पढ़ा। उसके पढ़ते ही अलर्क का मन प्रफुल्लित हो उठा। उसमें लिखा था—

(१) सङ्गति को पूर्ण रूपेण त्याग देना चाहिये, यदि उसका पूर्ण रूप से त्याग न किया जा सके तो सज्जनों का संग करना चाहिए क्योंकि सत्संगति ही औषधि रूप होती है।

(२) काम का पूर्ण रूपेण त्याग कर देना चाहिये। यदि उसका पूर्ण रूप से त्याग कर सकना सम्भव न हो तो कामादि कार्य भी मोक्ष की इच्छा से ही करना चाहिए, क्योंकि मोक्ष का यही श्रेष्ठत्तम उपाय है।

अलर्क ने माँ द्वारा लिखे गये इस पाठ को बार-बार पढ़ा और निश्चय किया कि मनुष्यों को कल्याण के लिए मोक्ष की कामना ही उसका एक मात्र उपाय है और

सत्संग ही उसका साधन है। इस प्रकार विचार करते हुए भावातुर होकर अलर्क महात्मा दत्तात्रेय जी की शरण में गये। उनके चरणों में प्रणाम कर यथा विधि पूजन किया, तथा प्रार्थना की—हे महात्मन्! आप मेरे ऊपर कृपा करके मेरे दुःखों को नष्ट करिए। मैं विषय भोगों में आसक्त होकर दुःख से अत्यन्त दुःखी हो गया हूं।

महात्मा दत्तात्रेय जी ने कहा—हे राजन्! मैं तुम्हारे कष्टों का अभी निवारण कर दूंगा। परन्तु तुम पहले मुझे बताओ कि तुम्हें किस प्रकार का दुःख व्याप्त है। सर्व-प्रथम तुम यह विचार करो कि तुम किसके हो? दुःख किसका है? अंग अंगी भाव और निरङ्ग इन सबका विचार करो।

दत्तात्रेय जी के इस कथन के बाद अलर्क (१) आत्मा के भौतिक, दैविक एवं आध्यात्मिक दुःखों के आधार एवं (२) आत्मा इन दो विषयों पर गहन विचार करने लगे। गम्भीरता पूर्वक विचार करने के बाद राजा हंसकर बोले—मैं तो पृथ्वी, जल, ज्योति, वायु एवं आकाश में से कुछ भी नहीं हूं। फिर इस देह का आश्रय लेकर सुख की कामना करता हूं। इस पंचभूतात्मक शरीर में सुख अथवा दुःख की अनुभूति थोड़ी बहुत होती रहती है। इस प्रकार यदि होता भी है तो मुझे क्या हानि है अथवा लाभ ही।

स्वतन्त्र भाव से देह में स्थित होने के कारण मुझे घटने-बढ़ने का भी सवाल नहीं है। मुझे नित्य प्रभूत सद्‌भाव की प्राप्ति है। न्यूनाधिक्य के कारण नीचा ऊंचा भी होता है अतः मुझे ममता को त्याग करके ज्ञान की प्राप्ति करनी चाहिए। मैं तन्मात्रा में तथा सूक्ष्म तृतीयांश में अवस्थित हूं। इस मेरे शरीर का भूत सद्‌भाव युक्त अतः सुख-दुःख कुछ भी नहीं है। सुख, दुःख मन का धर्म होने से मन में ही रहते हैं क्योंकि मैं मन में भी नहीं हूं तथा मुझे सुख दुःख भी नहीं है। मैं यदि मन, बुद्धि, अहंकार कुछ भी नहीं हूं तो मुझमें अन्तःकरण से उत्पन्न दुःख से पार्थक्य कैसे किया जा सकता है। मैं मन और शरीर भी नहीं हूं क्योंकि मैं शरीर और मन इन दोनों से ही भिन्न हूं, इसलिये सुख और दुःख चाहे शरीर में रहे अथवा मन में इससे मेरे पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसी शरीर के लिये बड़े भाई राज्य की कामना करते हैं जबकि यह शरीर पंच भूतात्मक है। तो उनकी गुण प्रवृत्ति में मेरा क्या तात्पर्य। क्योंकि हम दोनों भाई शरीर से भिन्न हैं। जिसके न हाथ हैं न पैर हैं न मुख, कान, आंख आदि कोई अंग ही, और न मांस, हड्डी, शिरायें आदि कुछ भी नहीं हैं तो उसे हाथी, घोड़े, रथ, कोष आदि की क्या आवश्यकता है? आत्मा को तो इससे सम्बन्ध कुछ भी ज्ञात नहीं होता है।

जिस प्रकार मेरा कुछ भी नहीं है तो न मेरा कोई शत्रु है, न मित्र है, न दुःख है, न सुख है, न मेरा राज्य है न कोष है, न हाथी है, न घोड़ा न सेना आदि। कुछ भी तो नहीं है। यह सब न भाई का ही है और न दूसरे का ही। मेरे विचार से तो जिस प्रकार से घटी-कुम्भ और कमण्डल में स्थित आकाश एक होते हुए भी अनेक प्रतीत होते हैं उसी प्रकार आत्मा, सुबाहु, काशी नरेश और मुझमें एक होकर भी शरीर भेद से भिन्न दीख रही है।

दत्तात्रेयजी से अलर्क द्वारा योग विषयक प्रश्न

राजा अलर्क ने महर्षि दत्तात्रेयजी से विनयपूर्वक कहा, 'हे ब्रह्मन ! आपकी कृपा से मुझे ज्ञान हो जाने के कारण अब मुझे किसी प्रकार का दुःख नहीं है। असम्यक दृष्टि वाले व्यक्ति सदा दुःख रूपी सागर में डूबे रहते हैं। मनुष्य की बुद्धि जिस-जिस विषय में आसक्त होती है उस-उस विषय से ही दुख की उत्पत्ति होती है। जैसे घर में पाले गये मुर्गे के साथ आसक्ति हो जाती है ममता हो जाती है यदि उस मुर्गे को बिल्ली खा जाये तो मुर्गे के साथ ममत्व होने के कारण ही मालिक को कष्ट होता है। परन्तु यदि वहीं बिल्ली घर में रह रहे चूहे को खा जाय तो कोई दुःख नहीं होता। कारण कि चूहे के साथ कोई ममत्व नहीं

होता, मोह माया नहीं होती। अतः अब मुझे पूर्ण ज्ञान हो गया कि इस संसार में आसक्ति वाले व्यक्ति को ही दुःख व सुख होता है। अब मुझे न दुःख की अनुभूति हो रही है न सुख की ही, क्योंकि मैं प्रकृति से परे हूं।

दत्तात्रेय जी बोले—हे राजन ! तुम ठीक ही कहते हो। यह मेरा हैं कि ममता ही दुःख का मूल कारण है। यह मेरा नहीं है का वैराग दुःख का निवारण रूपी औषधि है। इसलिये दुःख सुख से दूर रहने की इच्छा वाले व्यक्ति को सदा ही ममता का त्याग करना चाहिये। मेरे प्रश्न करने के साथ ही जो तुम्हारे अन्दर ममता वाला विकार था वह समाप्त हो गया है। अहंकार रूपी बीज से ममता रूपी शाखाओं से युक्त अज्ञान रूपी एक अति विशाल वृक्ष की उत्पत्ति होती है। जिसकी स्थायी सम्पत्ति उस वृक्ष की शाखायें तथा सन्तान व स्त्री उसकी पत्तियां हैं। तथा धन धान्य बड़े पत्ते हैं जो धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त होते हैं और पुण्य तथा पाप उसके पुष्प हैं व सुख दुःख उसके बड़े-बड़े फल हैं। मूर्खों की संगति रूपी जल से यह सिञ्चित होता है। इस प्रकार यह वृक्ष दिन दूना रात चौगुना वृद्धि को प्राप्त होते हुये मोक्ष मार्ग को ढका हुआ अज्ञान रूपी विशाल वृक्ष खड़ा है। जो व्यक्ति भ्रम में पड़कर अज्ञानता के कारण सुख के वशीभूत होकर इस वृक्ष की छाया को

शरण लेते हैं, भला उन्हें मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी। इस लिए जो व्यक्ति विद्या (ज्ञान) रूपी कुल्हाड़ी को सत्सङ्ग रूपी पत्थर पर तेज धार करके इस ममता रूपी वृक्ष को काटने में सफल होता है वही ब्रह्ममार्ग (मोक्ष) को प्राप्त करता है। जो अत्यन्त शीतल धूल रहित एवं विष्कंटक है जहां कि निवृत्ति मय परमवृद्धि को प्राप्त करता है। इसलिए हे राजन ! आप या मैं दोनों में से कोई भी भूतेन्द्रियमय स्थूल, तन्मात्रामय और अन्तः करणात्मक कोई नहीं है। हम दोनों में से कोई भी प्रकृति युक्त नहीं है क्योंकि क्षेत्रज्ञ पुरुष प्रकृति से परे तथा पंचभौतिक पदार्थ समूह ही गुणात्मक एवं प्रधानात्मक है, जिस प्रकार मशक 'मच्छर' गूलर में, सरकण्डा मूंज में और मछली जल में एक साथ रहते हुए भी अलग-अलग है। इसी प्रकार शरीर व आत्मा भी एक साथ रहते हुए अलग-अलग हैं।

अलर्क ने विनय पूर्वक दत्तात्रेयजी से कहा हे प्रभो ! मैंने आपकी कृपा से अपूर्व ज्ञान को प्राप्त किया है। फिर भी मेरा मन विषयों की ओर आकर्षित होने के कारण समझ में नहीं आ रहा है कि इस प्रकृति बन्धन से मोक्ष की कैसे प्राप्ति होगी ? निर्गुणत्व व शाश्वत ब्रह्म की एकता कैसे प्राप्त हो ? पुनर्जन्म से कैसे छुटकारा मिले ? अतः मैं आपकी शरणागत् होकर प्रार्थना करता हूं कि आप मुझे

ऐसी शिक्षा दें कि भव बन्धन से मुक्त हो सकूं। क्योंकि सतसंग से ही मनुष्य का उपकार हो सकता है।

योगाध्याय

दत्तात्रेय जी ने अलर्क से कहा—हे राजन ! जब योगियों को ज्ञान हो जाने पर अज्ञानता के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो जाता है वही मोक्ष कहलाता है तथा प्राकृतिक गुणों से पृथक होने को ही ब्रह्म के साथ एकता कही जाती है। योग से मुक्ति एवं सम्यक् ज्ञान से योग और ममता से आसक्त चित्त से दुःख व दुःख से सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति होती है। मोक्षार्थी पुरुष को ममता का त्याग कर देना चाहिए क्योंकि ममता को त्यागने पर ममत्व ज्ञान (अपना-पन अर्थात यह मेरा है नष्ट हो जाता है। ममता का त्याग ही सुख का मूल कारण है। वैराग्य की भावना उत्पन्न होने पर सभी साँसारिक दुर्गुण स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं। जिस प्रकार ज्ञान से वैराग्य होता है उसी प्रकार वैराग्य से ज्ञान भी होता है। घर वही होता है जहाँ रहा जाता है, भोज्य भी वही है जिस पर जीवन आधारित रहता है। तथा ज्ञान भी वही है जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो। इसके प्रतिकूल ज्ञान को अज्ञान कहते हैं। पाप एवं पुण्यों के उपभोग करने के पश्चात् कामना रहित

होकर नित्य कर्मों को करना चाहिये। पूर्वार्जित कर्मों का क्षय एवं नवीन कर्मों के सञ्चय न होने से मनुष्य शरीर बन्धन से मुक्त हो जाता है। राजन! यह सब जितना मैंने कहा सभी ज्ञान योग का उपदेश हैं। इसे प्राप्त करके योगीजन शाश्वत ब्रह्म को त्याग कर किसी अन्य की शरण नहीं लेते।

आत्मा बड़ी कठिनता से वशीभूत होती है। इस लिये योगियों को चाहिये कि वे आत्मा के द्वारा आत्मा पर विजय प्राप्त करें। इसलिये हे पृथ्वीपति! अब आत्मा को वश में करने का उपाय सुनो, प्राणायाम के द्वारा सभी दोषों को, धारणा के द्वारा सभी पापों को, प्रत्याहार के द्वारा सभी विषयों का एवं ध्यान के द्वारा अनीश्वर गुणों को उसी प्रकार भस्मीकरण कर देना चाहिए। जिस प्रकार अग्नि संस्कार से सभी धातुओं के दोष एवं प्राण वायु के निग्रह से सभी इन्द्रिय कृत विकार भस्मीभूत हो जाते हैं।

योगीजनों को सर्वप्रथम प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्राण वायु एवं अपान वायु के निरोध को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम तीन प्रकार के होते हैं—१. लघु २. मध्यम और, ३. उत्तम।

लघु प्राणायाम—यह बारह मात्रा का होता है।

मध्यम प्राणायाम—यह चौबीस मात्रा का होता है।

उत्तम प्राणायाम—यह छत्तीस मात्रा का होता है।

आँख के पलक गिरने में उठने में जितना समय लगता है वही समय एक मात्रा है। लघु प्राणायाम के द्वारा स्वेद, दूसरे प्राणायाम के द्वारा कम्पन और तीसरे प्राणायाम के द्वारा विषाद आदि दोषों को नष्ट करना चाहिये। जिस प्रकार सिंह, बाघ एवं हाथी सेवा के द्वारा अपने हिंसक स्वभाव को त्याग कर मृदु स्वभाव वाले हो जाते हैं मनुष्य के वश में हो जाते हैं। उसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा प्राण भी योगियों के वश में जाते हैं। जिस तरह महावत मदमस्त हाथी को अपने वश में करके अपनी इच्छानुसार चलाता है ठीक उसी प्रकार योगी लोग भी अपने प्राण को वश में करके अपनी इच्छानुसार कार्य करने में समर्थ होते हैं। जिस प्रकार शिक्षित सिंह मृग आदि जानवरों की हिंसा तो करता है परन्तु मनुष्यों की नहीं। ठीक उसी प्रकार वशीभूत प्राण भी मनुष्यों के पापों को क्षय करता है, शरीर को कोई हानि नहीं पहुंचाता। इस लिए योगियों को प्राणायाम सदा ही करना चाहिये। क्योंकि इससे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

———

प्राणायाम की अवस्था

इसकी चार अवस्थायें होती हैं—१. ध्वस्ति, २. प्राप्ति, ३. संवित् ४. प्रसाद।

ध्वस्ति—इस अवस्था में दूषित एवं अदूषित कर्मों के फल क्षीण होते हैं तथा मन की मलीनता भी नष्ट हो जाती है और मन शुद्ध निर्मल हो जाता है।

प्राप्ति—इस अवस्था में योगी लोग ऐहिक एवं पारलौकिक लोभ तथा मोहात्मक कामनाओं को नष्ट करके प्राप्त होते हैं।

संवित्—इस अवस्था में चन्द्रमा, सूर्य ग्रहण एवं नक्षत्रों के समान ज्ञान को प्राप्त करके योगी लोग अतीत, अनागत, तिरोहित एवं दूरस्थ विषय को जान लेता है।

प्रसाद—इस अवस्था के द्वारा पंचवायु, एवं इन्द्रिय विषयों से योगी का चित्त शुद्ध हो जाता है।

दत्तात्रेय जी बोले—हे राजन ! अब तुम प्राणायाम के लक्षण एवं योग का अभ्यास करते समय जिस आसन को करने का विधि विधान है उसे सुनो।

पद्मासन, अर्द्धासन, स्वस्तिकासन इत्यादि आसनों को करते हुये, हृदय में प्रणवकार मन्त्र का जप करते हुये योग के अनुष्ठानों का करना चाहिये। योगी को चाहिये कि

उसका आसन समान हो, दोनों पाँव एवं जंघायें आगे की ओर संकुचित करके, मुख बन्द रखकर संयतात्मा होकर इस प्रकार बैठे कि उसके हाथ का जननेन्द्रिय तथा अण्डकोषों से स्पर्श न हो, दाँत का दाँत से स्पर्श न हो और गर्दन ऊपर की ओर उठी रहे। योगी उस समय अन्यत्र न देखते हुये अपने नाभ के अगले भाग पर ही देखे। फिर साधक को रजोगुण से तमोगुण को और सतोगुण से रजोगुण को दूर करके केवल निर्मल सतोगुण में ही अपने को स्थिर कर योगाभ्यास करना चाहिये तथा इन्द्रिय विषयों प्राणों एवं मन को अपने वश में करके रखे जिस प्रकार कि कछुआ अपने सभी अंगों को समेट कर रखता है। इस प्रकार योगी आत्मा में आसक्त होकर आत्मा के द्वारा आत्मा का ही दर्शन करता है। इस प्रकार योगी को कण्ठ से नाभि तक वाह्याभ्यन्तर शुद्धि करके प्राणायाम करना चाहिये।

प्राणायाम के दस तथा धारणा के दो प्रकार कहे गये हैं। तत्वदर्शी योगियों ने भी धारण के दो प्रकार बताये हैं। योगी द्वारा नियतात्मा होकर योगाभ्यास करने पर उसके सभी पापों का विनाश होता है। तथा शान्ति लाभ को प्राप्त करते हुये सभी प्राकृत गुणों एवं परमब्रह्म का पृथक रूप से दर्शन प्राप्त करता है। आकाश आदि पर-

साणु एवं विशुद्ध आत्मा का दर्शन प्राप्त होता है। इस प्रकार संयत आहार को लेते हुए योगी को प्राणायाम परायण होना चाहिए। इस प्रकार क्रमशः योग भूमि पर विजय प्राप्त करके अपने घर के समान उस योगभूमि पर आरूढ़ होना चाहिये। क्योंकि योगभूमि को न जीते जाने पर काम आदि व्याधियों एवं मोह आदि दोषों की वृद्धि होती है। इसलिये योगभूमि पर बिना विजय प्राप्त किये आरूढ़ नहीं होना चाहिये। जिसके द्वारा पंचप्राणों का निरोध हो वही प्राणायाम कहा जाता है।

धारणा—जिसके द्वारा मन की धारणा हो सके वह धारणा कहलाती है तथा जिस अवस्था में संयतात्मा व्यक्ति शब्द आदि विषयों से इन्द्रियों से इन्द्रियों का प्रत्याहरण करते हैं वह प्रत्याहार कहलाता है।

प्रत्याहरण करने से योगियों के शरीर में किसी प्रकार की व्याधि नहीं होती। जिस प्रकार प्यासा व्यक्ति यन्त्र नालिका आदि के द्वारा धीरे-धीरे जल का पान करते हैं उसी प्रकार श्रम को जीतकर योगीजनों को वायु का पान करना चाहिये। पहले नाभि में, फिर हृदय में, फिर वक्ष-स्थल में इसी प्रकार से क्रमवार कण्ठ, मुख, नासाग्र, नेत्र, भौंहों के मध्य में, तालु में और अन्त में परमब्रह्म में धारणा करनी चाहिये। इस प्रकार से यह दस प्रकार की

धारणा कही गयी है। इन दस धारणाओं को प्राप्त करने के पश्चात ही योगी लोगों को ब्रह्म-सारूप्य की प्राप्ति होती है। योगी पुरुषों को सिद्धि की प्राप्ति के लिए अधिक भाषण, हाँफना, क्षुधा, श्रम, व चित्त की चंचलता को दूर करना चाहिये फिर प्रयत्न पूर्वक योगाभ्यास करना चाहिये।

योगाभ्यास के लिए निषेध स्थान

अति ठण्डा एवं अति गर्म स्थान, जिस स्थान पर तेज वायु का झोंका आता हो, कोलाहल पूर्ण स्थान, अग्नि एवं जल के निकट, प्राचीन गौशाला चौराहे पर, शुष्क पत्तियों के ऊपर, नदी में, श्मशान में, साँप बिच्छुओं के स्थान पर, भययुक्त स्थान पर, कुएँ के किनारे, चैत्य या बाँबी युक्त स्थान पर, और जिस देश काल में सत्वगुण की उत्पत्ति न होती हो वहाँ योगाभ्यास करना निषेध है। यदि कोई उपरोक्त वातावरण को नजर अन्दाज 'अवहेलना' करके यदि वहीं योगाभ्यास करता है तो उसका श्रम निरर्थक जाता है। उससे किसी फल की प्राप्ति नहीं होती।

———

बाधा उत्पन्न करने वाले दोष

जो मूर्ख योगी उक्त दोषों की उपेक्षा करता है उसके योगाभ्यास में निम्न बाधायें आती हैं जैसे बधिरता, जड़ता, स्मृति का नाश, गूंगापन, अन्धापन, या ज्वर की उत्पत्ति होती है। और योगियों के आलस्य के कारण कोई व्याधि होती है तो उसकी चिकित्सा निम्न प्रकार करनी चाहिये। गुल्म, अफारा आदि उदररोग होने पर गर्म जौ की लपसी को खीचड़ी खाकर के पेट के ऊपर प्रलेप करनी चाहिये। जौ की लपसी को वातजन्य व्याधियों एवं वातज ग्रन्थियों पर बाँधना या प्रलेप करना उत्तम होता है। मन की चंचलता होने पर मन में विशाल पर्वत की धारणा करनी चाहिये। इसी प्रकार गूंगापन होने पर वाक्य की धारणा, बहरापन होने पर श्रवणेन्द्रिय की धारणा अर्थात जिस-२ अंग में जो विकार उत्पन्न हुआ हो उस-उस अंग की उपकारी धारणा को धारण करना चाहिये। उष्णता में शीतलता की, शीतलता में उष्णता की धारणा करनी चाहिये। तथा स्मृति का ह्रास होने पर सिरहाने की तरफ एक कील गाड़कर उस पर एक लकड़ी का टुकड़ा गाड़ कर उस पर एक लकड़ी का टुकड़ा गाड़कर दूसरे लकड़ी के टुकड़े से उसे ठोकना चाहिये। इससे लुप्त स्मृति शीघ्र

पुनः जागृत हो जाती है। अथवा स्मृति ह्रास होने पर पृथ्वी, आकाश, वायु और अग्नि की धारणा करनी चाहिये। योगी के हृदय अमानुषसत्व के प्रवेश होने पर वायु एवं अग्नि की धारणा करने से अमानुष सत्व नष्ट हो जाता है। इसलिये योगीजन को सदा ही ज्ञान के द्वारा अपने शरीर की रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का एक मात्र साधन शरीर ही है। प्रवृत्ति, लक्षण, आख्यान और विस्मय से योगियों के विज्ञान का क्षय होता है, इसलिये प्रवृत्ति को गुप्त ही रखना चाहिये। चंचलता, आरोग्य, अनिष्ठुरता, देह में सुगन्धि का संचार, मूत्र एवं मल की अल्पता, कान्ति, प्रसाद, माधुर्य तथा सौम्यता ये सब योग प्रवृत्ति के प्रथम लक्षण हैं। सिद्धि का श्रेष्ठ लक्षण तब प्रकट होता है जब योगी के प्रति मनुष्य के हृदय में प्रेम उमड़ने लगे तथा उसका गुणगान करने लगे और कोई प्राणी उससे भय न करें। जो योगी अधिक शीतलता एवं उष्णता को भी कष्ट रूप में अनुभव नहीं करता। हृदय में किसी से भी भय उत्पन्न नहीं होता तो समझना चाहिये कि उस योगी को सिद्धि प्राप्त हो गई।

योगसिद्धि

दत्तात्रेयजी ने राजा से कहा—हे राजन ! जब योगी आत्मा का दर्शन कर लेता है तो वह अनेकों प्रकार का विघ्न अनुभव करने लगता है। जैसे—बहुत से काम्य क्रियाओं एवं मानवोचित भोग्य पदार्थों की इच्छा। उदाहरणार्थ - स्त्री, दान, फल, विद्या, माया, कुप्य, धन, स्वर्ग, देवत्व, अमरतत्व, रसायन, वायु में कूदना, यज्ञ, जल, अग्नि में प्रवेश, समस्त श्राद्ध एवं दान समूह का फल एवं नियम, उपवास, पूर्तादि, देवपूजन आदि उन-उन कर्मों से युक्त होने की इच्छा हो तब-तब योगी को उस दशा से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिये। मन को ब्रह्म के साथ एकाकार करके भी उपरोक्त विघ्नों से बचा जा सकता है इन विघ्नों से छुटकारा मिलने के बाद भी सात्विक, राजसिक एवं तामसिक भेद से प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम एवं आवर्त आदि उपसर्ग उत्पन्न होते हैं जिनमें ये पाँच भयंकर उपसर्ग हैं।

जिसके द्वारा वेदार्थ, काव्य, शास्त्रार्थ, विद्यायें एवं शिल्पशास्त्र योगी के चित्त में प्रतिभासित हो जाते हैं उसे प्रातिभ कहते हैं। जिसके द्वारा सम्पूर्ण शब्दों के अर्थ का ज्ञान हो सके एवं हजारों योजन की दूरी से भी शब्द

सुनायी देने लगे उसे श्रावणी कहते हैं। जिसके द्वारा योगी देवतुल्य होकर पागलों की तरह आठों दिशाओं को देखता है इसे दैव उपसर्ग कहा गया है। जिससे योगी का आचार भ्रष्ट एवं मन के दूषित होने पर निरालम्ब होकर चक्कर खाने लगता है उसे भ्रम उपसर्ग कहते हैं। जिसके प्रभाव से ज्ञानावर्त एवं जलावर्त की तरह व्याकुल होकर चित्त को नष्ट कर देता है वह आवर्त्त उपसर्ग कहा जाता है। उन सभी उपसर्गों के कारण योगी सम्पूर्ण देवयोनि एवं योग से च्युत होकर संसार चक्र में बार-बार परिभ्रमण करता है। इसलिये योगी को मनोमय श्वेत कम्बल को ओढ़कर शरीर मण्डल में गुरु ज्ञान का दर्शन करे। क्योंकि ज्ञान से ही योग का ज्ञान करना चाहिये।

मन में परब्रह्म का चिन्तन एवं उसी का ध्यान करना चाहिये। फिर सदा ही अल्पाहारी, जितेन्द्रिय तथा योग युक्त होकर सदा ही भूर्भुवादि सात प्रकार की सूक्ष्म धारणा को धारण करने से पृथ्वी को धारण करने से सूक्ष्मता की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार जल में सूक्ष्म रस तथा उसी प्रकार तेज में रूप, वायु में स्पर्श और आकाश में सूक्ष्म प्रवृत्ति तथा शब्द की धारणा करके उनका परित्याग कर देना चाहिये। मन के द्वारा सभी भूतों को मन में प्रविष्ट कर मानसी धारणा करने से सूक्ष्म मन उत्पन्न

होता है। इसी प्रकार योग सम्पूर्ण प्राणियों की बुद्धि में प्रविष्ट होकर अत्युत्तम सूक्ष्म बुद्धि को प्राप्त करके उसे त्याग कर देता है। हे राजन ! जो योगी इन सात प्रकार के भावों को जानकर त्याग देता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। इस प्रकार आत्मावान योगी पुरुष इन सात प्रकार की धारणाओं की सूक्ष्मता बार-बार देखकर बार-बार सिद्धियों को त्याग करके परम गति को प्राप्त करता है एवं जिस ऐश्वर्य में आसक्त होता है उस आसक्ति को प्राप्त करता हुआ नष्ट हो जाता है। और जो योगी इन सूक्ष्म भूतों को जानकर परित्याग कर देता है वही परमपद को प्राप्त करता है।

जब योगी गन्ध आदि से आसक्त हो जाता है तो वह नष्ट हो जाता है। और वह पुनः मानव शरीर को प्राप्त करता है। यदि योगी इन सात प्रकार की धारणाओं का परित्याग करके उन सूक्ष्म भूतों में लय हो जाता है अथवा देवता, दानव, गन्धर्व, पन्नग और राक्षस आदि के शरीर में लीन होकर भी किसी में आसक्त नहीं होता। तो वही अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावशायित्वं इन आठ प्रकार के ईश्वरीय गुणों को प्राप्त करता है। जिसके द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो वह अणिमा है। जिसके द्वारा सभी कार्यों में लघुता उत्पन्न हो वह

लघिमा है। जिसके द्वारा सबका पूज्यनीय हो वह महिमा है। जिसके द्वारा अप्राप्य वस्तुयें भी प्राप्त हो जाए वह प्राप्ति है जिसके द्वारा व्यापक शक्ति उत्पन्न हो वह प्राकाम्य है। जिसके द्वारा ईशरत्व की प्राप्ति हो वह ईशित्व, किसी को वश में करने के कारण वह वशित्व है और जिसके द्वारा इच्छानुकूल स्थान पर जाया जा सके अथवा इच्छानुकूल कार्यों को किया जा सके वही कामा-वशायिता सिद्धि कहलाती है। अतः योगी इन आठ गुणों के कारण ही ईशरत्व को प्राप्त कर लेता है। ये सभी गुण मोक्ष प्राप्ति के सूचक हैं। इससे जन्म-मरण के भवजाल से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त करता है। योग रूपी अग्नि के द्वारा योगी, राग द्वेष आदि दोषों को जलाकर परब्रह्म के साथ एकत्व को प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार एक अग्नि को दूसरी अग्नि में डालने पर दोनों में ही एकरूपता हो जाती है पृथकता का बोध नहीं होता। ठीक उसी प्रकार दोष समूहों के नष्ट होने पर योगी परब्रह्म के साथ एकाकार को प्राप्त कर जाता है। योगी एवं ब्रह्म में पृथ-कता का भान नहीं होता। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि जल में जल को डाल देने पर दोनों जल की पृथकता समाप्त होकर एकरूपता कायम हो जाती है।

———

योगचर्या

अलर्क ने महर्षि दत्तात्रेय जी से योगी की दिनचर्या के सम्बन्ध में जानने की इच्छा व्यक्त की। तब दत्तात्रेय जी बोले—हे राजन्! मान और अपमान ये दो ही मनुष्यों को प्रसन्न एवं उद्वेग करते हैं और ये दोनों ही विपरीत दशा में अर्थात् यदि योगी मान को अपमान और अपमान को मान समझने लगे और इसी तरह मान को विषरूप एवं अपमान को अमृत रूप समझे, पवित्र भूमि पर ही अपना पैर रखे, वस्त्र से छने हुए जल का ही पान करे, सत्य से पवित्र हुई वाणी को बोले और बुद्धि पूर्वक विचार करके चिन्तन करे तो वह सिद्धि को प्राप्त करता है सिद्धि के योगी इच्छुक व्यक्तियों को कभी भी आतिथ्य, श्राद्ध, यज्ञ, यात्रा महोत्सवों में और महाजनों के पास कभी गमन नहीं करना चाहिए। जब गृहस्थियों के घर की आग शान्त हो गई एवं सभी व्यक्ति भोजन कर चुके हों तभी योगी को भिक्षा के लिए जाना चाहिए। परन्तु एक ही स्थान पर रोज-रोज नहीं जाना चाहिए। जिससे कोई तिरस्कृत एवं अपमानित न करे। इस प्रकार का प्रयत्न करता हुआ योगी अपने साधुत्व को नष्ट न करते हुए आनन्द पूर्वक विचरण करता है।

योगी को भिक्षा केवल गृहस्थों एवं यायावर पुरुषों के

घर से ही वह भी शिष्ट, श्रद्धालु, चतुर, श्रोत्रिय, महात्मा निर्दोष एवं जो नीच प्रकृति का न हो वहीं से लेनी चाहिए। नीच वर्ग के पुरुषों के यहाँ भी भिक्षा नहीं लेनी चाहिए। योगी को भिक्षा में जौ, मट्ठा, दूध, यावक, कुलथी, फल, मूल, प्रियंगु कण, पिण्याक एवं सत्तु को ही ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि ये सब वस्तु योगी के लिये कल्याणकारी एवं सिद्धि प्रदान करने वाली होती हैं।

योगी पुरुष को भोजन करने से पूर्व मौन धारण करके एक बार आचमन करके 'प्राणाय स्वाहा' कहकर प्रथम ग्रास ग्रहण करे, फिर क्रमशः 'अपानाय स्वाहा' कहकर दूसरा ग्रास, 'समानाय स्वाहा' कहकर तीसरा ग्रास 'उदानाय स्वाहा' कहकर चौथा ग्रास, एवं व्यानाय कहकर पाँचवां ग्रास भोजन करने के बाद शेष भोजन को इच्छानुसार भोजन करके तृप्त होवे। तत्पश्चात जल पीकर आचमन करके हृदय को स्पर्श कराना चाहिए।

अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ एवं अहिंसा इन पाँचों महान् व्रतों को धारण करते हुए अक्रोध, गुरुसेवा, पवित्रता, अल्पाहार एवं नित्य स्वाध्याय इन पांच नियमों को पालन करना चाहिए। योगी पुरुष को ज्ञान की विविधता के चक्कर में न पड़कर सारभूत एवं कार्य को सिद्धि प्रदान करने वाले ज्ञान की ही उपासना करनी चाहिये। यह भी

जानना है वह भी जानता है अर्थात अनेकों प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति के चक्कर में पड़ने से हजारों वर्षों तक भटकना पड़ता है और ज्ञान की प्राप्ति कुछ भी नहीं होती। सङ्ग का त्याग करने वाला, अक्रोधी, अल्पाहारी, जितेन्द्रिय योगी को बुद्धि योग से दशेन्द्रियों के द्वारों को बन्द करके मन को ध्यान में स्थिर करना चाहिये। योगी पुरुषों को निर्जन व एकांत स्थान, गुफा तथा वन में जाकर विधि पूर्वक ध्यान करना चाहिये। वाकदण्ड, कर्मदण्ड एवं मनोदण्ड को वश में रखने वाले यति को ही त्रिदण्डी कहते हैं। इस सत्-असत गुण-अवगुण रूपी इस संसार को जो योगी आत्ममय मानता है उसका न कोई अपना है न कोई पराया ही। जो विशुद्ध मन से सोने को भी मिट्टी तुल्य मानता है तथा सब प्राणियों को एक समान भाव से देखता है तथा समस्त प्राणियों में समाहित होकर सर्वत्र ही एक मात्र, सर्वाधार शाश्वत एवं अव्यय ब्रह्म को सर्वत्र विद्यमान देखता है। उस योगी का पुनर्जन्म नहीं होता। संसार में वेदों से भी श्रेष्ठ यज्ञ, यज्ञों से श्रेष्ठ जप, जप से श्रेष्ठ ज्ञानमार्ग एवं ज्ञान से विषयासक्ति एवं रागविहीन होकर ध्यान ही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि ध्यान से शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इसलिये सावधानी पूर्वक ब्रह्मपरायण, प्रमाद रहित, एकांतवासी और जितेन्द्रिय होकर ध्यान योग

की साधना करता है वही आत्मा में आत्मा के संयोग से मोक्ष की प्राप्ति करता है।

ओंकार स्वरूप वर्णन

दत्तात्रेय जी ने कहा—हे राजन्! जो योगी पूर्व में बताये गये आचार नियमों का पालन करता है और योगाभ्यास में लगा रहता है उस योगी को सैकड़ों जन्मों में भी अपने पद से कोई च्युत करने में समर्थ नहीं होता। जो विश्वस्वरूप, विश्वेश्वर, विश्वभावन, और विश्व ही जिनके पाद, ग्रीवा और मस्तक हैं उन्हीं पारब्रह्म को साक्षात्कार करके योगी को उन्हें प्राप्त करने हेतु एकाक्षर ॐ का जाप करना चाहिये, उसी का श्रवण और अध्ययन करना चाहिये, अकार, उकार और मकार तीन अक्षर ओंकार की सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन मात्रायें हैं। ओंकार में एक आधी मात्रा भी है जो तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) से परे है। यह ऊपर स्थित अर्द्धमात्रा योगियों द्वारा ही गम्य है। यह गांधार स्वर युक्त होने के कारण गांधारी कहा गया है। मात्र चींटी की भाँति गति और स्पर्श गुण वाली होने के कारण शिरोभाग में ही इसकी अनुभूति होती है। ओंकार परायण योगी अक्षर-

अक्षर में ओंकार युक्त हो जाता है। प्राण को धनुष रूप, आत्मा को बाण रूप और ब्रह्म को लक्ष्य रूप जानना चाहिये। इसलिये योगी को अपने ब्रह्म रूपी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रमाद रहित होकर बाण के समान तन्मय हो जाना चाहिये। ओंकार ही तीनों वेद, तीनों लोक और तीन अग्नियाँ हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ऋक्, यजुः और साम स्वरूप हैं। परमार्थ रूप में ओंकार की साढ़े तीन मात्रायें हैं। इस ओंकार में ही मिलकर योगी उसी में लीन हो जाते हैं।

अकार से भूलोक, उकार में भुवःलोक और व्यंजन युक्त मकार से स्वर्ग लोक कहा गया है। इसकी पहली मात्रा व्यक्त, दूसरी मात्रा अव्यक्त, तीसरी मात्रा इच्छा-शक्ति और चौथी अर्द्धमात्रा जो परमपद के नाम से वर्णित है। इसी प्रकार योगभूमि को भी समझना चाहिये। मात्र 'ॐ' के उच्चारण से ही सम्पूर्ण सत्-असत् ग्रहण हो जाता है। इसमें पहली मात्रा ह्रस्व और दूसरी मात्रा दीर्घ है। और तीसरी मात्रा प्लुत। परन्तु चौथी अर्द्धमात्रा का उच्चारण वाणी के द्वारा सम्भव नहीं है इस प्रकार इस अक्षर परमब्रह्म ओंकार को जानकर जो योगी पुरुष ध्यान करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। वह परमब्रह्म में लीन हो जाता है। सिद्ध योग अथवा असिद्ध योग के

द्वारा योगी को सदा ही अपने अरिष्टों का ज्ञान कर लेना चाहिये। जिससे उसे देहावसान के समय कोई कष्ट न हो।

अरिष्ट कथन

दत्तात्रेय जी ने अलर्क से अरिष्ट लक्षण का वर्णन करते हुए कहा—हे राजन! अब मैं तुमसे उस अरिष्ट का वर्णन करता हूं जिसके द्वारा योगी लोग मृत्युकाल ज्ञात कर लेते हैं। उसे ध्यान पूर्वक सुनो।

जो व्यक्ति देवमार्ग, ध्रुव, शुक्र, चंद्र अपनी छाया और अरुन्धती को नहीं देख पाता, उसकी मृत्यु एक संवत्सर बाद हो जाती है। जो सूर्य बिम्ब को किरणों रहित और अग्नि को ज्वालाओं रहित देखता है वह ग्यारह मास तक, जो स्वप्न में वमन, मल-मूत्र सोना चांदी देखता है वह केवल दस मास तक, जो प्रेत, पिशाच तथा गन्धर्वों की नगरी में स्वर्णिम वृक्ष देखता है वह केवल नौ माह तक, जो स्वप्न में अचानक मोटा से पतला और पतले से मोटा हो जाता है। वह केवल आठ माह तक, जिस व्यक्ति का धूल या कीचड़ में पैर के किनारे या अग्रभाग खण्डित दिखाई देता है वह सात माह तक, गिद्ध, कबूतर, उल्लू, कौआ, मांस-भक्षक पक्षी एवं नीले रंग के पक्षी उड़कर सिर पर बैठने

पर छः माह तक, जो व्यक्ति कौवों के झुण्डों से या धूल वर्षा के द्वारा कष्ट पाता तथा अपनी छाया को उल्टा देखता है वह केवल पाँच महीने तक, जो बादल रहित आकाश में दक्षिण दिशा में बिजली को देखकर, रात्रि के समय जो इन्द्रधनुष देखता है वह केवल तीन महीने तक घी, तेल और शीशे (दर्पण) में जो अपना चेहरा नहीं देख पाता, अथवा अपने शरीर को बिना शिर का देखता है वह एक माह तक, जिसके शरीर से मल या सड़े हुए शव के समान दुर्गन्ध निकलने लगे वह पन्द्रह दिन तक, स्नान करते ही जिसके हृदय में प्रदेश एवं पैर का पानी सूख जाय अथवा पानी पीते ही गला सूख जाता है वह केवल दस दिन तक, हवा के झोंके से जिसके मर्म स्थान पीड़ित होते हों एवं जल के स्पर्श से जिसका मन प्रसन्न न होता हो वह अल्प समय तक ही जीवित रहता है।

जो व्यक्ति स्वप्न में बन्दर एवं भालू की सवारी करके गीत गाते हुये दक्षिण दिशा की ओर जाता है उसकी मृत्यु अति निकट होती है। स्वप्न में जिस व्यक्ति को लाल या काले रंग की साड़ी पहने स्त्री हंसती हुई दक्षिण की ओर ले जाती है वह व्यक्ति भी जीवित नहीं रहता। जो व्यक्ति महाबली, नग्न, अपणक को अकेले ही हंसता हुआ जाता देखता है तो उसकी मृत्यु अति निकट में होने वाली होती

है। जो व्यक्ति स्वप्न में अपने शरीर एवं मस्तक को कीचड़ में धंसा हुआ देखे तो उसकी मृत्यु तत्काल होने वाली होती है। स्वप्न में केश, अंगार, भस्म, सर्प, सूखी नदी जिस व्यक्ति को दिखाई देती है उसकी मृत्यु भी दस दिन के बाद ग्यारहवें दिन निश्चित हो जाती है। जिसे स्वप्न में कराल, विकट आकार वाले कृष्ण वर्ण के पुरुष सशस्त्र आकर पत्थरों से मारे, उसकी भी मृत्यु शीघ्र हो जाती है। सूर्योदय के समय जिसके सामने या पीछे अथवा चारों ओर शृगाल चिल्लाते हुए जायें उसकी भी मृत्यु सन्निकट होती है। जो व्यक्ति भोजन करने के बाद शीघ्र ही भूख से पीड़ित होने लगता है तथा उसका दन्त घर्षण होने लगता है उसकी भी मृत्यु शीघ्र ही होने वाली है समझना चाहिये। जिस व्यक्ति को दीपक की गन्ध महसूस नहीं होती, जो दिन रात भयभीत रहता है जो दूसरे की आँखों में अपनी छाया नहीं देख पाता, जिसे अर्द्धरात्रि में इन्द्रधनुष व दिन में तारे दिखाई पड़ते हैं, अथवा जिसकी नाक टेढ़ी, कान ऊंचे नीचे हो गये हों और बायीं आँख से सदा ही पानी गिर रहा हो, या मुख लाल हो जाये और जीभ काली हो जाए तो इन सभी लक्षण वालों की मृत्यु सन्निकट जाननी चाहिये।

जो व्यक्ति स्वप्न में ऊंट या गधे पर चढ़कर दक्षिण

दिशा की ओर जा रहा हो, अथवा जिसके कानों पर हाथ रखने से अपना ही शब्द सुनायी न देता हो और आंख से दिखायी देना भी बन्द हो गया हो, वह भी जीवित नहीं रहता। जो स्वप्न में गड्ढे में गिरकर उसमें से निकलने में समर्थ न हो अथवा जिसकी आँख ऊपर को चढ़ी हुई हो, आँखें लाल हों, चंचल हो, मुख पसीना-पसीना हो एवं नाभी विस्तृत हो जाए तथा शीतल हो, अथवा स्वप्न में आग या जल में प्रवेश न कर सके उन सबकी मृत्यु होने ही वाली होती है। जो व्यक्ति दिन या रात्रि में भूतगणों द्वारा पीड़ित होता है वह सात दिन में; या जो व्यक्ति अपने धारण किए हुये श्वेत वस्त्र को लाल या कृष्ण वर्ण में देखता है अथवा जिसका स्वभाव विपरीत हो जाय, अथवा जिसकी प्रकृति विपर्यय हो जाय या जो व्यक्ति अपने ही पूजनीय व्यक्तियों की निन्दा करता है इन सबकी मृत्यु सन्निकट होती है। जो व्यक्ति देवताओं की पूजा नहीं करता तथा वृद्धजनों, गुरुओं, एवं ब्राह्मणों की निन्दा करता है एवं अपने माता-पिता, व दामाद का सम्मान नहीं करता। अथवा जो योगी, ज्ञानी एवं अन्य साधु सन्तों का सम्मान नहीं करता। इन सभी व्यक्तियों की की मृत्यु अति निकट होती है। इसलिए हे राजन ! योगी पुरुषों को इस प्रकार के अरिष्ट लक्षण को समझना चाहिये इन अरिष्ट लक्षणों

को देखकर उस योगी को अपनी मृत्यु का भय त्याग कर योग में ध्यानस्थ हो जाना चाहिए।

जिस दिन व समय की अरिष्ट सूचना प्राप्त हुई हो उसी दिन के पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, रात्रिकाल अथवा जिस समय की सूचना हो तभी से योगी से योग में मग्न होकर तब तक योग का आचरण करना चाहिए जब तक मृत्यु का दिन व समय न आ जाये। उस समय योगी को सभी प्रकार का भय त्याग कर तीनों गुणों पर विजय प्राप्त कर एकांत चित्त से योगयुक्त होकर अपनी आत्मा को परमात्मा में लीन कर दे। उसके बाद योगी इन्द्रियों से परे एवं बुद्धि के अगम्य स्थान ब्रह्मपद को प्राप्त करता है।

ब्रह्म प्राप्ति के उपाय

दत्तात्रेय जी बोले—हे राजन ! जिस प्रकार चन्द्रमा की रश्मियों का चन्द्रकान्त मणि से संयोग होने पर ही मणि से जल निकलता है वैसे नहीं, तथा जिस प्रकार सूर्य की रश्मियों का संयोग सूर्यकाँत मणि से होने पर ही मणि से अग्नि उत्पन्न होती है वैसे इस मणि से अग्नि नहीं उत्पन्न होती और चन्द्रमणि से जल नहीं रिसता ठीक इसी प्रकार योगी पुरुषों को योगयुक्त होने पर ब्रह्म की प्राप्ति

होती है। जब तक योगी पुरुष योग में पूर्ण रूपेण ध्यानस्थ नहीं होते, तब तक उन्हें ब्रह्मानन्द की प्राप्ति नहीं होती। जिस प्रकार चींटी, मूषक, नकुल, छिपकली, कबूतर से सभी घर में गृहस्वामी के साथ रहते हुए भी घर के नष्ट होने पर बिना मोह किये छोड़कर चले जाते हैं। उनके मन में लेशमात्र भी यह भाव उत्पन्न नहीं होता कि वे कभी इस घर में निवास करते थे। उसी प्रकार योगी व्यक्ति को भी मोह माया का त्याग करके योग साधना में ही अपने को ध्यानस्थ करे। जिस प्रकार दीमक अपने छोटे शरीर के अपने छोटे मुखाग्र से मिट्टी को ढेर सारा एकत्र कर देता है। ठीक उसी प्रकार योगी पुरुष ब्रह्म साधना जैसा कठिन कार्य भी अपने योगरूपी साधना से सिद्ध कर लेता है। जिस प्रकार पशु पक्षी एवं मनुष्यादि द्वारा फल पुष्प एवं पत्तों सहित वृक्षों का नाश करते हैं योगी को समझना चाहिए कि ठीक इसी प्रकार उपयुक्त समय पर काल कवलित होना है जान कर योग साधना के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति करनी चाहिए। जिस प्रकार रूरू मृग के बच्चे के सींग के अगले भाग पर मात्र तिल जैसा चिह्न होता है और बच्चे के शरीर के साथ-साथ ही सींग भी बढ़ने लगते हैं उसी प्रकार योगी पुरुष के द्वारा योगाभ्यास करने पर धीरे-धीरे योग सिद्धि सुलभ होती जाती है। मनुष्य जीवन के लिए जो सर्वस्व

त्याग करने की चेष्टा करता है उसका सही रूप जानकर योगी पुरुष कृतकृत्य हो जाता है। योगी पुरुष के लिए वही घर है जहाँ वह निवास करता है, वही भोजन है जिससे वह जीवित रहता है जिससे विषय की निवृत्ति हो वही सुख है। अतः इन सबसे क्या मोह माया करना। जिस प्रकार के कार्य करने से योग की सिद्धि हो योगी पुरुष को उसी प्रकार कार्य करना चाहिए।

अलर्क दत्तात्रेय जी से विनयपूर्वक बोले—हे ब्रह्मन ! सौभाग्य से ही शत्रु के भयंकर आक्रमण के कारण मेरे हृदय में भय उत्पन्न हुआ था तथा मेरे सौभाग्य से ही काशी नरेश ने अपनी चतुरंगिणी सेना से मेरी सेना का नाश कर दिया जिस कारण मुझे आपका सत्संग प्राप्त हुआ। मेरे सौभाग्य से ही मेरा सैन्यबल कोष व भृत्यों का नाश हुआ जिसके कारण मुझे सौभाग्य से ही आपके दोनों चरण मेरे स्मृति मार्ग में उदित हुये और आपकी मधुर वाणी का मेरे हृदय में निवास हुआ। सौभाग्य से ही आपने मेरे ऊपर दया करके मेरे हृदय में ज्ञान का प्रकाश कर दिया। जिस प्रकार कभी-२ अनिष्ट कार्य भी भाग्योदय का कारण बन जाता है। ठीक उसी प्रकार यह भयंकर आपत्ति ने भी आपका संग प्रदान करके मेरा उपकार ही किया है। हे भगवन ! सुबाहु व काशी नरेश दोनों ही

मेरे लिए कल्याणकारी सिद्ध हुये हैं। क्योंकि उन्हीं के कारण ही मुझे आपका सत्संग प्राप्त हुआ है। जिससे आपकी कृपा रूपी अग्नि में मेरे अज्ञान रूपी पापों को नष्ट कर दिया है। हे प्रभु अब मैं आपकी अनुमति पाकर ही गृहस्थाश्रम का त्याग करूँगा और ऐसा प्रयत्न करूंगा कि फिर कभी इस प्रकार का मुझे महान कष्ट न हो।

दत्तात्रेय जी ने अलर्क से कहा—हे राजन्! अब तुम जाओ। तुम्हारा कल्याण होवे। मैंने तुम्हें आज्ञा प्रदान की। अब ममता और अहंकार का त्याग करके ऐसा कार्य करो जिससे तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति होवे।

अलर्क दत्तात्रेय जी से आज्ञा प्राप्त होने के पश्चात महर्षि के चरणों में प्रणाम कर वहाँ गये जहाँ उनके बड़े भाई सुबाहु और काशी नरेश उपस्थित थे। वहाँ पहुंचकर अलर्क ठठाकर हंसते हुए बोले—हे नरेश! तुम्हें राज्य की अभिलाषा है। इसलिए या तो स्वयं राज्य का उपभोग करो अथवा सुबाहु को दे दो या जैसा चाहो वैसा करो।

काशी नरेश बोले—हे अलर्क! तुम क्षत्रिय हो, क्षत्रिय धर्म को भली-भाँति जानते हो। इसलिए बिना युद्ध किये राज्य क्यों छोड़ते हो। राजा को तो अपने मरने का भय त्याग करके आत्मा को वश में करके शत्रु का लक्ष्य करके बाण मारना चाहिये। तथा शत्रु को पराजित करके सिद्धि

हेतु उत्तम भोगों को उपभोग करते हुये बड़े-बड़े श्रेष्ठ यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिए।

अलर्क बोला—हे वीर ! जो तुम सोचते हो वही मैं भी पहले सोचता था। अब ठीक इसके विपरीत सोचने लगा हूं। सुनो ! जिस प्रकार मनुष्य का संगमात्र भौतिक संग है उसी प्रकार उनका गुणावगुण भी भूत की समष्टि ही है केवल चित्तशक्ति रूपी ब्रह्म ही सत्य है इसके अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं है। जब ऐसा ज्ञान मुझे प्राप्त हो गया है तो हे राजन ! शत्रु मित्र, स्वामी, सेवक आदि की कल्पना ही कैसी ! सब निरर्थक है। हे नरेश्वर ! मैंने तुम्हारे भय से दुःखी होकर के महर्षि दत्तात्रेय जी से यह ज्ञान प्राप्त किया है। इसलिये अब मैं जितेन्द्रिय होकर सभी प्रकार के विषयों को त्याग करके केवल परमब्रह्म में ही अपना मन लगाऊंगा। अब तो परमब्रह्म को जीतना ही मेरा परम लक्ष्य है। परमब्रह्म को जीत लिया तो मानो सब कुछ जीत लिया ऐसा समझो। क्योंकि उस परमब्रह्म के सिवा कुछ भी सत्य नहीं है। इसलिये परमब्रह्म को जीतना ही मेरा एकमात्र लक्ष्य है। इसके लिए जितेन्द्रिय होना ही आवश्यक है अन्य कोई मार्ग सुलभ नहीं है। हे राजन ! न मैं तुम्हारा शत्रु हूं न तुम मेरे शत्रु हो। सुबाहु ने भी मेरा अपकार नहीं किया है। इसलिये हे राजन !

अब आप किसी अन्य शत्रु की खोज कीजिये।

इस प्रकार अलर्क की वाणी को सुनकर सुबाहु ने भाई का स्वागत करते हुए अपना परम सौभाग्य माना और काशी नरेश से बोला—

अलर्क की योगसिद्धि

सुबाहु बोला—हे काशी महाधिपते ! अब मैं जा रहा हूं। क्योंकि जिस कार्य से मैं आपके यहाँ आया था वह मेरा कार्य पूर्ण हो गया। आपका शुभ हो।

काशी नरेश बोले—हे भद्र ! आप मेरे यहाँ आकर बोले कि आप मेरे भाई (अलर्क) से राज्य जीत कर मुझे दो। अतः मैंने बलपूर्वक राज्य जीत कर आपको दे दिया है अब आप अपनी कुल रीति के अनुसार राज्य का उपभोग करो। नहीं तो आप हमारे पास किसलिए आये हो ? आपका कौन सा कार्य सिद्ध हो गया है कृपया आप मुझे बताने की कृपा करें।

सुबाहु बोला—हे नृपश्रेष्ठ ! मेरा कौन सा कार्य सिद्ध हुआ है तथा आपसे कराया। उसे मैं बताता हूं। उसे आप सुनें। यह मेरा छोटा भाई अलर्क तत्वज्ञानी होते हुए भी विषयों में आसक्त था तथा मेरे और दो बड़े भाई अनपढ़ होते हुए भी तत्वज्ञानी हैं। मेरी माँ ने जैसे ही स्तनपान

कराया वैसे ही हम लोगों के कानों में तत्वज्ञान की भी शिक्षा दी। इसलिए मुझे तथा मेरे उन दो बड़े भाइयों को तत्वज्ञान का पूर्ण ज्ञान हो गया। परन्तु माँ ने अलर्क को ऐसी शिक्षा न दी। हे राजन ! जिस प्रकार साथ में चलने वाले मनुष्यों में किसी एक को दुःखी होने पर अन्य सभी साथ दुःखी होते हैं। उसी प्रकार हम तीनों भाई अलर्क के द्वारा तत्वज्ञान को भूलकर विषयासक्त हो जाने से दुःखी थे। ये गृहस्थ की मोह माया में पड़ कर कष्ट पा रहे थे। मैंने सोचा यदि अलर्क को किसी बात का गहरा आघात लगेगा तो उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हो जायेगा। इस लिए मैंने आपकी शरण में आकर आपके द्वारा उस पर आक्रमण करा कर भय उत्पन्न करा दिया। उस भय से अलर्क को बड़ा कष्ट हुआ। उस कष्ट से ही उसमें तत्वज्ञान की उत्पत्ति होकर वैराग्य उत्पन्न हो गया। अतः मेरी मनोकामना पूर्ण हो गई। अब मैं जाता हूं। आपका कल्याण हो।

हे राजन ! जो व्यक्ति स्वजन, बन्धु एवं मित्रों को कष्ट में देखकर उसकी उपेक्षा करते हैं वे स्वस्थ होते हुए भी अंगहीन हैं। अथवा किसी मनुष्य के सामर्थ्यवान् होते हुए भी यदि उसके भाई, मित्र व स्वजन दुःखी होते हैं और वह कुछ मदद नहीं करता तो वह धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष

से च्युत होकर निन्दनीय होता है। इसलिए हे राजन! मैंने आपकी सहायता से अपने दुःखी भाई अलर्क के हृदय में वैराग्य उत्पन्न करके महान् कार्य किया है। आपका कल्याण हो, आप भी अलर्क की ही तरह तत्वज्ञानी बनें।

काशी नरेश बोले—आपने तो अलर्क का उपकार किया परन्तु अब आप मेरे उपकार करने से क्यों विपरीत होते हैं? सज्जन पुरुषों का संग व्यर्थ नहीं होता। इसलिए अब आपके सत्संग से मुझे भी अपने जीवन को उन्नत करना चाहिए। क्योंकि सन्त पुरुषों की संगति सदा ही कल्याण-कारिणी होती है।

सुबाहु बोले—हे राजन्! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं। इनमें धर्म, अर्थ और काम आपको प्राप्त हो चुका है। अब आपको मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। मोक्ष के सम्बन्ध में मैं आपको संक्षेप में सुना रहा हूं। हे राजन्! यह मेरा है, यह मैं हूं आदि इस तरह के ममता व अहंकार पूर्ण विचारों को त्याग करें। धर्माभाव में व्यक्ति आश्रय हीन हो जाता है। इस लिए धर्म की आलोचना नहीं करनी चाहिए। मैं कौन हूं, का विचार करना चाहिए। इस प्रकार का आत्म विवेचन ब्रह्ममुहुर्त में करना चाहिए। अव्यक्त से प्रकृति तक विकार रहित, अचेतन तथा जो कुछ व्यक्त है उसे जानते

हुये जानने वाला कौन है, ज्ञेय क्या है और मैं कौन हूं जानना चाहिये। इन उपरोक्त को जानने के बाद ही आप सभी कुछ जान पायेंगे। शरीर आदि आत्मा के पृथक वस्तुयें जो कि अपनी नहीं हैं को अपना समझना महान् मूर्खता है। हे राजन ! यही लौकिक व्यवहार है। आपको मैंने संक्षेप में बता दिया। अब मैं जा रहा हूं। आपका कल्याण हो। कहकर सुबाहु चला गया तथा काशी नरेश ने भी अलर्क को यथोचित सम्मान देकर अपने नगर को प्रस्थान किया।

राजा अलर्क ने अपने बड़े पुत्र को राजपाट सौंपकर मोक्ष की सिद्धि के लिए वन को प्रस्थान किया।

बहुत काल तक निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होकर उच्चतम योगसिद्धि को प्राप्त करके परम मोक्ष को प्राप्त किया।

इस प्रकार अलर्क की योगसिद्धि के द्वारा मोक्ष प्राप्ति की कथा सुमति अपने पिता से सुनकर बोला हे पिताजी ! अब आप भी मोक्ष प्राप्ति के लिये उत्तम योग की साधना करें। जिससे आप उस ब्रह्मपद को प्राप्त करेंगे जहाँ शोक का कोई नामोनिशान नहीं है। इस यज्ञ व जप आदि की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि कृतकृत्य मनुष्य का कार्य तो ब्रह्म प्राप्ति के लिए ही है। अतः अब मैं आपकी आज्ञा

प्राप्त करके द्वन्द्व एवं परिग्रह को त्याग करके मोक्ष प्राप्ति के लिए पूर्ण प्रयत्न करूँगा। इस प्रकार जड़ बुद्धि सुमति अपने पिता की आज्ञा प्राप्त करके परिग्रह रहित होकर चला गया।

पक्षीगण महर्षि जैमिनि से बोले—सुमति अपने पिता की आज्ञा पाकर, सम्पूर्ण परिग्रहों को त्यागकर वहाँ से चला गया और पिता ने भी क्रम से वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया एवं परमसिद्धि को प्राप्ति की। हे मुने ! आपने जो पूछा था उसे हम लोगों ने आपको सविस्तार बता दिया। अब और क्या जानना चाहते हैं। हे विप्र श्रेष्ठ ! अलर्क और दत्तात्रेय का यह वृतान्त जो सुनता है। वह संसार के बंधनों से मुक्त हो जाता है। अश्वमेध यज्ञ करने का फल पाता है और अशुभ से मुक्त हो जाता है।

ब्रह्माण्ड और ब्रह्मोत्पत्ति

जैमिनी ऋषि ने पक्षियों से कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! वैदिक कर्म के दो भेद होते हैं—प्रवृत्ति और निवृत्ति आपने हमें इसे भली प्रकार समझाया। आप लोगों ने अपने पिता की अनुकम्पा से ऐसा उत्तम ज्ञान प्राप्त किया है जिसके कारण आप लोगों को इस तिर्यक योनि में भी मोह व्याप्त

नहीं है। आप लोग धन्य हैं। आप सभी प्रकार के संदेहों को दूर करने में समर्थ हैं। इस कंटकमय भवसागर में आप जैसे तपस्वियों का दर्शन होना अति कठिन ही नहीं अपितु दुर्लभ भी है। आप लोगों की संगति पाकर भी यदि मेरी मनोकामना पूर्ण नहीं हुई तो कहीं अन्यत्र होना सम्भव नहीं है। हे पक्षीगण ! आप लोगों की यदि मेरे ऊपर इतनी कृपा हो तो कृपा करके आप लोग हमें संपूर्ण सृष्टि सम्पूर्ण प्रलय, देव ऋषि, पितर, भूतादि की उत्पत्ति, कल्प का विभाग, मन्वन्तरों की स्थिति, पृथ्वी का संस्थान और परिमाण, पर्वत, समुद्र, सरिता, वन आदि का विवरण, मृत्युलोक, स्वर्गलोक, पाताल लोक का वर्णन, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि की गति अर्थात् सृष्टि के आरम्भ से प्रलय के बाद भी विश्व का जो शेष रह जाता है वह सब सुनना चाहता हूं बताने की कृपा करें।

पक्षियों ने कहा—हे जैमिने महर्षि मार्कण्डेय जी से क्रौष्टुक ने भी ऐसा ही प्रश्न किया था। अतः क्रौष्टुक से मार्कण्डेय जी ने जो कुछ भी कहा उसे मैं आपको सुना रहा हूं। जो पद्मयोनि पितामह के रूप में विश्व की उत्पत्ति और विष्णु के रूप में सृष्टि की स्थिति तथा प्रलय काल में भयंकर रौद्र रूप में इस सृष्टि का संहार करते हैं उन

जगन्नाथ को प्रणाम करके सारा वृतान्त आपको सुना रहा हूं आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये।

मार्कंण्डेय जी ने कहा—प्राचीन काल में सर्वप्रथम अव्यक्त अजन्मा ब्रह्मा की उत्पत्ति होने के साथ ही उनके चारों मुख से वेद व पुराण उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् ऋषियों ने पुराण संहिता को अनेक वर्गों में विभाजित किया। उनके उपदेशों को त्याग कर धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ईश्वरीय भाव की सिद्धि नहीं हो सकती। ब्रह्मा के मन से उत्पन्न सप्तऋषियों ने वेदों को ग्रहण किया और उन्हीं के मानस से उत्पन्न अन्य ऋषियों ने पुराणों को ग्रहण किया। भृगुमुनि से च्यवन ऋषि ने पुराणों को ग्रहण करके इनका उपदेश अन्य ऋषि मुनियों को दिया और इन ऋषियों ने सब पुराणों को दक्ष को सुनाया। दक्ष द्वारा इन पुराणों को मैंने सुना। कलियुग के पापों को नष्ट करने में समर्थ उन पुराणों को हे जैमिने! आज हम आपको सुना रहे हैं।

जो जगत की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण भूत आदि पुरुष, उपमा रहित, अजन्मा, अव्यय, चराचर जगत के एक मात्र आश्रय, परमपद रूप तथा जिनमें यह सम्पूर्ण जगत प्रतिष्ठित है उस हिरण्यगर्भ लोकनियामक परम ब्रह्म को प्रणाम कर इस अनुपम प्रपंच को कह रहे हैं। हे जैमिने! यह सृष्टि पुरुष से अधिष्ठित होने के कारण

नित्य होते हुए भी यह अनित्य है। सृष्टि का जो व्यक्त कारण है वह अव्यक्त नाम वाला है जिसे महर्षियों ने सत-असत अव्यक्त नित्य एवं सूक्ष्म प्रकृति कहा है। जो नित्य, अक्षय, अजर, अपरिमेय, अनाश्रित, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आदि से रहित अनादि, अनन्त, जगत के उत्पत्ति स्थान, त्रिगुणात्मिका, अव्यय, अविनाशी, सदा विद्यमान अविज्ञेय, सर्वकारण है वही प्रधान ब्रह्मस्वरूप सृष्टि के पूर्व से प्रलय के पश्चात् भी अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहते हैं, हे मुने ! उन्हीं से अव्याहत रूप से तीनों गुण आपस में अनुकूल होकर स्थित रहते हैं। सृष्टि के समय क्षेत्रज्ञ के अधिष्ठान से इनके त्रिगुणात्मक की सहायता से प्रधान तत्व उत्पन्न होकर महतत्व को उसी प्रकार ढक लेता है। जिस प्रकार कि बीज त्वचा (छिलका) द्वारा आच्छादित रहता है। इस महतत्व के तीन भेद होते हैं सात्विक, राजसिक एवं तामसिक। इस महत्तत्व से तीन प्रकार का अहंकार वैकारिक, तैजस और तामस उत्पन्न होते हैं। भूतादि ये सब तामस अहंकार हैं। जिस प्रकार महत्तत्व प्रधान से तत्व आच्छादित रहता है उसी प्रकार अहंकार भी महत्तत्व से आच्छादित रहता है। इसी अहंकार के प्रभाव से विकार उत्पन्न होकर शब्दतन्मात्रा एवं शब्दतन्मात्रा सेशब्दात्मक आकाश की उत्पत्ति होती है शब्द रूप आकाश तामस

रूपी अहंकार से ढक जाता है उससे स्पर्शतन्मात्रा की उत्पत्ति होकर स्पर्श तन्मात्रा से स्पर्श गुणमय शक्तिशाली वायु पैदा होता है। वायु भी विकृत होकर रूपतन्मात्रा को उत्पन्न कर इससे रूप गुणात्मक ज्योति प्रकट होती है। स्पर्श तन्मात्रा से वायु तन्मात्रा आच्छादित रहता है। ज्योति भी विकृत होकर रसतन्मात्रा और रस तन्मात्रा से रसमय जल की उत्पत्ति होती है। रसतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा से ढका रहता है। जल भी विकृत होकर गंधतन्मात्रा को उत्पन्न करता है और इससे गंधयुक्त पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। अतः जिस-२ पदार्थ में जो तन्मात्रा होती है, उसी तन्मात्रा के द्वारा अन्तर पदार्थ में तन्मात्रा आ जाती है। इसकी कोई संज्ञा न होने के कारण यह अविशेष है।

सत्ववोद्रिक्त, सात्विक एवं वैकारिक अहंकार से एक साथ ही वैकारिक सृष्टि की उत्पत्ति होती है। पांच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं पाँच कर्मेन्द्रियाँ ये दसों तैजस इन्द्रियाँ कहे गये हैं और मन ग्यारहवाँ इन्द्रिय देवता है। इस प्रकार सभी मिलाकर ग्यारहों इन्द्रियों को वैकारिक देवता कहते हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियां श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जीभ और नाक हैं जिनसे शब्द स्पर्श, रूप, रस, एवं गन्ध का बोध होता है। तथा पाद, वायु, उपस्थ, हस्त और वाक् ये पाँचों कर्मेन्द्रियां हैं इनका कार्य चलना, मल त्यागना, मैथुन, शिल्प

और कथन कार्य होते हैं। शब्द तन्मात्रा युक्त आकाश स्पर्श तनमात्रा में समाविष्ट होकर वायु को दुगुना उत्पन्न कर देता है परन्तु उसका विशेष गुण वायु ही रहता है। शब्द एवं स्पर्श ये दोनों गुण रूप में समाविष्ट होकर तीन गुने अग्नि को उत्पन्न करते हैं और यह अग्नि शब्द रूप गुण से युक्त होती है। शब्द, स्पर्श और रूप रस मात्रा में समाविष्ट होकर चार गुने रसात्मक जल की सृष्टि करते हैं। और ये सभी मिलकर गन्ध तन्मात्रा में प्रविष्ट होकर पृथ्वी की सृष्टि करते हैं इसलिए पाँच गुणों से युक्त स्थूलाकार पृथ्वी दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार ये पाँचों भूतात्मक गुण आपस में समाविष्ट होकर एक दूसरे को धारण करते हैं।

इस प्रकार दस इन्द्रिय, मन और पाँच तत्व जब ये सभी एक साथ आपस में नहीं मिलते तब तक सृष्टि की उत्पत्ति सम्भव नहीं है। जब ये सभी आपस में मिलते हैं तो आपस में एक-दूसरे का अवलम्बन करते हुए पूर्ण रूपेण संघटित होकर पुरुष का अधिष्ठान एवं प्रकृति का अनुग्रह प्राप्त करके ही महत्त से विषय पर्यन्त एक अण्डे की उत्पत्ति होती है जो जल में रहकर धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त होता है। ब्रह्म नामक क्षेत्रज्ञ इसी प्राकृत अण्डे में रहता है। वही प्रथम शरीर वाला, वही प्रथम पुरुष, वही भूतों के आदि

कर्ता ब्रह्मा और वह सबसे पहले वर्तमान उपस्थित था, उसी पुरुष से यह तीनों लोक व्याप्त हैं। उस वृहद अण्डे के रूप में ही मेरु और जरायु पर्वत, जल युक्त समुद्र, देव दानव और मनुष्यों से परिपूर्ण पृथ्वी, सम्पूर्ण लोक स्थित हैं। जल वायु, अग्नि एवं आकाश आदि भूतों के साथ क्रमशः दस गुना के परिमाण में अण्ड के बाहरी भाग को घेर रखा है। तथा महत्तत्व भी उसी परिमाण में अण्डे को आच्छादित किए रहता है और प्रकृति भी उससे ढकी रहती है। इस प्रकार सात प्रकृति आवरणों द्वारा वह अण्ड ढका रहता है यह प्रकृतिनित्य है और उसके अन्दर पुरुष विद्यमान रहता है। जल में डूबा हुआ कोई व्यक्ति जल से निकलते समय वलय को दूर फेंक देता है। उसी प्रकार ब्रह्मा को प्रकृति का स्वामी समझना, चाहिए, क्योंकि प्रकृति क्षेत्र एवं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ है। यह सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का लक्षण है। इस प्रकार क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित प्राकृत सृष्टि अबुद्धि सहित प्रथम विद्युत के समान प्रकट हुई।

———

ब्रह्मा जी की आयु का परिमाण

जब क्रौष्टुक ने मार्कण्डेय जी से भूतों की उत्पत्ति के बारे में जानना चाहा तब मार्कण्डेय जी बोले—इस सम्पूर्ण

जगत को प्रकृति में लीन हो जाने को ही प्रलय कहते हैं प्रकृति के अपने में स्थित हो जाने पर संसार के सम्पूर्ण पदार्थ नष्ट हो जाते हैं। तब प्रकृति और पुरुष दोनों साधर्म्य से प्रतिष्ठित होते हैं। उस समय सत्वगुण एवं तमोगुण दोनों ही समान भाव में स्थिर रहते हैं दोनों समभाव से युक्त होते हैं। इसमें से न कोई बढ़ता है और न घटता ही है, जिस प्रकार तिल में तेल तथा दूध में घी होता है उसी प्रकार से रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण में उपस्थित रहता है।

ब्रह्मा की आयु दो परार्द्ध वर्ष है। परब्रह्म का दिन व रात्रि समान होते हैं। प्रजापति का एक अहोरात्र आठ हजार युगों का होता है। इस प्रकार ब्रह्मा की आयु सौ वर्ष तथा ब्रह्मा की सौ आयुओं के बराबर विष्णु की आयु होती है। शिव के अर्द्ध निमेष में चौदह हजार विष्णु तथा असंख्य ब्रह्मा होते हैं। वह इस संसार का आदि, स्वयं अनादि, सबका कारण, अचिन्त्य स्वरूप वाला परमेश्वर स्वयं क्रियावान् है। जब वह जगत्पति परमेश्वर परमयोग के निमित्त प्रकृति एवं पुरुष में विक्षोभ करते हैं। जिस प्रकार मद एवं बसंत ऋतु की मादक हवा नवयुवतियों के हृदय को उद्वेलित करती है। उसी प्रकार योग मूर्ति ब्रह्मा भी प्रकृति एवं पुरुष को क्षोभित कर अण्डकोष में स्थित

ब्रह्मा नाम का देवता उत्पन्न हो जाता है। वह ब्रह्मा जगत् योनि निर्गुण होते हुये भी रजोगुण का आश्रय ग्रहण कर सृष्टि कार्य को करते हुये सतोगुण के आधिक्य से विष्णु रूप धारण करके प्रजा का पालन करते हैं तथा अन्त में तमोगुण के उद्रेक होने पर वही ब्रह्म रुद्र रूप धारण करके विश्व का संहार करके तीनों काल में तीनों गुणों का अवलम्ब निर्गुण ब्रह्म करते हैं। सर्व व्यापक, सर्व जनक, सर्व नाशक, ईश्वर इस प्रकार सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के कारण ही ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव नाम से पुकारते हैं। वह सम्पूर्ण जगत् को ब्रह्म भाव से उत्पन्न करता है, रुद्र भाव से संहार करता है तथा विष्णु भाव से उदासीन रहकर प्रजा का पालन करता है। इस प्रकार स्वयम्भू भगवान की तीन अवस्थायें होती हैं। इस प्रकार ये त्रिदेव तीनों गुण (सत्व, रज, तम) एवं तीनों रूप (ब्रह्मा, विष्णु व शिव) में एक दूसरे का आश्रय लेकर स्थित रहते हैं। ये क्षण भर के लिए भी एक दूसरे से अलग नहीं होते।

इस प्रकार ब्रह्म ही हिरण्यगर्भ, आदि देव, अनादि भी हैं तथा ये पृथ्वी रूपी कमल पुष्प के अन्दर स्थित होकर सर्व प्रथम प्रथम पुरुष के रूप में उत्पन्न होते हैं। उन ब्रह्मा की परम आयु ब्रह्म मान के अनुसार एक सौ वर्ष की होती है। इसकी गणना निम्न प्रकार की जाती है। पन्द्रह

निमेषों की एक काष्ठा, तीस काष्ठा की एक कला, एवं तीस कला का एक मुहूर्त, तीस मुहूर्तों का मनुष्यों का एक अहोरात्र, तीस अहोरात्र या दो पक्षों का एक मास होता है। छः महीने का एक अयन, दो अयनों का एक वर्ष (दक्षिणायण+उत्तरायण) होता है। मनुष्यों का यह एक वर्ष देवताओं का एक अहोरात्र जिनमें उत्तरायण दिन और दक्षिणायण रात होती है। देवताओं के परिमाण से बारह हजार वर्ष की चतुर्युगी होती है।

१. जिसमें चार हजार दिव्य वर्षों का सतयुग, एवं चार चार सौ वर्षों का उसका सन्धि तथा संध्यांश होते हैं।

२. तीन हजार दिव्य वर्षों का त्रेतायुग एवं तीन सौ वर्ष का उसका सन्धि तथा संध्यांश होता है।

३. दो हजार दिव्य वर्षों का द्वापर युग तथा उसका सन्धि एवं संध्यांश दो दो सौ वर्ष के होते हैं।

४. एक हजार दिव्य वर्ष का कलियुग तथा उसका सन्धि एवं सन्ध्यांश एक एक सौ वर्षों का होता है। इस प्रकार ये चारों युग बारह हजार वर्षों का हुआ। इन बारह हजार वर्षों के एक हजार वर्षों के एक हजार गुणे वर्षों का ब्रह्मा का एक दिन होता है।

ब्रह्मा के इस एक दिन में चौदह मनु होते हैं। इस समय का विभाजन हजार वर्षों में किया जाता है।

इन्द्र आदि देवता, सप्तर्षि, मनु और मनु के पुत्र राजा गण मनु के साथ उत्पन्न होते हैं और उसी के क्रम से नष्ट भी हो जाते हैं। इकहत्तर चतुर्युगों से कुछ अधिक का एक मन्वन्तर होता है। मानव मन के अनुसार उसकी संख्या इस प्रकार है।

तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार मानव वर्षों का एक मन्वन्तर हुआ।

अब दिव्य वर्ष मान के अनुसार—आठ सौ बावन हजार दिव्य वर्षों का एक मन्वन्तर और इस समय का चौदह गुना करने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है। ब्रह्मा के दिन के अन्त के प्रलय को विद्वान लोग नैमित्तिक प्रलय कहते हैं, उस समय भूलोक भुवर्लोक एवं स्वर्लोक का विनाश हो जाता है केवल महर्लोक ही शेष बचता है। और इसके निवासी भी प्रलयकाल के ताप के कारण जनलोक में चले जाते हैं। तब त्रिलोक रूपी समुद्र में रात्रि में ब्रह्मा सो जाते हैं। जो परिमाण ब्रह्मा जी के दिन का है उतना ही परिमाण रात्रि का भी है। रात्रि के समाप्त होने पर पुनः सृष्टि का कार्य आरम्भ होता है। इस प्रकार यह ब्रह्मा जी का एक वर्ष होता है। एक सौ वर्षों का पर तथा पाँच सौ वर्षों का परार्द्ध होता है। ब्रह्मा जी का एक परार्द्ध व्यतीत हो

चुका है दूसरा परार्द्ध का 'वाराह कल्प' नामक प्रथम कल्प चल रहा है।

प्राकृत और वैकृत सृष्टि

क्रौष्टुकि द्वारा मार्कण्डेय जी से प्राकृत एवं वैकृत सृष्टि के सम्बन्ध में जानने की अभिलाषा व्यक्त करने पर महर्षि ने कहा—हे विप्र ! पादम नामक प्रलय के अवसान होने पर सत्त्वगुण से उद्रिक्त ब्रह्मा जी ने शयन से जाग्रत होकर ब्रह्माण्ड को एवं सभी लोकों को शून्य देखा। जल का पर्यायवाची नार है और नार में शयन करने वाले को नारायण कहा गया है। नारायण जब-जब सोकर उठे तो उन्होंने देखा कि पृथ्वी जल में डूबी जा रही है। अतः उन्होंने पृथ्वी को जल से ऊपर निकालने की इच्छा प्रकट की। तब उन्होंने वाराह रूप धारण करके पृथ्वी का उद्धार किया। वे जगत पति, नारायण ने जल के अन्दर प्रविष्ट होकर पृथ्वी को पाताल से निकाल कर जल के ऊपर स्थापित किया। उसके बाद पृथ्वी को समतल करके पर्वतों की रचना की। फिर पृथ्वी को सात भागों (सप्त द्वीपों) में विभक्त कर दिया।

तत्पश्चात् पूर्व की भाँति भूलोक आदि चार लोकों का निर्माण किया। और पूर्व कल्पों की भाँति सृष्टि करने का

विचार करने लगे। उसके बाद तमोगुण उत्पन्न होकर इससे तमोगुण युक्त तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्ध, तामिस्र पाँच अविद्याएं उत्पन्न हुईं। इस प्रकार के चिंतन से पाँच प्रकार से स्थित अज्ञान युक्त सृष्टि हुई। संवृतात्मक और पर्वत स्वरूप अपने भीतर बाहर से अप्रशित थी। पर्वतों की प्रधानता के कारण वह सृष्टि (मुख्य सर्ग) नाम से प्रसिद्ध हुई। इस असाधक सृष्टि को देखने के पश्चात् उनकी अन्य सृष्टि की इच्छा से ध्यान करने पर तिर्यक् स्रोत की प्रवृत्ति हुई और तिर्यक् स्रोत के प्रवाहित होने से तमोगुणी सृष्टि पशु आदि अज्ञानी जीव उत्पन्न हुए। वे सभी अंतःकरण से प्रकाशित व एक दूसरे को ढके हुए रहते हैं। इसे भी असाधक समझ कर ब्रह्मा ने पुनः चिंतन किया जिससे ऊर्ध्व पथगामी तृतीय स्रोत प्रवाहित होने लगा। जो सात्विक था। ऊर्ध्व स्रोत से उत्पन्न हुए वे सभी प्राणी सुख, प्रीति, विशिष्ट, अन्दर और बाहर से प्रकाशित एवं तुष्टात्मा से इस तीसरी सृष्टि को देवसर्ग कहा गया है।

देवसर्ग नामक तीसरी सृष्टि के उत्पन्न होने पर ब्रह्मा जी अति प्रसन्न हुए। फिर ब्रह्मा जी ने उत्तम साधकों के सृष्टि हेतु चिंतन किया। इस प्रकार ब्रह्मा जी द्वारा चिंतन किये जाने पर अव्यक्त से अर्वाक् नामक स्रोत से साधक

सर्ग की सृष्टि हुई। ऊर्ध्व से उग्र होने के कारण इस स्रोत को अर्वाक् स्रोत कहा गया है। इसमें स्रोत प्रकाश की अधिकता, तमोगुण की न्यूनता एवं रजोगुण की अधिकता होती है। इसलिए ये दुःख की अधिकता वाले, बारम्बार कार्य करने वाले, बाहर एवं अन्दर से प्रकाशित साधक मनुष्यों की उत्पत्ति हुई। इसके बाद अनुग्रह नाम की पाँचवीं सृष्टि हुई जो विपर्यय, सिद्धि, शान्ति और तुष्टि चार प्रकार से स्थित है। भूत और वर्तमान के जानने वाले भूतादि तथा अन्य समस्त भूतों की सृष्टि षष्ठ सर्ग कही गयी है। वे सभी भूतादि स्त्री युक्त विषयासक्त, प्रेरणा-कुशल व अश्लील स्वभाव वाले होते हैं।

जिस सृष्टि से ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हुई। वह सृष्टि प्रथम सृष्टि महत् सृष्टि के नाम से जाननी चाहिए। तन्मात्राओं से उत्पन्न यानि ब्रह्माजी द्वारा की गई दूसरी सृष्टि भूत सृष्टि है। ऐन्द्रिक वैकारिक सृष्टि को प्राकृत सर्ग यानि बुद्धि पूर्वक उत्पन्न माना गया है। चतुर्थ सर्ग प्रधान है स्थावरों को प्रधान कहा गया है। तिर्यक् योनि रूप तिर्यक् स्रोत पंचम को सर्ग कहा है। ऊर्ध्व स्रोत से उत्पन्न छठी सृष्टि को देव सर्ग एवं अर्वाक् स्रोत से उत्पन्न सातवीं सृष्टि को मानवी सृष्टि कहा गया है। आठवाँ अनुग्रह सर्ग सात्विक एवं तामसिक दो प्रकार का होता है।

ये पाँच वैकृत सर्ग एवं पूर्व में कहे गये तीन सर्ग प्राकृत सर्ग हैं। प्राकृत एवं वैकृत से संयुक्त कौमार नाम की नवीं सृष्टि मानी गई है। इस प्रकार प्रजापति की नौ सृष्टि कही गई हैं। संसार के मूल कारण प्राकृत एवं वैकृत है जिसकी रचना जगदीश्वर ने की है।

देवादि सृष्टि वर्णन

कौष्टुकि की इच्छा पर महर्षि मार्कण्डेय जी ने देवादि उत्पत्ति के विषय में वर्णन करना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा—हे विप्र ! प्रलय के समय जो प्राणी नष्ट होते हैं। वे पुनर्जन्म से मुक्त नहीं होते। वे केवल पुनः सृष्टि होने तक उस प्रलय में लीन होते हैं। पुनः जब सृष्टि होती है वे सभी प्राणी अपने पूर्व जन्मों में किये गये शुभ कर्मों के अनुसार पुनः जन्म ग्रहण करते हैं। प्रलय के समय सुर असुर पितर और मनुष्य ये चार प्रकार की सृष्टि नष्ट हो जाती है। पुनः ब्रह्मा द्वारा सृष्टि की रचना करने की इच्छा करने पर उन्होंने सुर असुर पितृगण और मनुष्य की सृष्टि करने के लिए अपने अंश को जल में डाला। सृष्टि की कामनायुक्त ब्रह्मा में तमोगुण का उद्रेक होने पर उनकी जंघा से सर्वप्रथम असुरों की उत्पति हुई। इसलिए उन्होंने

तमोगुणी शरीर को त्याग दिया और उस व्यक्त शरीर से तमोगुणी रात्रि उत्पन्न हुई। फिर ब्रह्मा जी ने दूसरा शरीर धारण करके सत्वगुण से उद्रेक हुए। जिससे उनके मुख से देवताओं की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा ने पुनः इस शरीर को त्याग दिया और वही व्यक्त शरीर सत्वगुणात्मक दिन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। फिर ब्रह्मा ने अन्य सत्वमय शरीर धारण करके पितृगणों की रचना की। इस शरीर को भी ब्रह्मा ने त्याग दिया। यह व्यक्त शरीर रात्रि-दिवस का सन्धि काल संध्या नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद उन्होंने रजोगुणी अन्य शरीर धारण करके रजोगुणी मनुष्यों को उत्पन्न किया। ब्रह्मा ने इस शरीर को त्याग दिया। यही व्यक्त शरीर रात्रि को अन्तिम प्रहर एवं दिवस का प्रथम प्रसार का सन्धिकाल अर्थात प्रातःकाल नाम से प्रसिद्ध हुआ इस प्रकार से हे विप्र ! ब्रह्मा द्वारा शरीर के विग्रह से रात्रि दिवस सन्ध्या एवं ज्योत्सना (प्रातःकाल, नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिसमें प्रातःसंध्या एवं दिवस सतोगुणी तथा रात्रि तामसिक है। रात्रि तामसिक होने के कारण ही अंधकारमय होती है।

दिन में देवता, रात्रि में असुर, ज्योत्सना में मनुष्य एवं संध्याकाल में पितरगण अधिक शक्तिशाली होकर शत्रुओं द्वारा अपराजेय होते हैं। ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार के

और शरीर उत्पन्न करने के पश्चात् भूख-प्यास से युक्त रज तम एक अन्य रात्रिरूपी शरीर को ग्रहण किया। इस अन्धकार पूर्ण-रात्रि में ब्रह्मा जी ने भूख के कारण कृश, विरूप दाढ़ी-मूछों से युक्त प्राणियों की रचना की। उन प्राणियों ने शरीर को ही खाना प्रारम्भ कर दिया। तब उनमें से जिन प्राणियों ने कहा—'रक्षा करो' वे राक्षस और जिन प्राणियों ने कहा—हम खायेंगे। वे यक्ष कहलाये। यक्ष और राक्षसों को देखकर ब्रह्मा जी को ग्लानि हुई जिस कारण उनके सिर के बाल झड़ गये। ब्रह्मा का सिर केश, हीन हो गया। वे केश रेंगने के कारण (सर्पण) सर्प कहलाये। ब्रह्मा जी सर्पों को देखकर क्रोधित हुए और उन्हें क्रोधात्मा बनाया।

कपिल वर्ण के उत्पन्न प्राणी कर्कश स्वभावसे युक्त मांस भक्षी प्राणी बने। इसके बाद ब्रह्मा ने गौ का ध्यान करके गन्धर्वों को उत्पन्न किया। ये लोगवाणी को ग्रहण करते-करते 'गन्धर्व' कहलाने लगे। इस प्रकार से ब्रह्मा ने आठ देवयोनियों को प्रकट किया। फिर अपने शरीर से अन्यान्य पशु पक्षियों को मुख से बकरे को, हृदय से भेड़ों को, उदर एवं पार्श्व से गायों को, पैरों से अश्व, हाथी, गदहा, खरगोश, ऊंट, खच्चर आदि जन्तुओं को तथा अनेकों प्रकार के औषधियों फल-फूलों आदि की उत्पत्ति

की। ब्रह्मा जी ने कल्प के आदि और त्रेतायुग के आरम्भ में पशु और औषधियों की उत्पत्ति करके यज्ञ की रचना की।

ब्रह्मा ने सर्वप्रथम अपने मुख से गायत्री त्रिवृत छन्द, साम, रथन्तर एवं अग्निष्टोम यज्ञ की उत्पत्ति की। फिर दक्षिण मुख से यजुर्वेद, त्रैष्टुभ, छन्द, पंचदश स्त्रोत, बृहत् शाम और उक्थ को प्रकट किया। पश्चिम मुख से सामवेद जगती छन्द, पंचदश स्तोत्रवैरुप एवं अतिरात्र को प्रकट किया तथा उत्तर मुख से इक्कीस अथर्व, आप्तोर्याम, अनुष्टुप छन्द और वैराज की उत्पत्ति की। फिर कल्प के शुरुआत में विद्युत, वज्र, मेघ, रोहित, इन्द्रधनुष तथा पक्षियों को, अनेक तरह के जीवों को, स्थावर और जंगल भूतगण, यक्ष, पिशाच, गन्धर्व और अप्सराओं को, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, मृग तथा नाग आदि सम्पूर्ण नश्वर और अनश्वर जंगम प्राणियों की रचना की। इन सभी प्राणियों के कर्म सृष्टि के आरम्भ से ही निश्चित हैं। इसलिए ये बार-बार जन्म ग्रहण करने पर भी वे उन्हीं कर्मों को करते हैं। पूर्व जन्म में जो जीव हिंसा, अहिंसा, मृदुता, क्रूरता, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य जिसमें जिनकी जैसी रुचि होती है अगले जन्म में उनकी उत्पत्ति उसी योनि में होती है। ब्रह्मा ने प्राणियों में इन्द्रियों के विषय और

शरीर में इन्द्रियां उनके विविध कर्मों के अनुसार ही उत्पन्न किया है। तथा सृष्टि के पूर्व के समान ही नाम रूप कृत्य, अकृत्य, प्रपञ्च देव कर्म आदि की सृष्टि व अन्यान्य ऋषियों और देवों की रचना की।

मिथुन सृष्टि और स्थान वर्णन

क्रौष्टुकि मार्कण्डेय जी से बोले—हे ब्रह्मन्! आपने अर्वाक् स्रोत वाले मनुष्यों का वर्णन विस्तार पूर्वक किया। तथा जिस प्रकार वर्णों (ब्राह्मण आदि) और गुणों की सृष्टि व कर्म के विषय में भी बताने की कृपा करें।

मार्कण्डेय जी बोले—सृष्टि के पूर्व ब्रह्मा जी द्वारा चिन्तन किये जाने पर उनके मुख से सतोगुणी हजारों मिथुनों की सृष्टि हुई थी। वे सभी तेजस्वी और सतोगुण बाहुल्य से युक्त थे। उन लोगों ने फिर अपने वक्षस्थल से दूसरे हजारों मिथुनों की सृष्टि की। ये सभी रजोगुणी एवं क्रोधी स्वभाव के होने के कारण अपनी दोनों जंघाओं से अन्य हजारों मिथुन उत्पन्न किये। इन्होंने रजोगुण और तमोगुण से युक्त तथा ईर्ष्यालु स्वभाव के होने के कारण अपने चरणों से सहस्रों मिथुनों को उत्पन्न किया। ये सभी लक्ष्मीहीन, तमोगुणी, तेजहीन अल्पबुद्धि वाले प्राणी थे।

सभी प्रसन्नचित्त थे। इसके बाद संघर्षण से द्वन्द्व रूपी प्राणी उत्पन्न हुए जो इच्छानुसार आपस में मैथुन क्रिया करने लगे। तभी से मैथुव सृष्टि प्रारम्भ हो गई। उस समय स्त्रियाँ मैथुन करने पर भी सन्तान उत्पन्न नहीं करती थीं क्योंकि उन स्त्रियों का मासिक धर्म नहीं होता था। केवल आयु के अन्त में ही एक बार सन्तान उत्पन्न होती थी। तब से अब तक इसी प्रकार की मैथुनिक सृष्टि होती आई है।

ब्रह्मा जी के द्वारा प्रजा का चिन्तन किए जाने पर उनके मन से पंच महाभूत और शब्द आदि विषय एक साथ उत्पन्न हुए। यह प्रजापति की मानसी सृष्टि कहलाती है। उसी की वंश परम्परा से उत्पन्न प्राणियों से यह सारा संसार भरा पड़ा है। वे सभी प्राणी एक स्थान पर स्थित न होकर चारों तरफ घूमते रहते थे। वे अपना पड़ाव नदियों, सरोवरों, समुद्रों के किनारे के पहाड़ों पर डालते थे। उन सभी प्राणियों को शीत ताप की पीड़ा सताती नहीं थीं। वे सन्तुष्ट रहते थे। उनमें परस्पर संघर्ष, द्वेष, मत्सर या एक दूसरे को उत्पीड़न अथवा शोषण की प्रवृत्ति नहीं थी। अतः वे प्रसन्नचित्त होकर निष्काम भाव से निर्द्वन्द्व होकर विचरण करते थे। पिशाच, उरग, राक्षस, मत्सर युक्त मनुष्य, पशु पक्षी, नक्र, मत्स्य, बिच्छू,

सर्प, प्रवारक और अण्डज प्राणियों की उत्पत्ति अधर्म के कारण हुई। उस समय मूल, फल, पुष्प, ऋतु और वर्ष इत्यादि का पूर्णतया अभाव था। ऋतुएँ सदा समशीतोष्ण रहती थीं। कालक्रमानुसार उन्हें सिद्धियाँ प्राप्त थीं। पूर्वाह्न एवं मध्याह्न में वे अतृप्त रहते थे तथा उसके बाद इच्छा करने पर स्वयं ही तृप्त हो जाते थे। एवं सब से जल के सूक्ष्म होने के कारण नाना प्रकार की रस और उल्लास वाली अन्य सिद्धियाँ उत्पन्न हुईं। जो कि सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ थीं। वे सभी संस्कार रहित होने पर स्थिर यौवन वाले थे। उनमें पर-स्पर इच्छा या द्वेष की भावना नहीं थी न ऊँच-नीच की भावना ही थी तथा सभी आयु एवं रूप में समान थे। वे विपत्ति एवं क्लेश से रहित होकर चार हजार वर्षों तक जीवित रहते थे। कहीं-कहीं पृथ्वी दैवशात ऐसी हो जाती थी कि प्रजा को कालक्रम से जीवन समाप्त करना पड़ता था। उन सभी सिद्धियों के नष्ट हो जाने के बाद आकाश से रस बरसने लगा जिससे कि कल्पवृक्ष की उत्पत्ति हुई। इस वृक्ष से मनुष्य सभी प्रकार के उपभोगों को प्राप्त करने लगा। त्रेतायुग के प्रारम्भ में मनुष्य इन्हीं कल्पवृक्षों से अपना जीवन निर्वाह करता था।

कुछ समय बाद मनुष्य में राग उत्पन्न हुआ। इस

राग के उत्पन्न होने के कारण स्त्रियां प्रतिमाह मासिक धर्म और बारम्बार गर्भ धारण कर सन्तान पैदा करने लगीं। फिर गृहों में स्थित कल्पवृक्षों में भी राग उत्पन्न होने लगा। परिणामस्वरूप कल्पवृक्ष नष्ट हो गए। तथा चार शाखाओं से युक्त अन्य वृक्षों की उत्पत्ति हुई। उनसे वस्त्राभरण उत्पन्न होते थे। उन फलों के प्रत्येक पुट में श्रेष्ठ गन्ध, वर्ण और रस से युक्त परम शक्तिशाली मधु-मक्खियों के बिना ही उत्पन्न होता था। त्रेता के आरम्भिक समय में प्रजा मधुपान करके ही जीवन धारण करती थी कुछ समय बाद वह प्रजा लोभी हो गई। अतः वे ममत्व से युक्त होकर उन वृक्षों को एक दूसरे से छीना-झपटी करने लगी। जिस कारण वे सभी वृक्ष नष्ट हो गए। प्रजा शीत, ऊष्ण, क्षुधा, पिपासा आदि द्वन्द्व से पीड़ित होने लगी। तब इन द्वन्द्वों को दूर करने के लिए पुरों का निर्माण करने लगे। तब वे मरुभूमि, पर्वत, गुफा इत्यादि में दुर्ग बनाकर रहने लगे।

अपने-अपने अंगुलियों के परिमाण से माप कर दुर्ग बनाए गए। परिमाण को निश्चित करने के लिए प्रमाण निम्न प्रकार बनाया गया। जैसे अति सूक्ष्म परिमाण के लिए परमाणु त्रसेणु, धूलि तथा स्थूल परिमाण के लिए शाग, लीक, जूं और यव निश्चित किया गया। ग्यारह यव

मध्य में एक अंगुल छः अंगुलों का एक पद, दो पद का एक वितस्ति, दो वितस्ति में एक हाथ ब्रह्मतीर्थ, चार हाथ का एक लट्ठा 'धनुर्दण्ड' या नाडिका युग, दो हजार धनुर्दण्ड का एक गव्यूति एवं चार गव्यूति का एक योजन विद्वान पुरुषों ने माप निश्चय किया। फिर उन्होंने पुर, खेटक, द्रोणीमुख, शाखा नगर तीन प्रकार के खर्वटक एवं ग्राम तथा संघोष की रचना करके अलग-अलग आवास गृहों का निर्माण किया। जो चारों ओर से दीवारों और खाइयों से घिरा था। दो कोस लम्बा और उसके अष्टमांस चौड़े भाग को पुर कहते हैं उसके चारों तरफ जल भरा होने के कारण बांस का पुल बना होता है। पुर के आधे लक्षण वाले को खेटक, उसके १/४ (एक चौथाई) भाग को खर्वट तथा पुर के अष्टमांस परिमाण वाले को द्रोणी मुख कहते हैं। सभी प्रकार की सुविधाओं से परिपूर्ण जहाँ कि मन्त्री व सामन्त रहते हैं उसे शाखा नगर कहते हैं। जहां निम्न वर्ग के लोग तथा किसान खेती करने के योग्य भूमि के मध्य रहते हैं उन्हें ग्राम कहते हैं। किसी कार्य से जहां नगरों में लोग रहते हैं उन्हें वसाति कहते हैं। इस प्रकार लोगों ने नगरों का निर्माण करके शीत ताप से बचने के लिए अपने-अपने घरों का निर्माण किया।

त्रेता के प्रारम्भ में लोगों को ऐसी सिद्धि थी कि उनके

इच्छानुसार ही वर्षा होकर वर्षा का जल निम्नगामी होता था। वर्षा के जल ने ही रुककर स्रोत बनाकर फिर गहराई करते हुए नदी का रूप धारण कर लिया। वह जल पृथ्वी के साथ संयोग कर दोषरहित होकर ग्राम्य भेद एवं वन्य भेद से चौदह प्रकार के वृक्ष और गुल्म उत्पन्न हुए। वे सब समय फल पुष्प से लदे रहते थे। त्रेता के प्रारम्भ में सभी प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न हुईं। इन औषधियों से अकस्मात् राग एवं लोभ से युक्त प्रजागण अपना जीवन निर्वाह करते थे। फिर मनुष्य शक्ति के अनुसार नदी, खेत, पर्वत, वृक्ष, गुल्म और सभी प्रकार की औषधियों को ग्रहण करने लगे, इस प्रकार सभी औषधियाँ नष्ट हो गईं। अर्थात् पृथ्वी ने इसे उदरस्थ कर लिया। अतः प्रजा पुनः क्षुधातुर होकर ब्रह्मा की शरण में गई और विनय पूर्वक अपना कष्ट निवारण हेतु प्रार्थना की ब्रह्मा ने सुमेरु पर्वत को बछड़ा बनाकर पृथ्वी का दोहन किया। इस प्रकार गौ रूपी पृथ्वी को दोहन करने पर पुनः ग्राम्य व वन्य वृक्ष पुनः उत्पन्न हुए। तथा फल के पकने के पश्चात् सत्रह प्रकार की औषधियाँ जैसे—ब्रीहि, जौ, गेहूं, तिल, कोदों, प्रियंगु, राई, कोविदार, कचनार, मटर, उड़द, मूँग, मसूर, लोबिया कुलथी, अरहर एवं चना उत्पन्न हुए।

चौदह प्रकार की ग्राम्य और अरण्य औषधियाँ जैसे—

व्रीहि, जौ, गेहूं, अणु, तिल, प्रियंगु, कुकुनी, श्यामक, अलसी तिल तथा गवेधुक, कुलथी, मर्कटक (मक्का) वेणु, यव और चावल यज्ञ में प्रयोग की लाने लगीं। ये औष-धियां पुनः नहीं उपती थीं। अतः ब्रह्मा जी ने इन्हें मनुष्यों का आहार बनाने के लिए कर्म द्वारा सिद्धि होने वाली हस्त सिद्धि को उत्पन्न किया। तभी से हल द्वारा जोतकर बोई औषधियों की उत्पत्ति होने लगी। इस प्रकार मनुष्यों के जीविका का साधन उपलब्ध हो जाने पर ब्रह्मा जी ने स्वयं न्याय और गुणों के अनुसार मर्यादा (वर्ण और आश्रमों के धर्म आदि) का निरूपण किया।

कर्मनिष्ठ ब्राह्मणों के लिए प्रजापत्य स्थान, युद्ध से विमुख न होने वाले क्षत्रियों के लिए इन्द्र का स्थान, स्वधर्म परायण वैश्यों के लिए मारुत का स्थान तथा सेवाभावी शूद्रों के लिए गन्धर्व स्थान नियत किया। जो स्थान अट्ठासी हजार उर्ध्वरेता ऋषियों के लिए निश्चय हुआ वही स्थान गुरु गृह निवासी ब्राह्मणों के लिए भी निश्चय हुआ। जो स्थान सप्तर्षियों के लिए नियत हुआ, वही स्थान वनवासियों के लिए तथा गृहस्थ के लिए प्रजापत्य, और संन्यासियों के लिये अक्षय ब्रह्म पद तथा योगियों के लिए अमृतस्वरूप मोक्ष स्थान की कल्पना की गई।

———

यक्षानुशासन

मार्कण्डेय जी बोले—ब्रह्माजी ने स्थावर जंगम चराचर प्राणियों की उत्पत्ति करने के बाद संतोषजनक उनकी वृद्धि होते हुए नहीं देखी। तब उन्होंने अपने समान अन्य मानस पुत्रों भृगु, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, अंङ्गिरा, वशिष्ठ, मरीचि, दक्ष, अत्रि आदि की सृष्टि की। ये नौ ऋषि ब्रह्मा जी के मानस पुत्र कहे गए हैं। उसके बाद उन्होंने क्रोधात्मक रुद्र की उत्पत्ति की। उसके बाद संकल्प और धर्म को उत्पन्न किया। तथा पूर्व सृष्टि में ब्रह्मा से सनन्दन आदि को उत्पन्न किया। ये सभी भविष्य ज्ञाता वीतराग, मात्सर्य रहित, निरपेक्ष और समाधि युक्त होकर सृष्टि कार्य से दूर ही रहे। जिसके कारण ब्रह्माजी क्रोधित हुए। ब्रह्माजी के तीव्र क्रोध के कारण सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष उत्पन्न हुआ। जिसके शरीर का आधा भाग पुरुष का और आधा भाग नारी का था। फिर उस पुरुष को विभक्त होने का आदेश देकर ब्रह्मा जी अन्तर्धान हो गये।

ब्रह्मा जी के आदेशानुसार उस पुरुष ने अपने शरीर को स्त्री और पुरुष दो भागों में विभक्त किया। फिर पुरुष शरीर को सौम्य, असौम्य, शान्त, असित, सित आदि भेद से ग्यारह भागों में बांटा। ब्रह्मा जी ने अपने समान

उत्पन्न पुरुषों का नाम स्वायंभुव मनु रखा और उसे प्रजा-पालक के रूप में नियुक्त किया। और उस नारी भाव का शतरूपा नाम रखा। उस स्वायंभुव मनु ने शतरूपा को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया। इस मनु द्वारा शतरूपा के गर्भ से प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। तथा दो कन्यायें ऋद्धि और प्रसूति नाम की हुईं। स्वायंभुव मनु ने प्रसूति को दक्ष के लिए तथा ऋद्धि को प्रजापति के लिए अर्पित कर दिया।

प्रजापति ने ऋद्धि को ग्रहण कर लिया। उससे उनके यज्ञ और दक्षिणा नामक पुत्र और पुत्री उत्पन्न हुईं। फिर वे दोनों दाम्पत्य सूत्र में बंध गये। यज्ञ और दक्षिणा से बारह पुत्र उत्पन्न हुए। जो स्वायंभुव मन्वन्तर में (याम) नामक देवता कहे गये। तथा भास्वर आदि भी अनेक पुत्र उत्पन्न हुए।

दक्ष ने भी प्रसूति से चौबीस कन्यायें उत्पन्न कीं उन कन्याओं का नाम श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति इन तेरह दक्ष कन्याओं को धर्म ने अपनी पत्नी रूप में स्वीकार किया, शेष ग्यारह कन्यायें सती, संभूति, स्मृति प्रीति, क्षमा, ऊर्जा, संतति अनुसूया, स्वाहा और स्वधा, ख्याति नाम की प्रसिद्ध कन्यायें थीं। इनमें भृगु ने ख्याति को, शंकर ने

सती को, मरीचि ने सम्भूति को, अङ्गिरा ने स्मृति को, पुलस्त्य ने प्रीति को, पुलह ने क्षमा को, क्रतु ने सन्तति को इसी प्रकार वशिष्ठ, अत्रि, वह्नि और पितरगण ने शेष कन्याओं को ग्रहण किया। जिसमें श्रद्धा ने काम को, लक्ष्मी ने दर्प को, धृति ने नियम को, तुष्टि ने सन्तोष को, पुष्टि ने लोभ को, मेधा ने श्रुति को, क्रिया ने दण्ड नीति और विनय को, बुद्धि ने बोध को, लज्जा ने नियम को, वपु ने व्यवसाय को, शान्ति ने क्षेम को, सिद्धि ने सुख को, कीर्ति ने यश को इस प्रकार ये धर्म का सन्तानें हुईं। और काम से हर्ष नामक धर्म के पोते की उत्पत्ति हुई।

अधर्म की पत्नी हिंसा थी। उससे असत्य और असत्य से निकृति नामक कन्या से नरक और भय दो पुत्र उत्पन्न हुए। तथा माया व वेदना नामक दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। नरक ने माया से और भय ने वेदना से विवाह किया। माया के गर्भ से जीव संहारक मृत्यु को तथा वेदना ने दुःख को उत्पन्न किया। फिर मृत्यु के जरा, शोक, तृष्णा, क्रोध नामक पुत्र उत्पन्न हुए। दुःख से उत्पन्न ये सभी पुत्र अधर्मी हुए। मृत्यु ने अपनी दूसरी पत्नी अलक्ष्मी के गर्भ से चौदह पुत्र उत्पन्न किए। इन पुत्रों में दस दसों इन्द्रियों में और एक मन में स्थित होकर स्त्री अथवा पुरुष को अपने-अपने विषयों में संयुक्त करता है। राग क्रोध आदि

के साथ इन्द्रियों को आक्रान्त करके मनुष्यों को अधर्म आदि से योग कर देता है। उसके बाद मृत्यु का बारहवाँ पुत्र अहंकार में, तेरहवाँ पुत्र बुद्धि में स्थित होकर मनुष्यों और स्त्रियों के विनाश का कारण बनता है। चौदहवां दुःसह नामक पुत्र मनुष्य के घर में रहकर क्षुधातुर, अधोमुख नग्न, चीरधारी और कौवे के समान कर्कश शब्द करता है। दुःसह इतना विशाल कराल रूप में अपना मुंह फैलाये था। मानो वह पूरे विश्व को तत्काल भक्षण कर जाना चाहता हो।

दुःसह के भयंकर रूप को देखकर ब्रह्माजी बोले—हे दुःसह ! तुम संसार को भक्षण करने की इच्छा को त्याग कर क्रोध को छोड़ कर शान्त हो जाओ। इस तमोगुणी वृत्ति और रजोअंश का त्याग करो दुःसह बोला—हे पितामह ! मैं भूख प्यास से व्याकुल होकर अत्यन्त ही कृश और दुर्बल हो गया हूं। अतः मैं कैसे तृप्त होऊं। कैसे शक्तिशाली होऊं ? और मैं किसके आश्रय में सुखपूर्वक रहूं। कृपया बताने की कृपा करें।

ब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स ! तुम्हारा आश्रय स्थल मनुष्य का घर, अधर्मी पुरुष तुम्हारा बल और नित्यकर्मों की हानि तुम्हारे लिए पुष्टिदायक होगी। मकड़ी के जाले और फोड़े फुन्सी तुम्हारे वस्त्र होंगे। तथा तुम्हारा आहार

वह होगा जिस घाव में कीड़े पड़ गए हों और कुत्ते ने देख लिया हो। फूटे पात्र में रखा हुआ पदार्थ, मुख की फूँक से ठण्डा किया हुआ पदार्थ, उच्छिष्ट, कच्चा या संस्कार रहित या फटे आसन पर बैठकर या अतिथि को बिना भोजन कराये, या दक्षिण की ओर मुख करके, संध्या के समय नृत्य-गायन के समय जो पदार्थ खाया जाए। अथवा रजस्वला स्त्री द्वारा देखा हुआ या छुआ हुआ, किसी का भी जूठा या दोषयुक्त पका हुआ भोजन तुम्हारे खाने योग्य और पुष्टि करने योग्य होंगे। जो बिना स्नान किए अश्रद्धा पूर्वक हवन किया जाए या अवज्ञा पूर्वक दान दिया जाये बिना जल के स्पर्श किए जो वस्तु दी गई हो, जो अनर्थ के लिए दिया हो, भय से दिया गया हो, दुष्ट क्रोधित आर्त मनुष्यों द्वारा प्रदान किया गया हो तुम इस प्रकार का भोजन करके पुष्ट होवो। जो दूसरी बार ब्याहता स्त्री कर्म करे, अथवा कन्या की बिक्री कर उस धन से धर्म कार्य करें जो क्रिया असत्य शास्त्रों द्वारा सम्पादित किया जाए, जो असत्यता पूर्वक अध्ययन या अर्थोपार्जन किया जाये। यह सभी तुम्हारी कामना सिद्धि के लिए तुम्हें ही अर्पित करता हूं।

ब्रह्माजी ने पुनः कहा—हे यक्ष अब तुम अपनी सिद्धि का समय सुनो—तुम गर्भवती स्त्री के साथ समागम के

समय, संध्या एवं नित्यकर्मों के व्यतिक्रम के समय, तथा जब मिथ्या शास्त्रों द्वारा कहे कर्मों के करने से मनुष्य दोषयुक्त होते हैं। तब तुम उनका तिरस्कार करने में सामर्थ्यवान होवोगे। जहां पंक्तिभेद, वृथा पाक, पाक भेद एवं कलह वाले स्थान पर तुम्हारा निवास होगा। जहां गौ, अश्व आदि भूखे बंधे रहते हों, जो घर सुबह शाम साफ न किये जाते हों, नक्षत्र, ग्रह पीड़ा या त्रिविध उत्पातों को दिखाई देने पर जो शांति कर्म नहीं करते उन मनुष्यों को तुम घेरे रहोगे।

व्यर्थ के उपवास करने वाले, जुए एवं स्त्री आसक्त मनुष्य तुम्हारे उपकार करने वाले होंगे। जो ब्रह्मचर्य के बिना वेदपाठ करते हैं, जो मूर्ख होते हुए भी यज्ञ करते हैं, तपोवन में भी ग्राम जैसा व्यवहार करते हैं, जो चंचल चित्त एवं असंयतात्मा होकर रहते हैं तथा अपने कर्त्तव्यों से भ्रष्ट होकर पारलौकिक सुख की कामना करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों द्वारा तपोवन में किए जाने वाले कर्मों का जो फल होता है वह सब तुम्हारी पुष्टि के लिए होगा। जो मनुष्य वैश्वदेव के अन्त में तुम्हारा आश्रय लेकर यह तुम्हारा है कहकर र्जित बलि देते हैं परन्तु जो मनुष्य संस्कार युक्त पदार्थों का भोजन करते हैं जो बाहर भीतर से पवित्र हैं, लोभ रहित हैं, जिन्हें स्त्रियाँ अपने वश

में नहीं कर सकतीं, जहाँ देवता, पितर, हव्य एवं कव्य द्वारा पूजे जाते हैं, अतिथियों का सत्कार किया जाता है उन घरों को त्याग देना। जिस घर में बालक, वृद्ध, युवक, युवती, स्वजन आदि सदा मित्रवत रहते हैं जहाँ स्त्रियाँ घर में ही अनुरक्त रहती हैं घर से बाहर जाने की इच्छा नहीं रखतीं, लज्जावान होती हैं तथा जिस घर में मनुष्य अपनी अवस्था एवं वैभव के अनुसार ही शयन करते हैं, जिस घर के मनुष्य करुणा युक्त सत्कार्यों में लगे रहते हैं जहाँ के मनुष्य गुरु, वृद्ध एवं ब्राह्मणों के बैठ जाने पर आसन ग्रहण करते हैं, जिस घर के द्वार वृक्ष व गुल्म लताओं से आच्छादित हों, जहाँ कटु वचनों का प्रयोग न होता हो, उन घरों को तुम त्याग दो।

जो पुरुष देव, पितर, मनुष्य और अतिथि को पहले भोजन कराके शेष अन्न का भक्षण करता हो ? जो सत्यवादी, क्षमावान, अहिंसक, दूसरों को कष्ट न देने वाला, ईर्ष्या एवं द्वेष से रहित हो उसे तुम्हें त्याग देना चाहिए। जो स्त्री पतिव्रता हो दुराचारिणियों का साथ न रखती हो, परिवार तथा पति के खाना खाने के बाद खाती हो, उस स्त्री को तुम्हें त्याग देना चाहिए। जो ब्राह्मण सदा ही भजन, अध्ययन, अभ्यास, दान आदि कार्यों को करते हैं तथा यज्ञ, अध्यापन एवं दान आदि के प्रतिग्रह से

जीविकोपार्जन करते हैं उन्हें भी त्याग दो। उन क्षत्रियों को जो कि दान, अध्ययन, यज्ञ में तत्पर रहते हुए शस्त्र जीविका से प्राण रक्षा करते हुए मात्र वेतन ग्रहण करते हैं उन्हें भी तुम त्याग दो। जो वैश्य दान अध्ययन एवं यज्ञ में तत्पर रहते हुए पशुपालन, कृषि कार्य व व्यापार द्वारा जीविकोपार्जन करते हैं उन्हें भी तुम्हें त्याग देना चाहिए। हे यक्ष ! जो शूद्र दान, यज्ञ एवं ब्राह्मण की सेवा में तत्पर रहते हैं ब्राह्मण आदि की सेवा वृत्ति से निर्वाह करते हैं उन्हें भी त्याग दो।

हे यक्ष ! जिस घर में मनुष्य श्रुति, स्मृति से सम्पूर्ण जीवन निर्वाह कर रहा हो और उसकी स्त्री भी उसका अनुसरण करती हो, जिस घर में पुत्र अपने देवता, पितर और गुरु की पूजा करता हो, स्त्रियाँ पति सेवा करती हों, वहाँ अलक्ष्मी का भय क्यों होगा ? तीनों संध्याओं के समय जो घर लीपा जाए, या जल छिड़ककर पवित्र किया जाए, सुगन्धित पुष्पों द्वारा देवताओं की बलि दी जाए, जिस घर में सूर्योदय होने तक कोई न सोता हो, जो घर सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित रहता हो, जिस घर में अग्नि एवं जल सदा ही रहता हो, वह घर लक्ष्मी का निवास स्थान है जहाँ चंदन, वीणा, दर्पण, मधु घृत और ताम्र-पात्र हों उस घर को तुम्हें त्याग देना चाहिए।

जिस घर में कांटेदार वृक्ष, निष्पाववल्लरी, पुनः ब्याही गई स्त्री, बांबी हो तथा जिस घर में पांच पुरुष, तीन स्त्री, तीन गौ, अंधेरा, काष्ठ और अग्नि हो वह तुम्हारा निवास स्थान होगा। जिस घर में एक बकरी, दो स्त्री, तीन गाय, पाँच भैंस, छः घोड़े, सात हाथी हों उस घर को तुम शीघ्र ही शोषित करो। जिस घर में कुदाल, दाँती, संडूकड़ी, थाली आदि वस्तुएँ इधर-उधर बिखरी पड़ी हों वह घर तुम्हारे रहने योग्य है, जहाँ स्त्रियाँ ओखली या मूसल पर बैठकर या आँगन में गूलर के नीचे बैठकर, या कूड़े के ढेर पर अथवा घर के पीछे बातें करती हैं वे सब तुम्हारा उपकार करती हैं। जिस घर में स्त्री, थाली, ढकना, कलछी से आग देती है, कच्चे या पक्के अन्न का अनादर करती हैं जिस घर में मृत पदार्थ या मनुष्य की हड्डी दिन रात रहे वह राक्षसों का स्थान होता है, सभी प्रकार के दुःख व्याप्त होते हैं। जब मनुष्य सपिण्ड या समानोदक बन्धुओं का पिण्डदान या जल बिना दिए खाते हैं उस समय तुम उनका सेवन करो।

जिस घर में पद्म और महापद्म विद्यमान हों, स्त्रियाँ मोदक खाती हों, जहाँ बैल एवं ऐरावत हों, जहाँ शस्त्र रहित देवता सशस्त्र देवताओं के समान पूजे जाते हैं, जिन घरों, नगरों अथवा जनपदों में सदा ही महोत्सव होते हों

वहाँ तुम्हें नहीं जाना चाहिए। जो मनुष्य सूप की वायु, कलश के जल, वस्त्र के विचोड़े जल तथा पादाग्र से स्पर्श जल से स्नान करते हैं उन्हीं के पास जाग्रो। जो मनुष्य देशाचार, समय, जाति, धर्म, जप, हवन, मंगलकार्य, देव पूजन, शौच तथा लोकाचार का पालन करते हैं उनका साथ तुम कभी मत करना। इस प्रकार ब्रह्माजी दुःसह को आदेश करके अंतर्धान हो गए।

दौःसह की उत्पत्ति वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—दुःसह की पत्नी का नाम निर्माष्टि था। वह यम की पत्नी थी। यम की पत्नी जब ऋतुमती हुई थी तब उसका गर्भ चाण्डाल के दर्शन से स्थिर हुआ था और उस गर्भ से निर्माष्टि की उत्पत्ति हुई थी। निर्माष्टि के गर्भ से सोलह सन्तानें हुईं। जिनमें आठ पुत्र एवं आठ कन्यायें थीं। आठ पुत्रों का नाम दन्ताकृष्टि, तथोक्ति, परिवर्त, अंगध्रुक, शकुनि, गण्डप्रान्तरति, गर्भहा, सस्यहा था तथा आठ कन्याओं का नाम नियोजिका, विरोधिनी, स्वयं हारकरी, भ्रामणी, ऋतु हारिका, स्मृति-हरी, बीजहरी और विद्वेषिणी थी। यह लोक के लिए महान भयंकर थीं। अब सभी पुत्रों एवं कन्याओं के कर्म

तथा उसकी शान्ति के उपाय निम्न प्रकार हैं।

दन्ताकृष्टि शीघ्र उत्पन्न हुए बालकों के दाँतों को किटकिटाता है और दुःसह भी वहाँ आ जाता है। इसकी शान्ति के लिए बालक के सोते समय उसके दाँतों एवं बिस्तर पर सरसों डालनी चाहिए अथवा औषधि जल से स्नान कराना चाहिए, श्रेष्ठ शास्त्रों जैसे दुर्गा सप्तशती, रामरक्षा, शिव कवच आदि का पाठ करना चाहिए। अथवा ऊँट या गेंडे की हड्डी का यन्त्र बनाकर कपड़े में बाँधकर बालक के कंठ में बाँधे, या रेशमी वस्त्र पहनावे।

दूसरा पुत्र तथोक्ति 'यही हो' कहता हो। मनुष्यों के शुभ एवं अशुभ कार्यों में लगा रहता है। यह शत् प्रतिशत सत्य है। इसकी शान्ति के लिए पण्डितों को सदा ही शुभ कारण एवं मंगलकारी वाणी का ही उच्चारण करना चाहिये, भगवान जनार्दन का कीर्तन करना चाहिए, चरा-चर गुरु, ब्रह्मा अथवा जिसका जो कुल देवता हो उसे उसी का स्मरण करना चाहिये।

परिवर्तक नामक तीसरा पुत्र एक स्त्री का गर्भ दूसरे स्त्री के गर्भ में पहुंचाता हुआ परिवर्तन करता रहता है। तथा मनुष्यों पर भी वह अपना प्रभाव डालकर कुछ कहना चाहता है परन्तु वह कुछ अन्य बात ही कह देता है। इसकी शान्ति हेतु घर में सरसों बिखेरना चाहिए या

ज्ञानीजन रक्षोघ्न मंत्र का जाप करके रक्षा करें।

चौथा पुत्र अंगध्रुक मनुष्यों के अंगों में वायु के समान स्पंदन और लोम हर्षण उत्पन्न करके शुभाशुभ का आचरण करता है। इसको शान्ति हेतु अपने अङ्गों को कुशा से पीटना चाहिए।

पाँचवां पुत्र शकुनि काक आदि पक्षी या कुत्ता अथवा गीदड़ के शरीर में प्रवेश करके शुभ अशुभ को व्यक्त करता है। इसके द्वारा यदि किसी कार्य को करने के पहले अशुभ लक्षण दिखाई दे तो उस कार्य को त्याग देना चाहिये। यदि शुभ लक्षण प्रकट करे तो उस कार्य को शीघ्र कर लेना चाहिए।

छठवाँ पुत्र गण्डप्रान्तरति आधे मुहूर्त गण्डान्त में रहता है। यह सभी मंगलमय कार्यों को व मनिन्यता को नष्ट कर देता है। इसके उपद्रवों का शमन ब्राह्मणों के आशीर्वाद से 'देवस्तुति' मूल नक्षत्र की शांति करने से अथवा गोमूत्र या श्वेत सरसों से स्नान, नक्षत्र तथा ग्रह का पूजन, धर्मोपनिषध का श्रवण एवं शास्त्रों के दर्शन एवं जन्म का तिरस्कार करने से होता है।

सातवाँ पुत्र गर्भहा स्त्रियों के गर्भ को नष्ट कर देता है। इसके शमन के लिए सदा ही पवित्र रहना चाहिये,

उत्तम मंत्रों को लिखकर माला आदि को धारण कर पवित्र घर में निवास करना चाहिये।

आठवां पुत्र सस्यहा सम्पूर्ण शस्त्र (धान्य) को नष्ट करता है अतः इसके शमनार्थ खेत में पुराना जूता रखना चाहिये। खेत में बाईं ओर से चाण्डाल को प्रवेश कराना चाहिए। खेत के बाहर बलि देनी चाहिए तथा सोमाम्बु मंत्र का पाठ करना चाहिए। जनेऊ बायें कंधे पर रखकर खेत में घूमना चाहिए।

इसी प्रकार दुःसह की प्रथम पुत्री नियोजिका मनुष्यों के हृदय में पराई स्त्री और पराये धन के अपहरण हेतु प्रेरित करती है। इसके शमनार्थ पवित्र ग्रंथों का पाठ तथा क्रोध लोभ आदि दोषों का त्याग करना चाहिए तथा किसी के कटु वचन बोलने अथवा मारने पर भी क्रोध नहीं करना चाहिए। यह सोच लेना चाहिए कि नियोजिका ही मुझे इन दुर्गुणों में प्रेरित कर रही है।

विरोधिनी नाम की दूसरी पुत्री अत्यन्त प्रेम युक्त दम्पत्ति में, सुहृद, माता पिता, भाई, पुत्र आदि में विरोध व झगड़ा कराती है। इसके शमन के लिए बलि कर्म करना चाहिये। तथा सभी प्रकार के विवादों का परित्याग कर शास्त्रानुसार आचरण करते हुए पवित्र कर्मों को करना चाहिए।

स्वयं हारिका नाम की तीसरी पुत्री घर के एवं खलिहानों के अन्न को तथा गो स्तनों से दूध को, द्रव्य आदि समृद्धि एवं ऋद्धि को नष्ट कर देती है। यही नहीं बल्कि वह रसोई घर से अधपका अन्न अथवा भण्डारागार में स्थित अन्न अथवा परोसा हुआ अन्न चुरा ले जाती है या भोजन करते हुए व्यक्तियों के साथ बैठकर खाती है। जिस घर में पवित्र कर्म नहीं किये जाते वहां ऋद्धि सिद्धि को भी हरण कर लेती है। दूध देने वाले जानवरों तथा स्त्रियों के स्तन के दूध को, दधि से घी, तिल से तेल, मदिरालय से मदिरा, फूलों से पराग, कपास से सूत्र आदि को चुरा लेती है। इसके शमन के लिए एक कृत्रिम स्त्री और दो कृत्रिम मोरों का निर्माण करके या चित्र बना करके उनको सदा ही रक्षा करनी चाहिए कि वे नष्ट न हों अथवा धूमिल न हों। अग्नि देवता का हवन करना चाहिए और धूप, भस्म आदि से दूधादि के पात्रों पर लगाकर सभी वस्तुओं की सफाई करनी चाहिये तथा स्त्री अपने स्तनों पर मले। ऐसा करने से सभी वस्तुओं की रक्षा होती है।

चौथी कन्या भ्रामणी एक स्थान पर रहने वाले मनुष्यों के हृदय में उद्वेग उत्पन्न करती है। इसके शमन के लिए वह मनुष्य जहां बैठता है सोता है वहाँ सफ़ेद सरसों बिखेरना चाहिये। तथा जब मनुष्य की बुद्धि पाप कर्मों को

और आकर्षित हो तब उस मनुष्य को उसी दुष्टता की प्रेरणा समझकर समाधि लगाकर भूमि सूक्त का निरन्तर जप करना चाहिये।

पाँचवीं कन्या ऋतुमति स्त्रियों के रजोधर्म को नष्ट करती है। इसके शमन के लिये विद्वान पण्डितों को तीर्थों पर, पर्वतों की गुफाओं में मन्दिरों का निर्माण कराना चाहिए। एवं नदियों के संगम स्थल पर स्नान करना चाहिये। मन्त्रज्ञ इन सब कर्मों को प्रातःकाल करें, पूजा का कार्य धूप आदि उपहारों से करना चाहिये तथा योग्य चिकित्सक की श्रेष्ठ औषधियों से उसकी चिकित्सा करनी चाहिए।

छठवीं कन्या स्मृति हारिका मनुष्यों की स्मरण शक्ति को हरण करती है। इसके उपद्रव को शान्त करने के लिये उत्तम व रमणीय मनोहर एकान्त स्थान पर निवास करना चाहिये।

सातवीं कन्या बीजापहारिणी महा भयंकर है। यह स्त्री पुरुष की रति को नष्ट करती है। इसकी शान्ति के लिए पवित्र अन्न का भोजन एवं पवित्र जल से स्नान करना चाहिये। यह निष्ठुर एवं दुराचारिणी कन्या भीषण भय उत्पन्न करने वाली है अतः इसके शमन हेतु ब्राह्मणों द्वारा शुभ कर्मों को करना चाहिये।

आठवीं कन्या विद्वेषणी संसार को बहुत अधिक भय-भीत करती है तथा पुरुष स्त्री में द्वेष उत्पन्न करती है। इसके शमन के लिये मधु, दूध, घृत एवं तिल की आहुति देकर मित्रविदा नामक यज्ञ को करना चाहिये।

फिर मार्कण्डेय जी क्रौष्टुकि से बोले—हे विप्र! दुःसह के उन सोलहों पुत्र पुत्रियों के अड़तीस सन्तानें हुईं जो निम्न प्रकार हैं।

दन्ताकृष्टि की दो कन्यायें थीं। जिसका नाम विजल्पा और कलहा है। जिनमें विजल्पा अवज्ञा करने वाली, मिथ्या एवं कटु वचन बोलने वाली है। इसके शमन के लिए उसी का ध्यान करना चाहिये। तथा कलहा नाम की दूसरी कन्या घरों में कलह पैदा करके परिवार को नष्ट कर देती है। इसके शांति हेतु दूब के अंकुर, मधु, घृत और दूध की बलि देकर अग्नि में होम कर देना चाहिये तथा मित्रविन्दा नामक मंत्र का जाप करना चाहिये। बालकों के शान्ति हेतु मातृका पूजन के साथ भूतों की भी पूजा करनी चाहिये। फिर विद्या, तप, संयम, यम, कृषि, वाणिज्य में आई बाधा को, पाप दुष्ट कर्मों एवं महापातक के कारण उत्पन्न कष्टों को, विवाह आदि शुभ कार्यों में उत्पन्न विघ्न बाधाओं को, व अन्य किसी भी समय किसी भी कार्य में उपस्थित होने वाली विघ्न बाधाओं को

शान्ति प्रदान करें, इस प्रकार का पाठ करना चाहिये।

तथोक्ति का पुत्र कालजिह्वा नामक पुत्र हुआ। यह जिह्वा पर बैठकर सज्जन पुरुषों के प्रति कटु भाषण कराती है। परिवर्त के दो पुत्र विरूप और विकृत हुए। ये दोनों पुत्र वृक्ष, पर्वत, खाई, महल के परकोटे पर तथा समुद्र के किनारे रहते हैं। इन स्थानों के पास में गर्भिणी स्त्री को नहीं जाना चाहिए। क्योंकि ये गर्भिणी स्त्री के गर्भ को परिवर्तित कर देते हैं। अङ्गध्रुक का पिशुन नामक पुत्र हुआ। यह बाज, कौआ, कबूतर, गिद्ध और उल्लू में आश्रय लेकर रहता है तथा चंचलेन्द्रिय तथा मदान्ध पुरुषों की हड्डी में प्रवेश कर उसकी मज्जा को खाता है। गण्ड-प्रान्तरिक के छः पुत्र उत्पन्न हुए। ये स्त्रियों के रज में निम्न समयों में रहते हैं। आर्तव के समय के पहले चार दिन, ग्यारहवें दिन, तेरहवें दिन, श्राद्ध के दिन, दान कर्म के दिन, पर्वों के दिन रहते हैं अतः इन दिनों स्त्री सम्भोग नहीं करना चाहिए। गर्भ हन्ता के विघ्न नामक पुत्र और मोहनी नामक कन्या हुई। ये दोनों ही गर्भ में प्रविष्ट हो जाते हैं। विघ्न गर्भ को खा जाता है तथा मोहनी द्वारा मोह पैदा करने से गर्भ में सर्प, मेंढक, कछुए, बिच्छू व अन्य जन्तु गण पैदा हो जाते हैं। ये दोनों उस गर्भिणी स्त्री के गर्भ को नष्ट करते हैं। जो गर्भिणी छः मास तक

मांस खाती है तथा रात में वृक्ष के नीचे, तिराहे, चौराहे पर सोती है या श्मशान में रहती है, नग्न रहती है अथवा रात में रोती है।

शस्यहन्त का शुद्धक नामक पुत्र हुआ। यह धान्य को हानि पहुंचाता है। अशुभ दिनों एवं नक्षत्रों में खेत बोने से उस खेत के फसल में शुद्धक प्रविष्ट कर फसल को नष्ट कर देता है। इसलिए शुभ दिनों में ही चन्द्रमा का दर्शन करके प्रसन्नचित्त होकर खेत में बीज बोना चाहिए।

पुत्री नियोजिका की प्रबोदिका नामक चार कन्याएँ थीं। ये अत्यन्त मदमत्त यौवन सम्पन्न स्त्री पुरुषों में प्रवेश होकर उन्हें नष्ट करने हेतु भीषण रूप से प्रेरित करती हैं। विरोधियों के तीन पुत्र चोदक, ग्राहक और तमाच्छादक हुए। जहाँ ओखल या मूसल दीपक तेल से दूषित किये जाते हैं अथवा लाँघी जाती है अथवा स्त्रियाँ उस पर बैठती हैं या आसन, सूप तथा दराँती को पैरों से हटाती हैं, घर को बिना लीपे पोते, बिना पूजन किए रहा जाता है या कलछी में आग लेकर अन्य स्थानों पर ले जाया जाता है वहाँ ये रहकर मनुष्यों को बुरे कामों के लिए प्रेरणा देते हैं। चोदक नामक पुत्र स्त्री पुरुष के जीभ पर निवास करके झूठ सच कहलवाता है। ग्राहक नामक पुत्र चुगलखोरी व नीच कर्मों को कराता है तथा कानों में निवास करके बुरी बातों को

ग्रहण कराता है। तीसरा तमाच्छादक मनुष्यों के मन को वश में करके उनमें क्रोध उत्पन्न करता है। इसी प्रकार स्वयंहारी के तीन पुत्र सर्वहारी, अर्द्धहारी तथा वीर्यहारी हैं। भ्रामणी को काकजंघा नामक पुत्र हुआ। काकजंघा सायंकाल में मैथुन करने वाले मनुष्यों पर आक्रमण करता है। ऋतुहारिणी की तीन कन्यायें कुक्षहरा, व्यंजन हारिका और जातहारिणी हुई। जातहारिणी के पौत्रों से सैकड़ों हजार डायनें तथा आठ चाण्डाल योनियाँ उत्पन्न हुईं। जातहारिणी के पुत्र का नाम प्रचण्ड था। बीजहारिणी ने वातरूपा और अरूपा नाम की दो कन्याओं को जन्म दिया। वात रूप निषेध काल में मैथुन करने पर जिसके वीर्य को गिरा देते हैं उस स्त्री या पुरुष में वातज शुक्र व्याधि उत्पन्न कर देती है। और जो मनुष्य बिना स्नान तथा भोजन किये मैथुन करता है या किसी अन्य योनि में संभोग करता है। अरूपा उसे शीघ्र ही निर्वीर्य कर देती है। विद्वेषणी नामक कन्या के दो पुत्र उत्पन्न हुए। जो चुगुलखोर, चंचल, अपवित्र, जल सेवी, दुष्ट एवं द्वेषी स्त्री पुरुष हैं। उन्हीं पर रहते हैं तथा उन्हें निर्वीर्य भी कर देते हैं। एक मनुष्य को दुराचारी पुत्र के रूप में बदलता है दूसरा लोगों की मित्रता व गुणों को नष्ट करता है। इस प्रकार

दुःसह के इन दुष्ट पापधर्मी सन्तानों से सम्पूर्ण विश्व त्रासित है।

रुद्रोत्पत्ति

मार्कण्डेय जी रुद्र की उत्पत्ति के विषय में बताते हुए बोले—ब्रह्मा जी के आठ पुत्र, पत्नी और अन्य सभी पुत्र कल्प के आदि काल में उनके आत्म तुल्य सुत का चिन्तन करने से उन्हीं के समान हुए। उन आठ पुत्रों में नील लोहित वर्ण का एक पुत्र ब्रह्मा जी की गोद में जोर-जोर से रो रहा था। ब्रह्माजी ने उससे रोने का कारण पूछा। पुत्र ने ब्रह्माजी से अपना नामकरण करने के लिए कहा। तब ब्रह्माजी ने उसे रोने के कारण उसका नाम रुद्र रखा। इस नामकरण के बाद भी वह बालक सात बार रोया। तब ब्रह्मजी ने उसके और नाम भव, शर्व, ईशान, पशु-पति, भीम, उग्र और महादेव रखा। इस प्रकार उस पुत्र के कुल आठ नाम हो गये। फिर ब्रह्माजी ने आठों नामों को स्थान, पत्नी और पुत्र दिये। सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, दीक्षित, ब्राह्मण और सोम ये उनके शरीर तथा सुवर्चला, उमा, विकेशी, स्वधा, स्वाहा, दिशा, दीक्षा, रोहिणी ये उनकी पत्नियाँ और शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग,

मनोजव, स्कन्द, सर्ग, संतान और बुद्ध ये रुद्रादि के क्रमशः आठ पुत्र हैं।

रुद्र ने दक्ष सुता सती को प्राप्त किया था। दक्ष के प्रकोप के कारण सती ने अपना शरीर अग्नि में होम कर दिया। सती ने अपना शरीर त्यागने से पूर्व शाप दिया। जहाँ पर शिवजी का अपमान होता हो वहाँ ब्राह्मणों को नहीं रुकना चाहिए। यदि कोई ब्राह्मण महेश्वर से विरोध करने वाले के यहाँ रुकते हैं, वे पाप से नष्ट, दुष्ट हृदय वाले, वेद से बहिर्मुख पाखण्डी और नरकगामी होकर ये सभी कलियुग में दरिद्र और शूद्रों का जप कराने वाले होंगे। इस प्रकार का शाप देकर सती ने हिमालयराज की पत्नी मेनका के गर्भ से पुत्री के रूप में जन्म लिया। सती का भाई समुद्र का मित्र मैनाक था। इस जन्म में सती का नाम पार्वती पड़ा। पार्वती से भगवान भव ने विवाह किया।

भृगु की पत्नी ख्याति से धाता-विधाता नाम के दो देव पुत्र उत्पन्न हुए। स्वयंभू नारायण का विवाह लक्ष्मी जी के साथ हुआ। महात्मा मेरू की आयाति और नियति नाम की दो कन्याएँ थीं। ये दोनों कन्यायें भृगु के पुत्र धाता व विधाता के साथ ब्याही गईं। उन दोनों कन्याओं से एक-एक पुत्र आयाति का प्राण और नियति का मृकण्डु

हुआ। मृकण्डु की पत्नी मनस्विनी से मैं (मार्कण्डेय) तथा वेदशिरा नामक पुत्र उत्पन्न हुए और प्राण की पत्नी धूम्रवती से द्युतिमान और अजरा नाम की दो पुत्रियाँ हुईं। इन दोनों के अनेक पुत्र तथा पौत्र हुए।

मरीचि की पत्नी सम्भूति से पौर्णमास उत्पन्न हुआ। पौर्णमास के विरजा और पर्वत नाम के दो महात्मा पुत्र उत्पन्न हुए। अंगिरा की स्त्री स्मृति से चार पुत्रियाँ सिनिवाली, कुहू, राका, अनुमति नाम की हुईं। अत्रि की पत्नी अनसूया ने सोम, दुर्वासा और दत्तात्रेय निष्पाप पुत्रों को उत्पन्न किया। पुलस्त्य की पत्नी प्रीति ने दत्त नामक पुत्र को जन्म दिया। यह दत्त पूर्व जन्म में अगस्त्य नाम से प्रसिद्ध थे। प्रजापति पुलह की स्त्री क्षमा के गर्भ से कर्दम, अर्ववीर और सहिष्णु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ऋतु की पत्नी सन्नति ने साठ हजार उर्ध्वरेता बालखिल्यों को जन्म दिया। वशिष्ठ की पत्नी ऊर्जा से रजोगात्र, उर्ध्व, बाहु, सबल, अनघ, सुतपा और शुक्ल ये सात पुत्र उत्पन्न हुए और ये सातों पुत्र सप्तर्षि कहलाये। ब्रह्मा जी के बड़े पुत्र अग्नि के स्वाहा के गर्भ से तीन महाबली व प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुए। तीनों पुत्रों के नाम पावक, पवमान और शुचि हैं और ये तीनों ही सदा जल पीते रहते हैं। फिर इनके पैंतालीस पुत्र उत्पन्न हुए। इनके पितर अग्निष्वात्ता

बर्हिषद, अग्निष्वात्त, साग्नि हैं। स्वधा ने पितरों से दो ब्रह्म-वादिनी और योगिनी कन्यायें मैना और धारिणी नाम की उत्पन्न कीं।

स्वायम्भुव मन्वन्तर वर्णन

क्रौष्टुकि ब्राह्मण ने मार्कण्डेय जी से फिर स्वायम्भुव मन्वन्तर के प्रमाण, देवता, देवर्षि तथा जो राजा व देवेन्द्र हुए उन सबके विषय में जानने की इच्छा प्रकट की।

मार्कण्डेय जी बोले—मन्वन्तरों की संख्या इकहत्तर से कुछ अधिक है। तीन करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार मानवी वर्ष का एक मन्वन्तर होता है। यह मन्वन्तर प्रमाण आधिक्य रहित है। एक मन्वन्तर में आठ सौ हजार दिव्य वर्ष कहे गए हैं। बावन हजार वर्ष एक मन्वन्तर में व्यतीत हो जाते हैं। पहले स्वायम्भुव मनु हुए फिर स्वारोचिष, औत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष छः मनु व्यतीत हो चुके हैं। इस समय वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। पाँच सावर्ण रौच्य और भौत्य ये मन्वन्तर भविष्य में होंगे। जिनका वर्णन मन्वन्तरों के वर्णन में होगा।

जो देवता, ऋषि, देवेन्द्र तथा पितरों की उत्पत्ति व उनकी संतानें इस प्रकार हैं। स्वायंभुव के दस पुत्र उन्हीं

के समान हुए। उन्होंने इस सप्तद्वीप, पर्वत, समुद्र और खानों से सम्पन्न पृथ्वी को दो वर्षों में विभाजित किया था। पहले भी स्वायंभुव मन्वन्तर में कृतयुग तथा त्रेतायुग में प्रियव्रत के पुत्रों (स्वायंभुव के पौत्रों) ने भी ऐसा ही किया। प्रियव्रत की प्रजावती नाम की सौभाग्यशालिनी कन्या के गर्भ से दस पुत्र और दो कन्यायें उत्पन्न हुईं। दोनों कन्याओं का नाम सम्राट और कुक्षि था। तथा दसों पुत्रों का नाम अग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान, ज्योतिष्मान, द्युतिमान्, भव्य, सवन; मेधाग्नि, बाहु और अग्निमित्र हुए। जिनमें तीनों छोटे पुत्र योग परायण हुए। इन लोगों की राज पाट के प्रति रुचि नहीं थी। शेष सात पुत्र सातों द्वीप के राजा हुए। इन लोगों ने भी धर्मानुसार प्रजा का पालन किया। पिता प्रियव्रत ने जम्बू द्वीप का राजा अग्निध्र को, प्लक्ष द्वीप का राजा मेधातिथि को, शाल्मलि द्वीप में वपुष्मान को, कुश द्वीप में ज्योतिष्मान को, क्रौंच द्वीप में द्युतिमान को, शाक द्वीप में भव्य को, पुष्कर द्वीप में सवन को राजा बनाया। पुष्कराधिपति के दो पुत्र मेधावी और धातकी हुए। सवन ने पुष्कर द्वीप को दो भागों में बाँट कर दोनों पुत्रों को एक-एक हिस्से का राजा बनाया।

भव्य के सात पुत्र जलद, कुमार, मणीवक, कुशोत्तर,

मेधावी तथा महाद्रुम हुए। भव्य ने भी शाक द्वीप को सात भागों में विभाजित करके सातों पुत्रों को बाँट दिया। राजा द्युतिमान के भी सात पुत्र कुशल, मनुग, उष्ण, प्राकार, अर्थंकारक, मुनि और दुन्दुभि हुए। द्युतिमान ने भी क्रौंच द्वीप को सात भागों में बाँटकर सातों पुत्रों को बाँट दिया। ज्योतिष्मान के भी सात पुत्र उद्भिद्, वैष्णव, सुरथ, लम्बन, धृतिमान, प्राकार और कपिल हुए। ज्योतिष्मान ने भी कुश द्वीप को सात भागों में बाँट कर सातों पुत्रों को बाँट दिया। वपुष्मान के भी सात पुत्र श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, मानस, विद्युत, मानस और केतुमान हुए। वपुष्मान ने भी शाल्मलिद्वीप को सात भागों में बाँटकर सातों पुत्रों को बाँट दिया। मेधातिथि के भी सात पुत्र शाकभव, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव हुए। इन्होंने भी प्लक्ष द्वीप को सात भागों में बाँटकर सातों पुत्रों में बाँट दिया। उपरोक्त सभी पुत्रों के नाम से वर्ष प्रसिद्ध हुए। प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच तथा शाक इन पाँच द्वीपों में वर्णाश्रम धर्म सदा ही विद्यमान रहता है तथा यहाँ स्वभावतः हिंसा नहीं होती।

हिमालय के अतिरिक्त किम्पुरुषादि वर्ष में सुख आयु, रूप, बल और धर्म सदा ही बना रहता है। जम्बू द्वीप के राजा अग्नीध्र के नौ पुत्र हुए जिनके नाम नाभि, किम्पुरुष

हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्य, कुरू, भद्राश्व और केतुमाल हुए तथा इनके नामानुसार ही वर्षों की भी स्थिति हुई। हिमालय वर्ष को छोड़कर जो किम्पुरुष आदि हैं उनके स्वभावानुसार बिना परिश्रम किए ही सुख मिलता है। उसमें विपर्यय, जरा, मृत्यु, भय, धर्म-अधर्म, उत्तम-मध्यम व अधम आदि का कोई स्थान नहीं है। चारों युगों की विभिन्न अवस्था तथा ऋतु विभाग भी नहीं होता।

नाभि का पुत्र ऋषभ हुआ। ऋषभ के पुत्र भरत हुए, ऋषभ ने भरत को राजसिंहासनारूढ़ करके स्वयं संन्यासाश्रम ग्रहण किया। इन्होंने महर्षि पुलह के आश्रम में रहकर कठिन तप किया। और ऋषभ के पिता नाभि ने हिम नामक दक्षिण वर्ष भरत को दिया। इसलिए हमारे इस पवित्र देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। राजा भरत का सुमति नाम का बड़ा धार्मिक पुत्र हुआ। राजा भरत ने भी सुमति को राज-पाट सौंपकर वन को गमन किया। इस प्रकार स्वायंभुव मनु के पुत्र व पौत्रों ने सात द्वीप वाली पृथ्वी का उपभोग किया।

जम्बू द्वीप का वर्णन

क्रौष्टुकि ने मार्कण्डेय जी से पुनः प्रश्न किया—हे ब्रह्मन् ! द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियाँ कितनी हैं तथा महाभूत, लोकालोक का प्रमाण, चंद्रमा और सूर्य के व्यास का परिमाण व उनकी गति का प्रकार क्या है।

मार्कण्डेय जी बोले—हे द्विज ! इस संपूर्ण पृथ्वी का विस्तार पचास करोड़ योजन है। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर ये सात द्वीप क्रमशः एक से दूसरा दुगना विस्तार वाला है। लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दही, दूध और समुद्र के जल द्वारा दुगने परिमाण में घिरे हुए हैं।

जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन का है। हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, नील, श्वेत और शृंगी ये सात पर्वत हैं। इनके मध्य में दो महान् पर्वत हैं। जिनका विस्तार दो लाख योजन है। उनके दक्षिण और उत्तर में दो-दो पर्वत हैं। और ये सभी दो हजार योजन ऊँचे व उतने ही विस्तार वाले हैं। समुद्र में छः पर्वत हैं। यह उत्तर-दक्षिण की दिशा में नीची तथा मध्य में ऊँची है। तीन वर्ष उत्तर में तीन वर्ष दक्षिण में तथा इन दोनों के मध्य में इलावृत वर्ष अर्द्धचन्द्राकार के रूप में स्थित है।

उसके पूर्व में भद्राश्व तथा पश्चिम में केतुमाल है तथा इलावृत के मध्य में ही मेरु नामक सोने का पर्वत है। यह महागिरि चौरासी हजार योजन ऊँचा, सोलह हजार योजन पृथ्वी के अन्दर तथा सोलह हजार योजन विस्तार वाला ही है। इसकी चोटी सकोराकार बत्तीस हजार योजन चौड़ी विस्तार वाली है। यह पूर्व दिशा में श्वेत वर्ण के, दक्षिण दिशा में पीत वर्ण के, पश्चिम दिशा में नील वर्ण के और उत्तर दिशा में लाल वर्ण का होता है। और इसी क्रम से इस पर्वत के ऊपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं। इसके ऊपर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर के दिशा क्रम से ही इन्द्र आदि लोकपालों का तथा मध्य में चौदह हजार योजन विस्तार वाली ब्रह्माजी की सभा है।

इस पर्वत के नीचे पूर्व आदि दिशाओं में दस हजार योजन ऊँचे विस्तार वाले मन्दार, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व चार विष्कम्भ पर्वत हैं। इनके ऊपर चार ऊँचे वृक्ष क्रमशः कदम्ब, जामुन, पीपल और बरगद के वृक्ष केतु के समान शोभायमान हैं। ये पर्वत ग्यारह हजार योजन परिमाण लिए हैं। इसके पूर्व दिशा में जठर और देवकूट नामक दो पर्वत हैं। नील और निषध परस्पर जुड़े हुए हैं। मेरु के पश्चिम भाग में निषध और पारियात्र पर्वत हैं। ये दोनों भी पूर्व दिशा में नील एवं निषध तक फैले हुए

हैं। दक्षिण दिशा में कैलाश और हिमालय नामक विशाल पर्वत हैं ये पर्वत पूर्व एवं पश्चिम में फैले हुए समुद्र तक फैले हुए हैं। उत्तर दिशा में शृंगवान और जारुधि हैं। ये भी दक्षिण दिशा की भाँति समुद्र तक फैले हैं। ये आठों पर्वत मर्यादा पर्वत भी कहे जाते हैं।

हिमालय, हेमकूट आदि चार पर्वत आपस में मिलकर नौ हजार योजन विस्तार वाले हैं। ये सभी पर्वत मेरु पर्वत के चारों ओर तथा इलावृत के मध्य में हैं। गन्धमादन पर्वत की ऊँची-ऊँची चोटियों से हाथी के समान बड़े-बड़े जामुन के फल गिरते हैं। उन जामुन के रस के बहने से नदी उत्पन्न हो गई। जिसे जम्बू नदी कहा जाने लगा और इसी से जम्बूनद उत्पन्न हुआ। यह नदी सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करके पुनः उसी जामुन के वृक्ष के नीचे से होकर बहती है। वहाँ के निवासी मनुष्य आदि सभी प्राणी उसी का जल पीते हैं। भद्राश्व में अश्वशिरा (अश्व के शिर वाले) भारत में कूर्माकृति में विष्णु केतुमाल में वाराह तथा उत्तर में मत्स्य के स्वरूप में भगवान नारायण प्रतिष्ठित हैं। इन चारों पर्वतों में नक्षत्र और ऋषि स्थित हैं तथा ग्रहों का फल शुभ व अशुभ होता है।

———

जम्बूद्वीप के वन पर्वत आदि

मार्कण्डेय जी ने आगे कहा—मन्दराचल आदि चारों पर्वतों में चार वन एवं सरोवर हैं। पूर्व दिशा के पर्वतों में चैत्ररथ वन दक्षिण दिशा के पर्वत पर नन्दन वन, पश्चिम दिशा के पर्वत पर वैभ्राज वन, तथा उत्तर दिशा के पर्वत पर सावित्र वन है। सुमेरु पर्वत के पूर्व दिशा में अरुणोद, दक्षिण दिशा में मानस, पश्चिम दिशा में शीतोद तथा उत्तर दिशा में महाभद्र नामक सरोवर है।

पश्चिम दिशा के बाहर सुरक्षा, शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिंगल, पिंजर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मधुअंजन, कुक्कुट, कृष्ण, पाण्डुर, सहस्र, शिखर, शृंगवान पारियात्र ये सभी पर्वत स्थित हैं। उत्तर दिशा में शंखकूट, वृषभ, हंसनाभ, कपिलेन्द्र, सानुमान, नील पर्वत, स्वर्णशृंग, शातशृंग, पुष्पक, मेघ पर्वत, विरजाक्ष, वराहाद्रि, मयूर तथा जारुधि हैं।

ये सभी पर्वत सुन्दर वन तथा स्वच्छ पवित्र जल वाले तालाबों से युक्त हैं। यहाँ पुण्यात्मा पुरुष ही उत्पन्न होते हैं। ये सभी स्थान स्वर्ग के गुणों से भी अधिक गुणवान भौम स्वर्ग के नाम से प्रसिद्ध हैं। यहाँ अपूर्व पाप तथा पुण्य संचित नहीं होते। यहाँ विद्याधर, राक्षस, किन्नर,

उरग यक्ष, देवता तथा गंधर्वों का सुन्दर मनोरम निवास स्थल है। यहाँ की शीतल मन्द सुगन्ध हवायें सभी ऋतुओं में सुख प्रदान करने वाली हैं। यहाँ के निवासियों में द्वेष-भाव, ईर्ष्या-भाव, वैमनस्य-भाव आदि बुरे विचार नहीं हैं। इसी कारण इस पृथ्वी को पद्म चतुष्पत्र कहा गया है। दक्षिण में जो भारतवर्ष है वह कर्म भूमि है। यह भारत-वर्ष पाप-पुण्य प्रधान देश है। यहाँ सभी कुछ उपलब्ध है। कर्मभूमि होने के कारण भारत में मनुष्य स्वर्ग, अपवर्ग व नरक को भी प्राप्त कर सकता है।

गंगावतरण

मार्कण्डेय जी ने गंगावतरण के सम्बन्ध में बताते हुए कहा कि त्रिपथगामिनी गंगा भगवान नारायण से ध्रुवाधार पद से निकलकर सुधा योनिचन्द्र मंडल में प्रवेश करके वहाँ सूर्य की किरणों से संयुक्त होकर अत्यन्त पवित्र होकर सुमेरु पर्वत पर गिरी हैं। फिर वहाँ से मेरुकूट पर्वत पर गिर कर चार धाराओं में विभक्त होकर गंगा मंदराचल पर्वत पर समान भाव से गिरीं। गंगा की वे चारों धाराएँ पर्वत शिलाओं को तोड़ती हुई आगे बढ़ीं। जो धारा पूर्व दिशा में चैत्ररथ वन में गई उसे सीता कहते हैं। वह सीता

नामक गंगा चैत्ररथ वन को जल से प्लावित करते हुए वरुणोदक सरोवर में गई। फिर वहाँ से वह शीतान्त पर्वत एवं अन्य पर्वत का अतिक्रमण करके पृथ्वी पर उतर कर भद्राश्व वर्ष में होकर समुद्र में गई।

सुमेरु पर्वत के दक्षिण दिशा में गंगा की धारा गन्धमादन पर्वत पर गिरकर अलकनन्दा नाम से प्रसिद्ध हुई। उससे बाद सुमेरु के समीप में स्थित देवताओं को प्रसन्न करने वाले नन्दन वन में जाकर अत्यन्त वेग से मानसरोवर को जल से परिपूर्ण करती है। फिर वहाँ से भी सभी पर्वतों को पार करती हुई हिमालय में गिरती है। वहाँ भगवान शंकर ने सिर पर धारण कर लिया, छोड़ा नहीं। तब उसके बाद महाराज भगीरथ ने भगवान शंकर की उपासना व आराधना करके भगवान शिव को प्रसन्न किया। तब भगवान शिव ने गंगा को छोड़ा। वहाँ से गंगा सात धाराओं में विभक्त होकर दक्षिण समुद्र में प्रविष्ट हुई। उसमें तीन धाव पूरब की ओर बहती हुई समुद्र में गिरी और एक धारा भागीरथ के रथ के पीछे-पीछे चलकर दक्षिण समुद्र में प्रविष्ट हुई।

चौथी धारा सुपार्श्व व सुमेरु पहाड़ के पैरों से होती हुई सविता वन में गई। जहाँ वह भद्रसोमा नाम से प्रसिद्ध हुई। वह सविता वन को पवित्र करती हुई महाभद्र

सरोवर को जल से परिपूर्ण करके शंखकूट पहाड़ में गई। वहाँ से वृषभादि पहाड़ होकर उत्तर कुरु प्रदेश को जल से प्लावित करती हुई महासागर में जा मिली। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! मैंने आपको यह गंगावतरण का वृतान्त सुनाया।

भारतवर्ष विभाग

क्रौष्टुकि ने मार्कण्डेय जी से कहा—हे मुने ! आपने भारतवर्ष को कर्म भूमि बताया है और कहा है कि इसी स्थान से स्वर्ग, मोक्ष, मध्यादशा व अन्तदशा आदि सभी दशाओं को प्राप्त किया जाता है। कहीं अन्य स्थान पर मनुष्य कर्मानुष्ठान की ओर प्रेरित नहीं होता। अतः कृपया आप भारतवर्ष के विभाग-विभागों की संख्या, प्रदेश और पहाड़ आदि के विषय में सविस्तार कहने की कृपा करें।

मार्कण्डेय जी बोले—हे विप्र श्रेष्ठ ! भारत के कुल नौ भेद हैं। वे सभी समुद्र के द्वारा विभक्त तथा परस्पर अगम्य हैं। सागर से घिरे हुए इन्दु द्वीप, कशेरूमान, ताम्रवर्ण, गर्भास्तमान, नाग द्वीप, सौम्य, गांधर्व, तथा वारूण तथा नौवां द्वीप भारत है। यह द्वीप दक्षिण और उत्तर में एक हजार योजन तक फैला है। इसके पूरब में किरात, पश्चिम में यवन लोग रहते हैं। इसके मध्य में

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं। जो कि यज्ञ, अध्ययन, अध्यापन, वाणिज्य आदि कर्मों को करके अपने सद्व्यवहार से स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति एवं पाप पुण्यों की प्राप्ति करते हैं। महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र नामक कुल सात पहाड़ भारत वर्ष में हैं। इनके पास में हजारों अन्य पहाड़ शृंखलायें भी हैं। इन पहाड़ शृंखलाओं में कोलाहल, वैभ्राज, मन्दार, दर्दुर, वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि रोजन, पाण्डुर, पुष्प, दुर्जयन्त, रैवतक अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्ता, कूटशैल, कृतस्मर, श्री पहाड़ और कोर पहाड़ ये अत्यन्त ऊँचे विस्तार वाले सुन्दर मनोहारी हैं तथा अनेका-नेक सुन्दर रमणीय प्राकृतिक दृश्यों से युक्त पहाड़ी चोटियां भी हैं।

इन पर्वतों से मिले हुए जनपद को आर्य और म्लेच्छ नाम से दो विभाग किए गए हैं। इन जनपदों के निवासी जिन-जिन श्रेष्ठ नदियों का जल पीते हैं उनके नाम इस प्रकार हैं। गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, यमुना, शतद्रू, वितस्ता (व्यास), इरावती, कुहू, गोमती, पुण्य को प्रदान करने वाली (बहूदा) दृषद्वती, विपाशा, देविका, ऋक्षु, निश्चीरा, गण्डकी और कौशिकी ये सभी हिमालय से निकलती हैं। वेदस्मृति, वेदवती, वृतघ्नी, सिन्धु, वेणा,

सान्दनी, सदानीरा, मही, पारा, चर्मणवती, नूपी, विदिशा, वेत्रवती, क्षिप्रा, अवर्णी ये सभी पारियात्र पर्वत से निकलती हैं। शोण, महानद, नर्मदा, सुरथाद्रि से निकली हैं। मंदाकिनी और दशार्णानदी चित्रकूट पर्वत से निकली हैं। चित्रोत्पला तमसा, करमोद, पिशाचिका, पिप्पल श्रेणी, विपाशा, बंजुला, सुमेरुजा, शुक्तिमती, सकुली, त्रिदिवा, ऋमु ये सभी वेग से बहने वाली नदियाँ ऋक्षपाद पर्वत से निकली हैं। शिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषिधावती, वेण्वा, वैतरिणी, सिनीवाली कुमुद्वती, करतोया, महागौरी, दुर्गा और अन्त शिवा ये नदियाँ विंध्यपाद से निकली हैं। गोदावरी, भगीरथी, कृष्णा, वेण्या, तुंगभद्रा, सुप्रयोगा, बाह्या, कावेरी ये नदियाँ सह्य पर्वत से निकली हैं। कृतमाल, ताम्रपर्णी, पुष्पजा और उत्पलावती ये नदियाँ मलय पर्वत से निकली हैं। पितृकुल्या, सोमकुल्या, ऋषिकुल्या, इक्षुका, त्रिदिवा, लाँगूलिनी, वंशकरा ये नदियाँ महेन्द्र पर्वत से निकली हैं। ऋषिकुल्या, कुमारी मन्दगा, मन्दवाहिनी, कुशा, पलाशिनी ये सभी नदियाँ शुक्तिमान पर्वत से निकलकर समुद्र में गिरती हैं। ये सभी पापहारिणी नदियाँ विश्व माता के रूप में पूज्य हैं जैसे—गंगा माता, सरयू माता आदि।

इन नदियों के अतिरिक्त अन्य सहस्रों नदियाँ हैं।

जिनमें कुछ वर्षा ऋतु में बहने वाली हैं और बहुत-सी सभी ऋतुओं में बहने वाली नदियाँ हैं। मत्स्य अश्वकूट कुल्य कुन्तल काशी कोशल अर्बुद कलिंग मलक और वृक ये सभी मध्य प्रदेश में हैं। सह्य पर्वत से उत्तर दिशा में निकलने वाली गोदावरी का उद्गम स्थल संपूर्ण जगत में अत्यधिक मनोरम स्थल है। महात्मा भार्गव की सुन्दर गोवर्द्धन नामक नगरी तथा बाहलाक वाटधान आभीर कालतोद्रक ये सभी अपरान्त देश हैं। शूद्र पह्लव चर्मखाण्डिक गाँधार यवनसिंधु सौवीरीमद्रक शतद्रुज कलित्र पारद हारमूषिक माठर बहुभद्र कैकेय दशमालिक ये सभी उपनिवेश हैं। इन उपनिवेशों में क्षत्रिय वैश्य और शूद्र निवास करते हैं। काम्बोज दरद बर्बर अंगलौकिक चीन खार तुषार पहलव। इन क्षेत्रों में उत्पन्न मनुष्यों को बहिर्देशज कहा गया है। आत्रेय भारद्वाज पुष्कल कशेरुक लम्पाक शूलकार चुलिक जागुड औषध और अनिभद्र आदि ये जातियाँ किरात जाति के भेद हैं। तामस हंसमार्ग काश्मीर तुमण शूलिका कुहका ऊर्ज दार्व ये सभी देश के उत्तर में हैं।

अआरक मुद्गरक अन्तर्गिरि बहिर्गिरि प्लवंग अंगेय मालद मलवर्तिका उत्तर ब्रह्म प्रविजय भार्गवमेव मल्लक प्राग्ज्योतिष भद्र विदेह ताम्रलिप्तक मल्ल मगध और गोमेदा ये सभी जनपद पूर्व दिशा में हैं। पाण्ड्य केरल

चोल कुन्त्य शैलूष मूषिक कुमार वना वासक महाराष्ट्र माहिषिक कलिंग आभोर चैशिक आरण्य शबर पुलिन्द विन्ध्य मालेय वैदर्भ दण्डक पौरिक मौलिक अश्मक भोगवर्द्धन नैषिक कुन्तल आन्ध्र उद्भिर और वनदारक ये सभी देश दक्षिण दिशा के हैं। सूर्पारक कालिबल दुर्ग आभीकट पुलीन्द सुमीन रूपय स्वापद कुरूमिल ये सभी कंठाक्षर देश कहलाते हैं। (कास्कर लोह जंघा वाले राजभद्र) तोशल कोशल त्रिपुर और विदिशा तुषार और तुम्बुरु ये परस्पर देश है तथा नर्मदा के देश नासिक्याव हैं। भोल्कच्छ माहेय सारस्वत काश्मीर सुराष्ट्र आवन्त अर्बुद ये सभी देश पाश्चात्य देश कहे गए हैं।

सरज करूष केरल उत्कल उत्तमर्ण दशार्ण भाज्य किष्किन्धा सहित तुम्बर तुम्बुल पटवी नैषध अन्नज तुष्ट, कार वीरहोत्र और अवन्ति ये सभी देश विंध्य पर्वत के पीछे हैं। नोहार हंसमार्ग कुरू गुर्गण खस कुन्त प्रावरण ऊर्ण दार्ण्व कृत्रक त्रिगर्त्त गालव और तामस किरात ये सभी पर्वतीय प्रदेश कहलाते हैं। इसी भारतवर्ष में सतयुग, त्रेता द्वापर और कलियुग चारों युग विद्यमान होते हैं। इस भारत वर्ष को दक्षिण और पूर्व में व पश्चिम में समुद्र ने घेरा हुआ है। उत्तर में हिमालय पर्वत ने धनुष के ज्या (रस्सी) के समान इसे घेरा हुआ है। यह भारतवर्ष सभी का बीज

स्वरूप है। इसमें ब्रह्मत्व इन्द्रत्व देवत्व तथा मनुष्यत्व सभी गुण विद्यमान हैं। यही भारतवर्ष मृग पशु अप्सराओं वृश्चिक आदि स्थावर योनियों में शुभ और अशुभ कार्यों को जन्म देने वाला है। हे विप्र ! सभी लोकों में यह भारतवर्ष ही कर्म भूमि है। देवगण भी यह सदा इच्छा रखते हैं कि यदि हम देवत्व से च्युत होकर मनुष्यत्व को प्राप्त करें तो भारत भूमि में ही जन्म ग्रहण करें। क्योंकि यहां जिन कार्यों को करने में मनुष्य समर्थ हैं उनमें देवगण या राक्षस समर्थ नहीं।

कूर्म संस्थान

क्रौष्टुकि ने पुनः मार्कण्डेयजी से प्रार्थना की। बोले—हे मुने ! कृपया आप हमें यह बताने की कृपा करें कि श्री मन्नारायण किस प्रकार कूर्म रूप में स्थित रहे, उनका मुख किधर था, पैर किधर थे तथा उनके द्वारा मनुष्यों के शुभाशुभ को किस प्रकार प्रकट किया जाता है ?

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे विप्र श्रेष्ठ ! श्रीमन्न-नारायण भगवान नौ भागों में विभक्त भारतवर्ष में कूर्म रूप में स्थित हुए पूर्वाभिमुख होकर स्थित रहते हैं। संपूर्ण नक्षत्र समूह भी नौ भागों में विभक्त होकर उनके चारों

ओर स्थित होते हैं। वेद मन्त्र माण्डव्य शाल्व नीप, शक उज्जिहान घोष संख्य खस सारस्वत मत्स्य शूरसेन माथुर धर्मारण्य ज्योतिषिक गौरग्रीव गुडाश्मक वैदेहक पाञ्चाल संकेत कंक मारुत कालकोटि पाखण्ड पारियात्र के निवासी कापिंजल बाह्यकुरु उदुम्बर और गजाह्व ये सभी कूर्म के स्थल में हैं।

दक्षिण कौरुष ऋषिक ताप साश्रम ऋषभ सिंहल व कांची में निवास करने वाले तथा त्रिलंगा कञ्जरदरी कच्छ और ताम्रपर्णी के निवासी ये सभी कूर्म के दक्षिण कुक्षि में रहते हैं तथा उत्तराफाल्गुनी हस्त और चित्रा ये तीनों नक्षत्र भी दक्षिण कुक्षि में ही रहते हैं। बाह्यपाद काम्बोज पहलव बड़वामुख सिन्धु सौवीर आनर्त वनितामुख द्रावण सार्गिग शूद्र कर्ण प्राधेय बर्बर किरात पारद पाण्ड्य पारशवः कल धूर्तक हैमगिरिक सिंधुकालक वैरत सौराष्ट्र दरद द्राविड़ महार्णव ये सभी देश कूर्म के दूसरे दक्षिण पैर में स्थित हैं तथा स्वाति विशाखा अनुराधा ये तीनों नक्षत्र दक्षिण पैर में स्थित हैं तथा स्वाति विशाखा अनुराधा ये तीनों नक्षत्र दक्षिण पैर में ही स्थित होकर वहाँ के निवासियों को शुभाशुभ लक्षण की सूचना देते हैं।

मणिमेघ क्षुराद्रि खंजय अस्त्रगिरि अपरांतिक हैहय शांतिका विप्रशस्तन कोंकण पञ्चनद वमन अवर ताक्षुर

अंगतक शर्कर शालमवेश्नक गुरुघर फाल्गुनक वेणुमत्य फल्गुलुक घोर गुरुह कल और एक आँख वाले वाजिकेश दीर्घग्रीव सचूलिक अश्वकेश ये सभी निवासी कूर्म के पूंछ में स्थित होते हैं। ज्येष्ठा मूल और पूर्वाषाढ़ ये तीनों नक्षत्र कूर्म के पूंछ में ही स्थित होकर यहाँ के निवासियों को शुभाशुभ की सूचना देते हैं। माण्डव्य चंडखार अश्मक लवद कुशान्त लडह स्त्रीवाह्य नलिक नृसिंह वेणुमति नालावस्था धर्मबद्ध उलूक उरुकर्म यहाँ के सभी निवासी कूर्म के वामपाद में स्थित हैं तथा उत्तराषाढ़ श्रवण और धनिष्ठा ये तीनों नक्षत्र भी वाम पैर में स्थित होकर यहाँ के मनुष्यों को शुभाशुभ लक्षणों को इंगित करते हैं।

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे विप्रवर! यहाँ के निवासियों को यहाँ उदित नक्षत्र ही दुःख-सुख की अनुभूति प्रदान करते हैं। जिस नक्षत्र का जो स्वामी है उसके क्रोधित होने के कारण ही उस देश के प्राणियों को भय व दुःख होता है और जब वही उत्तम स्थान में होता है तो वह देश के मनुष्यों के लिए कल्याणकारी सिद्ध होता है। ग्रहों द्वारा कष्ट की प्राप्ति असमय में होकर श्रीहीन कर देता है। इसी तरह से उत्तम ग्रह कल्याणी होकर श्रीयुक्त करते हैं जब ग्रह विरुद्ध हो जाते हैं तब

पुण्यवान व्यक्ति भी द्रव्य गोष्ठ भृत्य हित पुत्र और स्त्रियों सहित कष्ट को प्राप्त होता है। दिशा देश जन नृप पुत्र सुख और दुःख आदि को मनुष्य ग्रहों के शुभ-अशुभ होने के कारण ही भोगता है। नक्षत्र और ग्रहों से पीड़ित व्यक्ति को उसके शमनार्थ उपाय करना चाहिए। आकाश से जो सुर-असुर पतित होते हैं इनके पतित होने से शुभाशुभ की प्राप्ति होती है। इसलिए ये लोकावाद को हानि न करें। इन ग्रहों के शान्त्यर्थ अद्रोह उपवास शान्ति स्तोत्र का पाठ देवादि का वन्दन जप होम दान स्नान आदि का आचरण और क्रोध आदि का त्याग करना चाहिए। सभी प्राणियों के साथ मैत्री भाव करना चाहिए, ईर्ष्या और द्वेष से रहित होना चाहिए। ग्रहों की पूजा करनी चाहिए।

हे विप्रवर! यह कूर्म रूप भगवान नारायण और अचिन्त्य का रूप है। इस कूर्म में ही प्रत्येक नक्षत्र से आश्रित संपूर्ण देव तथा उनके मध्य में अग्नि पृथ्वी चंद्रमा मेष आदि तीन राशियां स्थित हैं मुख में मिथुन आदि दो राशियां पूर्व दक्षिण पाद में कर्क और सिंह राशि कुक्षि में सिंह कन्या और तुला तीन राशयाँ, दक्षिण पश्चिम के चरण में तुला और वृश्चिक दोनों राशियाँ पृष्ठ भाग में वृश्चिक और धनु राशि वायव्य चरण में धनु

मकर आदि तीन राशियाँ उत्तर कुक्षि में कुम्भ और मीन राशियाँ स्थित हैं। पूर्वोत्तर पाद में मीन और मेष स्थित हैं। इस प्रकार कूर्म में देश के नक्षत्रों में ग्रह और ग्रह में राशि स्थित हैं। अतः ग्रह और नक्षत्र से पीड़ित होने पर देश में ही पीड़ा है ऐसा समझना चाहिए। और देशादि के पीड़ा उपस्थित होने पर स्नान करके दान और होम आदि को विधिवत् करना चाहिए। इस प्रकार विष्णु के चरण रूप में ब्रह्मा जी ग्रहों के मध्य में स्थित हैं और वे ही नारायण अचिन्त्य आत्मा जगत के कारण और स्वामी हैं। इस प्रकार हे विप्र श्रेष्ठ ! मैंने आपको कूर्म वृतान्त विस्तार पूर्वक सुनाया।

भद्राश्वादि वर्ष वर्णन

मार्कण्डेय जी ने क्रौष्टुक से कहा—हे विप्रश्रेष्ठ ! इस भारतवर्ष में ही सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग चारों युग, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण तथा चारों युगों के अनुसार ही क्रमशः चार सौ, तीन सौ, दो सौ, और एक सौ की आयु के होते हैं। इस भारतवर्ष के पूर्व में स्थित देवकूट नामक पहाड़ के पूर्व में जो देश स्थित हैं उसे ही भद्राश्व कहते हैं।

भद्राश्व वर्ष में श्वेत पर्ण नील और शैवाल नामक श्रेष्ठ पहाड़ तथा कौरञ्ज, पर्णशालाग्र पहाड़ ये कुल पांच पहाड़ हैं। कुमुद, संकाश, शुद्धसानु, सुमंगला आदि हजारों जनपद इस वर्ष में स्थित हैं। सीता, शंखवती, भद्रा, चक्रा-वर्त आदि बहुत-सी नदियाँ शीतल जल वाली प्रवाहित है। यहां के निवासी पवित्र शंख व स्वर्ण के समान आभायुक्त तथा सत्संग सहित पवित्रता पूर्वक दो हजार वर्ष तक जीवन धारण करते हैं। यहाँ के निवासियों में कोई उत्तम या अधम न होकर सभी समान दृष्टि समान विचार धारा वाले व स्वभाव से ही तितिक्षा आदि आठ गुणों से युक्त होते हैं। इस भद्राश्व वर्ष में चतुर्भुजी भगवान जनार्दन हयग्रीव स्वरूप में शिर, हृदय, मेढ़, चरण हाथ और तीनों नयनों से युक्त होकर अवस्थित रहते हैं।

सुमेरु के पश्चिम में केतुमाल वर्ष में विशाल कम्बल कृष्ण जयन्त हरि पहाड़ विशोक और वर्धमान ये कुल सात पहाड़ है। इसके अतिरिक्त और भी अन्य हजारों पहाड़ जन समूहों से युक्त हैं।

कुरुदेश में सभी ऋतुओं के फल-पुष्प आदि से युक्त सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने वाले तथा मधुर सरस फलों से युक्त वृक्ष हैं। यहां सदा ही मन्द सुगन्ध सुखदायी हवा बहती है। देवलोक से पतित देवतागण यहाँ

मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण करते हैं। तथा इनका जीवन साढ़े चौदह हजार वर्ष का होता है। यहाँ चन्द्रकान्त तथा सूर्यकान्त नामक दो श्रेष्ठ पहाड़ हैं। इन पहाड़ों के मध्य में भद्रसोमा नामक पवित्र एवं स्वच्छ जल वाली महानदी प्रवाहित होती है। इस प्रकार अन्य हजारों नदियाँ बहती हैं। इस प्रकार यह कुरुदेश है।

किम्पुरुषादि वर्णन

मार्कण्डेय जी ने कहा—किम्पुरुष वर्ष के निवासियों की आयु एक हजार वर्ष की होती है। सभी प्राणी स्वस्थ एवं शोक मुक्त होते हैं। इस देश में एक महान प्लक्ष का वृक्ष है। इस वृक्ष के रस पान करने से पुरुष सदा ही नौजवान बने रहते हैं तथा स्त्रियाँ भी सदा रमणीय नवयुवती बनी रहती हैं। किम्पुरुष वर्ष के पीछे हरिवर्ष नामक वर्ष (देश) है। वहाँ के निवासी चाँदी के समान वर्ण के तथा सौम्य गुण वाले होते हैं। इस हरिवर्ष में देवलोक से पतित हुए देवगण मनुष्य योनि में उत्पन्न होते हैं और ये लोग वहाँ इक्षुरस का पान करते हैं। यहाँ कोई वृद्ध होकर कष्ट नहीं भोगता। अतः वे जब तक भी जीवित रहते हैं तब तक स्वस्थ एवं यौवन पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं।

यहां के निवासी न्यग्रोध के फलों को ही खाकर रति क्रिया में चतुर सुन्दर दुर्गन्ध रहित व जरावस्था से मुक्त होते हैं। इसके उत्तर में हिरण्मय् नामक वर्ष है। यहां श्वेत कमल पुष्प के समान हिरण्यवती नामक नदी है। यहां के निवासी तेजस्वी, महाशक्ति शाली विशालकाय बलिष्ठ धनी व प्रियदर्शी होते हैं। इस प्रकार यह किम्पुरुषादि का वर्णन हुआ।

स्वरोचिष मन्वन्तर

क्रौष्टुकि मार्कण्डेयजी से बोले—हे मुने ! आपने पहले स्वायम्भुव नामक मन्वन्तर का वर्णन किया। अब कृपया उसके पश्चात के अन्य मन्वन्तरों उसके अधिपतियों उनके वंशानुगत राजा गण एवं ऋषियों के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक सुनावें।

मार्कण्डेय जी बोले—अब मैं आपको स्वरोचिष मन्वन्तर के विषय में सुना रहा हूं। एकाग्रमन होकर सुनें।

वरुणा नदी के किनारे प्राचीन समय में दोनों अश्विनी कुमारों से भी सुन्दर मधुर व सौम्य प्रकृति वाले सदाचारी सच्चरित्र रात्रि में आने वाले व्यक्तियों के आश्रय स्वरूप अरुणास्पद नामक नगर में एक ब्राह्मण रहता था। उसकी

हार्दिक इच्छा एक अत्यन्त ही सुन्दर मनोहारी वन-उपवनों से युक्त नाना प्रकार के नगरों से परिपूर्ण पृथ्वी को देखने की थी।

एक दिन इस ब्राह्मण के यहाँ एक अतिथि आया जो महान औषधि विशेषज्ञ होने के साथ-साथ मन्त्रज्ञ भी था। ब्राह्मण ने अतिथि के साथ सद्भाव पूर्ण वार्ता में नाना प्रकार के प्रश्न किये। अतिथि ने अनेकों सुन्दर देश नगर नदी वन पहाड़ तथा पवित्र स्थलों आदि का वर्णन किया। तब ब्राह्मण ने अतिथि से कहा—हे महानुभाव ! न आप नौजवान दिखते हैं और न वृद्ध ही। आपने इतने थोड़े समय में इतना सारा देशाटन कैसे कर लिया ? क्या आप को थकान की अनुभूति नहीं हुई, आपका शरीर क्लान्त नहीं हुआ।

अतिथि बोला—हे विप्रवर मन्त्रौषधियों के बल पर मैं आधे दिन में एक हजार योजन जा सकता हूं।

ब्राह्मण बोला—हे प्रभो ! मुझे सम्पूर्ण पृथ्वी को देखने की इच्छा हो रही है। अतः आप मन्त्रौषधियों के प्रभाव से सम्पूर्ण विश्व का भ्रमण करावें। उस अतिथि ने एक विशिष्ट प्रकार के लेप को ब्राह्मण के चरणों में लगा कर कुछ मंत्रों का उच्चारण किया। पैर में लेप लगने के बाद ब्राह्मण यह अनुभव करने लगा कि अब मैं आधा दिन में ही

एक हजार योजन की यात्रा कर वापस भी आ सकता हूं। इस प्रकार विचार कर वह हिमालय स्थित झरनों व वन उपवनों के देखने हेतु चल दिया। वह ब्राह्मण बिना क्लान्त हुए हिमालय के पीछे पहुंच कर पृथ्वी पर विचरण करने लगा। उसने सुन्दर जल प्रपात झरने मयूरों के शब्द पपीहा कोयल टिटहरी आदि पक्षियों के मधुर कलरव को सुनकर तथा हरे भरे पत्तों तथा सुन्दर व सुगन्धित पुष्पों से युक्त वृक्षों को देखा।

ब्राह्मण ने हिमालय का दर्शन कर मन में विचार किया कि अब समय अधिक हो गया है, घर वापस चलें। फिर कल आकर देखेंगे। परन्तु वह जिस गति से यहाँ आया था अब वह उस गति से वापस जाने में समर्थ नहीं था। अज्ञानवश बर्फ से अपने पैर के लेप को धुल जाने से उसे बड़ा कष्ट हो रहा था अब मैं इस कठिन पहाड़ी रास्ते को कैसे पार करूँगा। मुझे घर पहुंचना अत्यावश्यक है। नहीं तो मेरे अग्निहोत्र आदि नैमित्तिक क्रियाओं में व्यव-धान पड़ेगा। जो उचित नहीं है। और इस हिमालय की छटा तो इतनी सुन्दर है कि यदि इसे सौ साल तक भी देखा जाय तो हृदय को सन्तुष्टि नहीं होगी। यदि कोई धर्मात्मा पुरुष मिल जाय तो शायद वह शीघ्रता से घर

पहुंचने का मार्ग सुझा सके। इस प्रकार चिन्तन करते हुए वह ब्राह्मण हिमालय में घूमता रहा।

एक परमरूपवती, सौभाग्यशालिनी, कोमलाङ्गी वरुथिनी नामक अप्सरा ने उस ब्राह्मण को देखा और मोहित हो गई। उस ब्राह्मण के प्रति वह अत्यन्त आसक्त होकर विचार करने लगी। यह सुन्दर आकृति व सुष्ठ बलिष्ठ शरीर वाला कौन पुरुष है। यदि यह मुझे अपना ले तो मेरा जन्म धन्य हो जाएगा। मैंने असंख्य देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व और पन्नगों को देखा। परन्तु ऐसा पुरुष कहीं नहीं देखा। यदि यह पुरुष मुझे अपनी बाहों में भर ले तो तीनों लोकों में भी कोई स्त्री मेरी जैसी धन्य नहीं होगी। इस प्रकार कामातुर अप्सरा वरुथिनी उस ब्राह्मण के पास गई और ब्राह्मण के प्रति अपना अगाध प्रेम प्रकट करने लगी। एवं अपने अंग-प्रत्यङ्गों को उत्तेजक रूप में ब्राह्मण को दिखाने लगी।

ब्राह्मण उस वरुथिनी के कामुक हाव भाव से आकर्षित तो नहीं हुआ। फिर भी पास जाकर बोला—हे सुभगे! तुम कौन हो और यहाँ क्या कर रही हो? किसकी पत्नी हो? मैं दारुणास्पद नगर का ब्राह्मण हूं। मैं अपने पैर में दिव्य औषधि का प्रलेप करके उसके प्रभाव से यहाँ पहुंचा था। अब वह प्रलेप इस बर्फ में घुल गया है। जिससे मेरी

वह अप्रतिहत गति लुप्त हो गई है। जिस किसी उपाय से सूर्यास्त से पूर्व अपने घर पहुंचकर नित्य नैमित्तिक कार्यों को कर सकूँ। वह उपाय बताओ।

बरूथिनी बोली—मैं मौलिवंशीय कन्या हूं एवं बरूथिनी नाम की अप्सरा हूं। इस सुन्दरतम हिमालय की चोटियों पर घूमती रहती हूं। आपके दुर्लभ दर्शन को पाकर मैं काम से व्याकुल हो गई हूं तीव्र काम पिपासा जागृत होने के कारण मैं आपके वशीभूत हूं। अतः आप मुझे जो निर्देश करें। उसे मैं करने को तैयार हूं।

ब्राह्मण बोला—हे सुभगे ! तुम यदि मेरा प्रिय चाहती हो तो कोई ऐसा उपाय करो। जिससे मैं अपने घर शीघ्र पहुंच जाऊँ। क्योंकि घर से बाहर परदेश में रहने से नित्य-नैमित्तिक कर्म की हानि होती है। हे यशस्विनी तुम ऐसा उपाय करो कि मैं सूर्यास्त होने से पूर्व घर पहुंच सकूँ।

बरूथिनी विनम्रता पूर्वक ब्राह्मण से बोली—हे महाभाग ! मैं तो यह चाहती हूं कि वह उदासी मुझे देखने को न मिले, जिस दिन आप मुझे त्यागकर अपने घर को वापस जायें। यह स्थान स्वर्ग से भी सुन्दर है। इसलिए मैं स्वर्ग को छोड़कर यहाँ भ्रमण के लिए आती हूं। जब आप हमारे इस हिमालय के सुरम्य कानन में रमण करेंगे। तब अपने बन्धु-बांधवों को भूल जायेंगे। यहाँ पर आपको बहुत

ही सुन्दर वस्त्राभूषण स्वादिष्ट भोजन सुगन्धित अंगराग शीतल जल, इच्छानुकूल शय्या आदि सभी प्रकार की भोग्य वस्तुएँ प्राप्त होंगी। यहाँ आप कभी भी वृद्धावस्था को प्राप्त नहीं होओगे। हे प्रियतम ! 'प्रसन्न हो जाओ और घर की सुधि भुला दो' कहते हुए कमल नयनी वरुथिनी कामांध होकर ब्राह्मण से लिपट गई।

ब्राह्मण वरुथिनी को अपने शरीर से अलग करते हुए बोला—हे दुष्टे ! तू मुझे स्पर्श न कर। जो तेरे जैसा कामपिपासु हो उसी के पास जा। मैंने तुमसे नम्रतापूर्वक घर जाने का उपाय पूछा और तुम मुझसे लिपटने ही लगीं। तीनों लोकों में यज्ञ हवन आदि से बड़ा अन्य कुछ भी नहीं है। तुम मुझे घर जाने का उपाय बताओ।

वरुथिनी बोली—हे विप्रवर ! क्या मैं तुम्हें प्रिय नहीं हूँ ? या यह पर्वत ही तुम्हें अच्छा नहीं लगता ? तुम मेरे ऊपर दया करके थोड़े समय के लिए ही मेरे साथ दुर्लभ भोगों का आनन्द ले लो। आत्मा के आठ गुणों में से 'दया' सर्वप्रथम गुण है। अतः तुम मुझ पर दया करो। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति इतना प्यार उमड़ रहा है, हिलोरें ले रहा है कि मैं तुम्हारे बिना एक पल भी जीवित नहीं रह सकती। हे ब्राह्मण देवता ! आप अपने घर को यहाँ से निश्चय ही चले जाओगे। परन्तु मुझ अभागिन पर दया

करके अल्प समय के लिए ही मेरे साथ दुर्लभ भोगों को भोग लो।

ब्राह्मण बोला—हे वरूथिनी ! गार्हपत्य, आवहनीय तथा दक्षिणाग्नि तीन अग्नियाँ ही मेरी इच्छित हैं, अग्नि-ग्रह ही मेरे लिए सुरम्य है तथा विष्टरिणी देवी ही मेरी प्रिया है। यदि तुम मुझे सच्चे हृदय से प्यार करती हो तो मुझे अपने घर पहुंचने का सरल उपाय बता दो। हे सुभगे ! शास्त्रानुसार ब्राह्मण स्त्री के प्यार के चक्कर में पड़कर इहलोक में क्लेश और परलोक में विपरीत फल की प्राप्ति करता है।

वरूथिनी गिड़गिड़ाते हुए दोनों हाथ जोड़कर बोली—हे प्रिय ! मैं मृतक तुल्य हो रही हूं, अतः तुम मेरी प्राण रक्षा करके परलोक में पुण्य को प्राप्त करोगे तथा इस जन्म में भोग को प्राप्त करोगे। अन्यथा यदि तुम मुझे परित्याग कर दोगे तो मैं मृत्यु को प्राप्त होऊँगी और तुम पाप को।

ब्राह्मण बोला—गुरु के उपदेशों के अनुसार पराई स्त्री का उपभोग नहीं करना चाहिए। इसलिए मैं तुम्हें नहीं चाहता। चाहे तुम विलाप करो अथवा यौवन रहित हो जाओ। उसके बाद ब्राह्मण जल स्पर्श करके पवित्र हुआ फिर गार्हपत्य अग्नि को प्रणाम कर स्तुति वाचन किया।

फिर निवेदन किया कि जिस सत्य के द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व तुममें स्थित है उसी सत्य के द्वारा मैं सूर्यास्त होने से पूर्व अपने घर में निवास करके सूर्य का दर्शन करूं। जिस सत्य के द्वारा मैंने कभी वैदिक नित्य नैमित्तिक कार्यों को नहीं त्यागा तथा दूसरे के धन या पराई स्त्री के प्रति मेरा मन आकर्षित नहीं हुआ। उसी सत्य से मेरे घर पहुंचने का दृढ़ संकल्प पूर्ण हो।

कलिवरूथिनी समागम

गार्हपत्याग्नि से निवेदन करने के पश्चात इस महा अग्नि के प्रभाव से वह ब्राह्मण अग्नि के समान प्रभामय हो गया और इस महाअग्नि के दिव्यशक्ति से सम्पन्न होकर वह ब्राह्मण अपने घर को प्रस्थान करने के लिए तैयार हुआ। वरूथिनी शान्त भाव से खड़े होकर उस ब्राह्मण के दिव्य स्वरूप को अवाक होकर देखती रही। वरूथिनी के देखते ही देखते ब्राह्मण वहाँ से अपने घर के लिए प्रस्थान कर गया। अल्प समय में ही वह ब्राह्मण अपने घर में पहुँच कर अपने नैमित्तिक कार्यों को करने लगा।

इधर वरूथिनी अपनी युवावस्था को कोसने लगी। अपने भाग्य को धिक्कारते हुए फूट-फूट कर करुण विलाप

कर रही थी। कह रही थी कि यदि मैं जानती कि यहाँ आने से ऐसे दिव्य पुरुष का दर्शन होगा, जिसके दर्शनमात्र से ही तीव्र कामाग्नि से पीड़ित हो जाऊँगी और वह पुरुष ऐसा निष्ठुर तथा निर्मोही होगा। जो मुझे त्याग देगा। स्वीकार नहीं करेगा। मेरी उद्दीप्त कामाग्नि को शान्त नहीं करेगा। तो मैं यहाँ नहीं आती। अब तो मुझे सुन्दर पक्षियों का कलरव, आहार, विहार, सुरम्य वन, मनोहर गिरि कन्दरा आदि सभी काँटे की तरह प्रतीत होते हैं। अब मुझे उस ब्राह्मण द्वारा परित्यक्ता होकर जीवित रहना सम्भव नहीं है। अतः मुझे अब उस कामाग्नि से दग्ध होकर अपने प्राण को त्याग करना ही पड़ेगा। वह ब्राह्मण द्वारा परित्यक्त होने पर भी उस ब्राह्मण के प्रति अधिक आसक्त होती जा रही थी।

प्राचीन काल में कलि नाम का एक गन्धर्व था। जो कि वरूथिनी के प्रति बहुत ही आसक्त था। वह वरूथिनी को शोकावस्था में ग्लानि युक्त देखकर उस गन्धर्व ने ध्यान लगाकर चिन्तन किया। अपनी समाधि में गन्धर्व ने देखा कि वरूथिनी उस ब्राह्मण की याद को अपने दिल में संजोये कामाग्नि से जल रही है। इस अप्सरा ने मेरे द्वारा अनेकों बार प्रार्थना किये जाने पर भी मुझे स्वीकार नहीं किया था। परन्तु आज वह मुझे अवश्य ही स्वीकार करेगी। मैं

इसे प्राप्त करके ही रहूंगा। वह जिस पुरुष के प्रति आसक्त है। मैं उसी पुरुष का रूप धारण करके उसके सामने जा रहा हूं। इसलिए वह मेरे साथ निश्चय ही रमण करेगी। अब मुझे इस कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

तत्क्षण ही गन्धर्व कलि उस ब्राह्मण का रूप धारण करके वरूथिनी के सामने आ गया। उस ब्राह्मण को देख कर वरूथिनी का हृदय खिल उठा। वह ब्राह्मण के पास जाकर दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी। हे महा-भाग! आप मेरे ऊपर कृपा करो। नहीं तो मैं तुम्हारे द्वारा त्यागे जाने पर निश्चय ही अपने शरीर को त्याग दूंगी। यदि तुम यहां हिमालय के वन व कन्दराओं में रमण करोगे तो अवश्य ही तुम धर्म के भागी होवोगे।

मनुष्य रूपधारी कलि गन्धर्व बोला—हे सुभगे! मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मुझे क्या करना चाहिए। क्योंकि यहाँ रहने से मेरे नित्य नैमित्तिक कार्यों में बाधा पड़ती है। फिर भी यदि तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारे साथ सम्भोग करूँ तो शर्त यह है कि तुम सम्भोग के समय मुझे देखोगी नहीं। अपनी आँखें बन्द रखोगी।

वरूथिनी प्रसन्न होकर बोली—हे महाभाग! तुम धन्य हो। मुझे तुम्हारी शर्तें स्वीकार हैं। मैं तुम पर न्यो-छावर हूँ।

स्वारोचिष का जन्म व विवाह

ब्राह्मण वेशधारी कलि नामक गंधर्व वरूथिनी के साथ हिमालय की चोटियों, सुन्दर वनों, मनोरम सरोवरों व झीलों तथा गुफाओं आदि रमणीक स्थानों में विहार करते हुए रमण करने लगा। वरूथिनी सदा ही संभोग के समय आँखें बन्द करके उस ब्राह्मण के दिव्य स्वरूप का ध्यान करती थी। फलस्वरूप वरूथिनी ने गन्धर्व के वीर्य से गर्भ धारण किया। गन्धर्व चला गया। वरूथिनी ने उस दिव्य ब्राह्मण की ही भाँति द्युतिमान शिशु को जन्म दिया। सूर्य की किरणों की भाँति उस बच्चे के शरीर से भी तेजपुञ्ज निकल कर चारों दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था। इसलिए सूर्य जैसे प्रभावान होने के कारण उस बालक का नाम 'स्वरोचि' पड़ा। स्वरोचिष दिन दूना रात चौगुना वृद्धि को प्राप्त हुआ। साथ ही धनुर्वेद व वेद की विद्याओं में निपुण हुआ और पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हुआ।

नवयुवक 'स्वरोचि' ने मन्दर नामक पर्वत पर एक भयातुर कन्या को देखा। कन्या कह रही थी 'रक्षा करो' 'रक्षा करो'। उस भयभीत कन्या से 'स्वरोचि' बोला—'डरो मत। क्या बात है? क्या बात है?'

कन्या बोली—म…म · म…मैं इन्दीवर नामक विद्याधर

की पुत्री मनोरमा हूं तथा मरुधन्वा की पुत्री मेरी माँ है। मन्दार नामक विद्याधर की पुत्री विभावती तथा पार मुनि की कलावती दोनों ही मेरी सहेलियाँ हैं। एक बार मैं उन दोनों सहेलियों के साथ कैलाश पर्वत पर घूमने गई। वहाँ मैंने एक अत्यन्त कृशकाय मुनि को देखा। भूख प्यास के कारण उसका कण्ठ सूख गया था तथा निस्तेज होकर आँखों की पुतलियाँ बाहर निकल आई थी। जिसे देखकर मैं हँस पड़ी। अतः मुनि ने मुझ पर क्रोध करके शाप दिया। हे दुष्ट बालिके! तुमने मुझ कृशकाय तपस्वी को हँसी का पात्र बनाया है इसलिए तुम राक्षस से पराभूत होगी। तब हमारी दोनों सखियों ने उस मुनि को धिक्कारा, बोलीं—तुम्हारे जैसे क्षमारहित तपस्वी ब्राह्मण को धिक्कार है। तुम्हें पूजा पाठ अर्चना आदि करना सब व्यर्थ है। ब्राह्मण को तो क्षमायुक्त होना चाहिए। तुम कठिन तप के कारण दुबले-पतले नहीं हुए हो। बल्कि क्रोधी स्वभाव के कारण दुबले-पतले हुए हो।

दोनों सखियों द्वारा भर्त्सना किये जाने पर मुनि ने पुनः क्रोध के वशीभूत होकर एक को कुष्ठ रोगी तथा दूसरे को क्षय रोगी हो जाने का शाप दिया। फलस्वरूप दोनों सखियाँ भी शाप ग्रस्त हो गईं। तीन दिन से एक राक्षस मेरा पीछा कर रहा है। तथा वह पास में ही गर्जना कर

रहा है। सुनो ! अब मैं सभी अस्त्रों का सार रूपी अस्त्र मैं तुम्हें दे रही हूं। इस अस्त्र के द्वारा तुम मेरी उस राक्षस से रक्षा करो इस अस्त्र को पिनाक धारी रुद्र ने स्वायंभुव मनु को, स्वायम्भुव मनु ने वशिष्ठ जी को तथा वशिष्ठजी ने मेरी माता के पिता चित्रायुद्ध को दिया। तथा चित्रायुद्ध ने इसे मेरे पिताजी को दहेज रूप में दिया। और मैंने बाल्यकाल में इसे पिताजी से प्राप्त किता। ये सभी अस्त्र शत्रुओं के संहार करने में पूर्ण सक्षम हैं। इसलिए इसे शीघ्र ही ग्रहण करो और राक्षसों को मारो।

स्वरोचि ने कहा—अच्छा। फिर जल को स्पर्श करके उन सभी दिव्य अस्त्रों को ग्रहण किया। तब तक वह भयंकर राक्षस भी भीषण नाद करते हुए उसके पास आ गया। चिल्लाया अब मैं तुम्हें भक्षण करने जा रहा हूँ। यदि कोई तुम्हारी रक्षा करने में अपने को सामर्थ्यवान समझता हो वह सामने आवे। स्वरोचि ने विचार किया कि जब यह राक्षस इस कन्या को पकड़ लेगा। तभी यह कन्या मुनि शाप से मुक्त हो सकेगी। अन्यथा नहीं। राक्षस ने रक्षा हेतु आर्तनाद करती हुई उस कन्या को पकड़ लिया। तभी स्वरोचि ने भी क्रोधयुक्त होकर अपने धनुष पर भैरवास्त्र नामक अस्त्र को चढ़ाकर राक्षस की ओर देखा। उसी क्षण राक्षस कन्या को छोड़ कर हाथ जोड़

कर बोला—प्रसन्न होइए' 'प्रसन्न होइए' और इस अस्त्र को शान्त कीजिए। हे महापुरुष। ब्रह्ममित्र के शाप से अब मैं मुक्त हो गया। अपने इस कष्टदायक शाप से अब मैं मुक्त हो गया। आपने इस कष्टदायक शाप से मुक्त करके मेरा बहुत उपकार किया है। आपको धन्यवाद है।

स्वरोचि ने अपने अस्त्र को शान्त कर राक्षस से पूछा—ब्रह्ममित्र ने तुम्हें क्यों और कैसा शाप दिया था।

राक्षस बोला—ब्रह्ममित्र मुनि ने आयुर्वेद के अष्टांगों तथा अथर्ववेद के तेरहों खण्डों पर पूर्ण अधिकार किया था। इन्दीवराक्ष नाम से मैं इस कन्या का पिता तथा खड्गधारी नलनाभ नामक विद्याधर का पुत्र हूं। मैंने मुनि से आयुर्वेद की शिक्षा देने की प्रार्थना की कि आप मुझे आयुर्वेद की शिक्षा प्रदान करें। परन्तु उन्होंने अनेकों बार मेरे द्वारा प्रार्थना किए जाने पर भी मुझे आयुर्वेद की शिक्षा नहीं दी। उसके बाद वह मुनि जब अपने अन्य शिष्यों को आयुर्वेद की शिक्षा देते थे तब मैं आयुर्वेद की शिक्षा को पर्दे के पीछे से सुनता था। तथा आठ माह में ही मैं आयुर्वेद में निपुण हो गया। अतः प्रसन्नता में मैंने खूब जोर से ठहाका मारा (हंसा)। इस पर मुनि ने क्रोधित होकर शाप दिया। तुमने पर्दे के पीछे से राक्षसों की तरह आयु-

वेद को सीखा है और फिर तुमने आज्ञा का उल्लंघन करके उपहास किया है। इसलिए हे पापी ! तू सात रात्रि के अन्दर ही महा भयंकर राक्षस बन जाएगा। उसके बाद मेरे द्वारा बहुत अनुनय विनय करने पर दया करके मुनि ने कहा—हे गन्धर्व मेरा शाप असत्य तो नहीं होगा। परन्तु तुम राक्षस होने के कुछ ही दिनों के भीतर पुनः पूर्व शरीर को प्राप्त कर लोगे। उसके बाद राक्षसत्व को प्राप्त होने पर बुद्धि भ्रष्ट होगी और तुम अपनी पुत्री को ही खाने की इच्छा करोगे। तब तुम अपनी भयभीत कन्या को भक्षण हेतु पकड़ते ही राक्षसत्व से मुक्त होकर पूर्व शरीर को धारण कर गन्धर्व लोक को प्राप्त होवोगे। अतः हे महा-पुरुष ! आपके द्वारा मैं अब मुनि के शाप से मुक्त हो गया हूं। अब तुम मुझसे अपना इच्छित वर माँगो। मैं अपनी इस पुत्री को आपको समर्पित कर रहा हूं अतः इसे पत्नी के रूप में ग्रहण करो। तथा मैंने जो आयुर्वेद की शिक्षा पाई है। उसे भी ग्रहण करो।

इस प्रकार वह गन्धर्व स्वरोचि को आयुर्वेद की शिक्षा देकर अपनी कन्या को विधिपूर्वक देने की तैयारी करने लगा। तब कन्या बोली—हे तात ! मैं इस महापुरुष को चाहती हूं। परन्तु वह मेरी दोनों सखियाँ जो मेरे कारण ही भयंकर कष्ट पा रही हैं। इसलिए उन्हें भी बिना कष्ट

मुक्त हुए मुझे इनके साथ भोगों के भोगने की इच्छा नहीं है। अतः जिस प्रकार मेरी दोनों सखियाँ कष्ट पा रही हैं उसी प्रकार मैं भी शोकाग्नि में तृप्त होती रहूंगी।

स्वरोचि ने कन्या की इस प्रकार की बात को सुनकर आयुर्वेद की चिकित्सा करके उन दोनों कन्याओं को रोग-मुक्त कर दिया। फिर कन्या के साथ स्वरोचि का विवाह हो गया। उसके बाद गन्धर्व गन्धर्वलोक को गया और वह सखियां भी प्रसन्नता पूर्वक पर्वत कन्दराओं व वनों में रमण करने लगीं।

स्वरोचि का अन्य विवाह

दोनों सहेलियां रोग मुक्त हो गईं। तब उनमें से एक कन्या बोली—हे प्रभो ! मैं मन्दार विद्याधर की पुत्री विभावरी हूं। मुझे सभी प्राणियों के स्वरों का ज्ञान है। मैं तुम्हें इस विद्या को दूँगी तो तुम सभी पक्षियों की आवाज की पहचान कर पाओगे। अतः मैं अपने को तुम्हें समर्पित कर रही हूं। कृपया मुझे स्वीकार करो। स्वरोचि ने विभावरी को स्वीकार कर लिया।

तत्पश्चात दूसरी कन्या बोली- हे महाभाग ! मैं वेद-वेदांगों के ज्ञाता पार मुनि की पुत्री हूं। प्राचीन समय

में बसन्त ऋतु में कामीजनों के मन को हरण करने वाली पुँसकोकिल की मधुर तान से सारा वातावरण मद मस्त था। उसी समय एक पुंजिकस्थला नामक एक अप्सरा मेरे पिता के पास आई। मुनिवर काम के वशीभूत हो गए। अतः मुनि द्वारा अप्सरा के गर्भ धारण से पर्वत कन्दरा में मेरी उत्पत्ति हुई। मुझको मेरी माँ उस हिंसक प्राणियों से युक्त निर्जन वन में छोड़कर चली गई। तब पिता ने मेरा पालन पोषण किया।

पिता ने मेरा नाम कलावती रखा। जब मैं युवावस्था को प्राप्त हुई तब अलि नामक एक राक्षस ने मेरे पिता से मुझे माँगा। परन्तु पिता ने उसकी प्रार्थना ठुकरा दी। इसलिए क्रोधित होकर उस राक्षस ने रात्रि में सोते हुए मेरे पिता को मार डाला। तब मैंने अत्यन्त दुःखी होकर आत्महत्या करनी चाही। परन्तु ऐसा करने से मुझे भगवान शिव की पत्नी सती ने रोका। उन्होंने कहा—तुम शोक का त्याग करो। स्वरोचि तुम्हारे पति होंगे। उन द्वारा तुम गर्भ धारण करके मनु नामक पुत्र को उत्पन्न करोगी। सभी निधियाँ तुम्हारी दासी बनकर तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगी। तुम्हें वे इच्छित फल देंगी। दक्ष पुत्री सती की वाणी कभी असत्य नहीं होती। इसलिए तुम निश्चय ही वही स्वरोचि हो। मैं तुम्हें, अपना शरीर, प्राण और

महापद्म से अभिपूजित पद्मिनी नामक विद्या को समर्पित कर रही हूं। कृपया प्रसन्नचित हो इसे स्वीकार करें। स्वरोचि ने इस कन्या को भी स्वीकार कर लिया। इस प्रकार तीनों सखियां स्वरोचि की पत्नी बन गईं।

चक्रवाक व मृग द्वारा स्वरोचि का तिरस्कार

मार्कण्डेय जी ने आगे कहा - स्वरोचि तीन पत्नियों के साथ पर्वत कन्दराओं में रमण करने लगे। पद्मिनी विद्या के कारण सभी प्रकार के रत्न, मधुर सुरा, माला, वस्त्र आभूषण, अंगराग, शुभ्र आसन, स्वर्णाभूषण, स्वर्ण पात्र, बिस्तर आदि सभी प्रकार के भोग्य पदार्थ प्राप्त होने लगे। तीनों पत्नियों में भी अपूर्व प्रेम था। इस प्रेम को एक कलहंसी ने चक्रवाकी से कहा—यह युवक अत्यन्त ही धन्य तथा धर्मात्मा है जो इन स्नेहमयी पत्नियों का उपभोग करता है। इस संसार में बहुत कम ऐसे पति-पत्नी हैं। जो कि दोनों ही सुन्दर हों। बहुत से ऐसे सुन्दर नौजवान भी हैं जिनकी पत्नियाँ सुन्दर नहीं, कुरूप हैं। कोई पति अपनी पत्नी में तथा कोई पत्नी अपने पति में अनुरक्त है। ऐसा एक दूसरे को चाहने वाले ही हैं। अतः दोनों ही एक दूसरे के प्रति आकर्षित हैं, जोड़ी धन्य है क्योंकि इस प्रकार का

प्रगाढ़ दाम्पत्य प्रेम अत्यन्त ही दुर्लभ है। इसलिए ये पत्नियाँ एवं यह पति धन्य हैं।

कलहंसी द्वारा इस प्रकार की प्रशंसा को सुनकर चक्रवाकी को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। चक्रवाकी ने ठीक इसके विपरीत बोलना प्रारम्भ किया। बोली—हे सखी! यह पुरुष धन्य नहीं है क्योंकि एक स्त्री के साथ रहते हुए दूसरी स्त्रियों के साथ रमण करने में इसे शर्म नहीं आती। और न यह सभी स्त्रियों के साथ समान रूप से प्रेम ही करता है। एक आदमी का चित्त एक स्थान पर ही आकर्षित हो सकता है न कि अनेक स्थानों पर। इसलिए यह सम्भव नहीं है कि यह सभी स्त्रियों के साथ समान रूप से प्रेम कर सके। यह पति इन सभी स्त्रियों का प्रिय नहीं है, यह तो मात्र इन स्त्रियों का मनोरंजन मात्र है। हे कालहंसी! तुम क्या जानो। धन्य तो मैं हूं और मेरा पति धन्य है। क्योंकि न तो मेरे पति मेरे सिवा अन्य किसी स्त्री को चाहते हैं और न मैं उनके सिवा किसी अन्य पुरुष को।

बहुपत्नीक पुरुष पाप पुण्य का शरण दाता है। घर में भोजन, आसन, सह शयन, आभूषण आदि के द्वारा विषम क्रियाओं को करता हुआ पापों से युक्त होता है। पति को वैवाहिक पत्नी के साथ ही नित्य नैमित्तिक आदि

क्रियायें करनी चाहियें। अन्य प्रकार से कार्य करने वाला व्यक्ति पापी कहा जाता है।

मार्कंण्डेय जी ने कहा—सभी प्रकार के प्राणियों के स्वरों के ज्ञाता, अपराजेय स्वरोचि चक्रवाकी के इस प्रकार के वचनों को सुनकर बहुत ही दुःखी हुए तथा शर्मिन्दा भी। वे विचारने लगे कि यह चक्रवाकी जो कुछ भी कह रही है सत्य ही कह रही है। गलत नहीं है। उन तीनों पत्नियों के साथ रमण करते हुए स्वरोचि के एक सौ वर्ष पूरे हो गए। एक दिन जब वे अपनी पत्नियों के साथ रमण कर रहे थे तो उन्होंने सामने देखा कि एक मृग भी सुन्दर स्वस्थ मृगियों के साथ रमण कर रहा है। समान आयु की पुष्ट मृगियां उस मृग को चारों तरफ से घेरे हुई थीं तथा अपनी नाकों को सिकोड़ते हुए उस मृग को चारों तरफ से सूंघ रही थीं।

मृग ने मृगियों से कहा—अरी मृगियों तुम सबने तो शर्म को बिल्कुल ताक पर ही रख दिया है। अब तुम लोग कहीं और जाओ। हे सुन्दर नयनों वाली मृगियों! तुम सबको यह अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि न तो मैं स्वरोचि हूं और न उसके जैसा स्वभाव ही है। स्वरोचि के समान बहुत से बेशर्म पुरुष भरे पड़े हैं। अतः तुम सब वैसे ही पुरुषों के पास जाओ। जिस प्रकार एक स्त्री अनेक

पुरुषों के साथ सहवास करने पर निन्द्य होती है ठीक इसी प्रकार अनेक स्त्रियों के साथ सहवास करने वाला पुरुष भी निन्द्य होता है। उस पुरुष की नित्य नैमित्तिक धार्मिक आदि क्रियाओं की हानि होती है। इसलिए परलोक को न चाहने वाला स्वरोचि जैसा कोई अन्य व्यक्ति हो तो उसके पास जाओ। मैं वैसा नहीं हूं।

स्वरोचिष मनु की उत्पत्ति वर्णन

स्वरोचि ने चक्रवाकी व मृग द्वारा अपने विषय में सुनकर अपनी पत्नियों को त्यागने का विचार किया। परन्तु पत्नियों के पुर्नमिलन होने पर वह कामासक्त होकर पुनः उसने छः सौ वर्षों तक रमण किया। स्वरोचि उन पत्नियों के साथ विषय भोग करते हुए अपने नित्य नैमित्तिक कार्यों को धर्मानुसार करते रहे। उनके तीन शक्तिशाली पुत्र विजय, मेरुनन्द और प्रभाव नाम के हुए। इन्दीवर की पुत्री मनोरमा से विजय-विभावरी से मेरुनन्द और कलावती से प्रभाव की उत्पत्ति हुई। स्वरोचिष ने पद्मिनी विद्या के प्रभाव से तीन पुरों की रचना की। जो कि सभी प्रकार के वस्तुओं से सम्पन्न थीं। पूर्व दिशा में कामरूप पर्वत पर विजय नामक पुर बनाकर विजय को,

उत्तर दिशा में ऊँचे प्राचीरों वाला नन्दवती नामक पुर मेरुनन्दन और दक्षिण में ताल नामक पुर बनाकर प्रभाव को दिया।

स्वरोचि एक दिन धनुष बाण लिए शिकार हेतु जंगल में गया और एक वाराह को देखकर अपने धनुष पर बाण चढ़ाया। तभी एक हिरणी वहाँ आकर बोली—कृपया आप प्रसन्न होइये और उस वाराह (मृग) को मत मारिए। उसको मारने से कोई लाभ नहीं है। मेरे को मारेंगे तो मैं शीघ्र कष्ट से मुक्ति पा जाऊँगी।

स्वरोचि बोले—तुम तो स्वस्थ दिखती हो। तुम्हें कोई रोग व्याधि दिखाई नहीं देता। तो फिर तुम क्यों अपना प्राण त्याग करना चाहती हो। मृगी बोली—मैं उस पुरुष के प्रति अनुरक्त हूं जो किसी अन्य स्त्री को चाहता है। इसलिए उस पुरुष को प्राप्त न कर पाने के कारण मेरे लिए प्राण को त्याग करना ही श्रेष्ठ उपाय है। स्वरोचि बोला—कौन है वह? जो तुम्हें नहीं चाहता। जिस कारण कि तुम प्राण को त्याग करना चाहती हो। मृगी ने कहा—आपने ही मेरे चित्त को चुरा लिया है। मैं आपके प्रति आसक्त हूं। आपको प्राप्त न कर पाने के कारण ही मैं अपना प्राण त्याग करना चाहती हूं। अतः आप मुझे शीघ्र बाण से विद्ध करें। स्वरोचि बोले—तुम तो

चंचल हिरणी रूप में हो और मैं पुरुष रूप में। इसलिए तेरा मेरा साथ कैसे हो सकता है? मृगी बोली—यदि तुम भी मेरे प्रति आकर्षित हो तो मुझको अपने अंक में भर लो। मैं उसी से सम्मानित हो जाऊँगी। इस प्रकार हिरणी की बात को सुनकर स्वरोचि ने उसका आलिङ्गन किया। तत्क्षण ही उस हिरणी ने एक सुन्दर रूपवती नारी का रूप धारण कर लिया। स्वरोचि ने आश्चर्य पूर्वक पूछा—तुम कौन हो। तब वह बोली—मैं इस वन की अधिष्ठात्री देवी हूं। देवताओं के द्वारा भेजी गई हूं। मैं आपके प्रति अनुरक्त हूं। इसलिए आप मेरे गर्भ से भूलोक परिपालक पुत्र मनु को उत्पन्न करें। यह सब मैंने देवताओं के निर्देश पर ही कहा है।

स्वरोचि ने वन देवी के गर्भ से अपने समान तेजस्वी पुत्र को उत्पन्न किया। उस पुत्र के उत्पन्न होने पर देवताओं, गन्धर्वों व अप्सराओं आदि सभी ने खुशियाँ मनाईं। आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। स्वरोचि ने उस पुत्र का नाम द्युतिमान रखा। तथा उसका दूसरा नाम स्वरोचि का पुत्र होने के कारण स्वरोचिष पड़ा।

एक बार सुरम्य पर्वत पर अपनी पत्नी सहित भ्रमण करते हुए हंसों को देखा। हंस अपनी पत्नी से कह रहा था। हे हंसी! अब तुम संयतात्मा बनो, अपने मन को

वश में करो। मैंने तुम्हारे साथ रमण किया है। अब तुम वृद्ध भी हो गई हो। असमय के भोग से कुछ लाभ प्राप्त नहीं होता। अब यह हम दोनों का समय संभोग के त्याग करने का समय है।

हंसनी बोली—भोगों का कोई समय नहीं होता। यह सम्पूर्ण विश्व ही भोगमयी है। क्योंकि संयतात्मा ब्राह्मण भी भोगों की इच्छा से ही यज्ञ आदि करते हैं। दान देने वाले और पवित्र धर्मों का अनुसरण करने वाले विवेकीजन भी भोगों की इच्छा करते हैं। तो यदि हम पक्षीगण ऐसा करें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

हंस बोला—भोगों में आसक्त एवं बन्धु बान्धवों के मोह में आसक्त किसी व्यक्ति की बुद्धि परमात्मा में आसक्त नहीं हो सकती। पुत्र, मित्र, पत्नी आदि में आसक्त प्राणी तालाब के कीचड़ रूपी समुद्र में फँसे हुए जंगली हाथी के समान दुःखी होते हैं। हे सुभगे! देखो न बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक कामासक्त व बन्धु-बान्धवों में प्रेमी स्वरोचि का उद्धार कैसे होगा? असम्भव है। मैं स्वरोचि की भाँति स्त्रियों के वश में नहीं हूं। मैं ज्ञानयुक्त भोगों से निवृत्त हो गया हूं।

इस प्रकार हंस के वचनों को सुनकर स्वरोचि ने वन

में जाकर कठिन तप किया और पत्नियों सहित विकार रहित होकर अन्य लोकों को चला गया।

निधि निर्णय

क्रौष्टुकि ने अब मार्कंण्डेय जी से आठों प्रकार के निधियों के विषय में जानने की इच्छा व्यक्त की। तब मार्कण्डेय जी बोले—

पद्मिनी विद्या की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी जी हैं। पद्म, महापद्म, मकर, मुकुन्द, नन्दक, नील और शंख ये आठ निधियाँ हैं। ऋद्धि से निधियों की उत्पत्ति तथा सिद्धि होती है। देवताओं की कृपा एवं सन्तों की भली प्रकार सेवा करने से प्राप्त निधियों के द्वारा मनुष्य सदा ही आलोकित रहता है। अब इनका स्वरूप सुनो।

निधियों का स्वरूप

पद्म निधि सतोगुण के आश्रय तथा सत्व गुण से सम्पन्न है। जिसके पास यह निधि होती है। वह उदार-चेता पुरुष एवं उसके पुत्र पौत्र तथा प्रपौत्र सभी इस निधि से युक्त होते हैं। इस निधि से युक्त मनुष्य सोना, चाँदी,

तांबा आदि धातुओं को धारण करता है एवं इनका व्यापार करता है तथा यज्ञों का आयोजन करके प्रचुर दान देता है। यह निधि मनुष्य की सभी कामनाओं को पूर्ण करती है। मनुष्य भवन व मन्दिर आदि का निर्माण करते हैं।

सतोगुणी दूसरी निधि महापद्म है। इससे सम्पन्न व्यक्ति भी सत्त्व गुणी होता है। वह व्यक्ति प्रवाल आदि मोतियों का व्यवसाय तथा योगियों के निवास योग्य स्थान का निर्माण करता है। जैसा उसका आचरण होता है वैसा ही आचरण पुत्र पौत्र आदि आने वाले वंशधरों का होता है। यह निधि एक स्थान पर सात पीढ़ी तक निवास करती है।

मकर नामक तीसरी निधि तमोगुणी होती है। इससे युक्त पुरुष सुशील एवं तमोगुण प्रधान होता है। ऐसा मनुष्य धनुष-बाण, खडग-ढाल आदि शस्त्रों को धारण करने वाला, राजाओं से मित्रता करने वाला, शौर्य वृत्ति वाले वीरों को दान देकर संतुष्ट होने वाला एवं शस्त्रास्त्रों का व्यवसायी होता है। यह निधि मात्र उसी व्यक्ति तक ही सीमित होती है। पुत्रों आदि तक नहीं रहती।

कच्छप नामक निधि से युक्त मनुष्य धन के लिए तस्करों द्वारा (डाकुओं द्वारा) या युद्ध क्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होता है। यह तमोगुणी होती है। इससे युक्त पुरुष

तमोगुणी पुण्यवान, आचार, व्यवहार और कर्म के वशीभूत होकर सभी प्रकार के भोगों को भोगता है। वह किसी पर विश्वास नहीं करता। कच्छप निधि वाला मनुष्य रत्नों को संचित करके गुप्त रखता है। कहीं यह नष्ट न हो जाए ऐसा विचार करके न तो किसी को देता है और न स्वयं उसको भोगता ही है।

मुकुन्द नामक निधि रजोगुणी होती है। इससे युक्त व्यक्ति अपने धन को पृथ्वी में गाढ़ कर रखता है और यह निधि भी एक ही व्यक्ति तक सीमित होती है। इस गुण से युक्त मनुष्य वीणा, वेणु, मृदंग आदि के अनेक वाद्य यन्त्रों का संग्रह करता है, संगीतज्ञों, नर्तकों, बन्दी, मागध, सूत, विट व कविता के सस्वर पाठ करने वालों को धन देता है। हर प्रकार के सुखों को भोगता है। वह व्यक्ति सुन्दर स्वस्थ व्यक्तियों से ही अधिक प्रेम करता है।

नन्द नामक निधि रजोगुण व तमोगुण से युक्त होता है। इस गुण से युक्त व्यक्ति अत्यन्त स्तम्भित तथा सभी प्रकार के धातु, रत्न, पुण्य द्रव्यों एवं धान्यादि का संग्रह करता तथा व्यवसायी होता है। अपने आत्मीय जनों, अतिथियों व अभ्यागतों के आश्रय देने वाला होता है। सम्मान के साथ रहता है। अपमानजनक व्यवहार को सहन नहीं कर पाता। उसकी यदि कोई प्रशंसा करे तो

वह उस पर खुश होकर उसको धन वस्त्र देता है। बहु-पत्नीक होता है। सन्तानें भी अनेक होती हैं। अपने चाहने वालों के साथ मृदु व्यवहार करता है। यह निधि सात पीढ़ियों तक रहती है। यह अष्टमांश होती है। इसी के प्रभाव से मनुष्य सभी प्रकार के सुखों का उपभोग करता है। मनुष्य दीर्घायु होता है। इस निधि से युक्त मनुष्य परलोक में भी और यहाँ अपने साथ के निवासियों में कहीं भी सम्मान नहीं पाता।

नील नामक महानिधि सतोगुण व रजोगुण से युक्त होता है। इस निधि से सम्पन्न व्यक्ति सतोगुण व रजोगुण से रहित होता है। यह वस्त्र, कपास, फल, पुष्प व धान्य आदि का संग्रह करता है। तथा मोती, विद्रुम, शंख, शुक्ति, काष्ठ व अन्य जल में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं का व्यव-सायी होता है। तालाबों, पुष्प वाटिकाओं तथा पुष्पों से आच्छादित सरोवरों, पुलों का निर्माण कराता है तथा वृक्षारोपण करवाता है। अंगराज व पुष्पों का प्रेमी होता है। यह निधि तीन पीढ़ियों तक ही सीमित होती है।

आठवीं निधि शंख है। रजोगुण व तमोगुण युक्त होता है। यह निधि एक पुरुष तक ही सीमित होती है। इस निधि से सम्पन्न व्यक्ति अकेले ही अपने द्वारा अर्जित अन्न और वस्त्रों का उपभोग करता है। वह व्यक्ति अपने

मित्रों, पत्नी, भाई, पुत्र, पुत्रवधू, माता पिता आदि का भरण-पोषण के लिए कुछ नहीं देता। केवल अपना पेट पालने में व्यस्त रहता है।

इस प्रकार आठों निधियों को ध्यान करने वाला व्यक्ति संयुक्त रूप से सभी के फलों को प्राप्त करता है।

———

औत्तर मन्वन्तर

(तृतीय मन्वन्तर)

ब्राह्मण क्रौष्टुकि ने महर्षि मार्कण्डेय जी से तृतीय मन्वन्तर औत्तर मन्वन्तर के विषय में जानने की इच्छा व्यक्त की। तब मार्कण्डेय जी बोले—राजा उत्तानपाद के सुरुचि नामक पत्नी के गर्भ से उत्तम नामक एक पुत्र रत्न हुआ। उत्तम एक धर्मवान, पराक्रमी व तेजस्वी व्यक्ति था वे राजसिंहासन पर आरूढ़ होने पर शत्रु, मित्र, प्रजा व पुत्र में न्याय के दृष्टिकोण से समान दृष्टिकोण रखते थे। दुष्ट व्यक्तियों के लिए यम के समान भयंकर तथा सज्जन व्यक्तियों के लिए चन्द्रमा की भाँति शीतल थे। उत्तम का विवाह बभ्रु की पुत्री बहुला नामक कन्या से हुआ। वे बहुला को बहुत प्यार करते थे। राजा उत्तम बहुला के

अतिरिक्त किसी अन्य नारी के विषय में स्वप्न में भी नहीं सोचते थे। राजा बहुला पर सब प्रकार से पूर्ण आसक्त थे, परन्तु बहुला को राजा की मधुरतम से मधुरतम वाणी भी अति कटु लगती थी। वह राजा के सम्मान का कभी भी ख्याल नहीं रखती थी। राजा के द्वारा भेंट की गई मालाओं व सुन्दर आभूषणों को कभी स्वीकार नहीं करती थी। भोजन के समय राजा बहुत अनुनय-विनय करके बहुला को भी भोजन पर बैठाते थे तो वह अनमने मन से एक दो ग्रास खाकर ही उठ जाती थी। राजा जितना अधिक उसका सम्मान करते थे उतना ही अधिक वह अपना अपमान समझती थी। रानी द्वारा ऐसे निष्ठुर व रूखा व्यवहार के होने पर भी राजा उससे अत्यधिक प्यार करते थे।

एक बार राजा के दरबार में वराङ्गनाएँ मधुर स्वरों में उत्तम गीतों को गा रही थीं। उस समय दरबार में अन्य राजा लोग भी बैठे थे। उत्तम ने बहुला को उत्तमोत्तम सुरा का पात्र दिया। परन्तु रानी ने उसे लेने से अनिच्छा प्रकट करते हुए दूसरी तरफ को मुँह फेर लिया जिससे उन सभी राजाओं के सामने रानी द्वारा अपने को अपमानित किये जाने पर राजा क्रोधित हो उठे। तथा सेवकों को आदेश दिया। रानी को तत्काल ही निर्जन वन में छोड़ आओ।

शीघ्र ही मेरे आदेश का पालन करो। सेवक रानी को निर्जन वन में छोड़ आये। इससे रानी दुःखी न होकर प्रसन्न ही हुई कि अब राजा का मुख देखने को नहीं मिलेगा। इधर राजा रानी की अनुपस्थिति में दुःखी व चिन्तित रहते हुए भी प्रजा का परिपालन भली प्रकार कर रहे थे।

एक बार एक दुःखी ब्राह्मण राजा के पास आया और बोला—हे राजन ! रात्रि में मेरे मकान से बिना दरवाजे को खोले ही किसी ने मेरी पत्नी को चुरा लिया है। कृपया आप उसे दिलाने की कृपा करें। हे राजन् ! आप हम प्रजा की सुरक्षा के लिए ही धन के छठे भाग को वेतन के रूप में ग्रहण करते हैं। जिससे कि हम प्रजागण रात्रि में निश्चिन्त होकर सो सकें।

राजा बोले—हे विप्र ! अपनी पत्नी की आयु रंग रूप और आचरण के विषय में बतावें। क्योंकि मैंने तो देखा नहीं है। आपके बताने के आधार पर आपकी पत्नी का पता लगाया जा सकता है।

वह ब्राह्मण अपनी पत्नी का परिचय देते हुए बोला—हे राजन ! मेरी पत्नी कठोर नयना, दीर्घाकार शरीर वाली, छोटी बाँहें, पतला मुख, लम्बा पेट, छोटे स्तन एवं अत्यन्त ही कुरूपा है। कटुभाषिणी, रूक्ष स्वभाव वाली है

तथा आयु में वह युवावस्था को पार कर चुकी है। यही मेरी पत्नी का परिचय है। हे परवर दिगार ! आप राजा हैं। आप हीं मेरी पत्नी को तथा उसके अपहरणकर्ता का पता कर सकते हैं। राजा ने कहा—हे विप्र ! इस कुरूपा व कुलक्षणा पत्नो का क्या करोगे। यह तो त्याज्य है। आप इस पत्नी को भुला दें। मैं आपको दूसरी सुन्दर व सुलक्षणा पत्नी दिलवा दूँगा। ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! पत्नी चाहे जैसी भी हो, उसकी रक्षा करनीं चाहिए। जब तक पत्नी की रक्षा नहीं की जाती तब तक सन्तान की रक्षा नहीं हो सकती। सन्तान की रक्षा करने से अपनी रक्षा होती है। पत्नी के गर्भ से अपनी ही आत्मा उत्पन्न होती है। पत्नी की रक्षा न करने से वर्णशंकर उत्पन्न हो सकता है जो पितरों को स्वर्ग से पतित कराता है। जो पत्नी गुरुजनों की आज्ञा से अग्नि को साक्षी मानकर अपने घर लाई गई है। जिसके साथ धार्मिक कार्यों को करने से शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है और गृहस्थी दुःखी नहीं होता। उस पत्नी का परित्याग मैं कैसे कर दूं ? क्योंकि प्रथम पत्नी ही धर्म के ग्रहण में प्रशंसा योग्य है, उसके बिना सारी धार्मिक क्रियायें व्यर्थ हैं। माना कि मेरी पत्नी अत्यन्त ही दुष्टा है परन्तु उसका त्याग कर देने से वर्णशंकर की उत्पत्ति संभव है। पत्नी के बिना धर्म की हानि होती है। मेरे पितृ

नैमित्तिक कार्य नष्ट होंगे। इसलिए हे राजन! आप हमारे रक्षक हैं। अतः जैसे भी हो जहाँ से भी हो, आप मेरी पत्नी को लाकर देवें।

राजा ब्राह्मण के द्वारा इस प्रकार के वचनों को सुन कर शस्त्रास्त्रों से युक्त रथ पर चढ़कर ब्राह्मण की पत्नी की खोज में निकल पड़े। उसने एक बहुत बड़े वन में तपस्वियों के आश्रम को देखा। तथा आश्रम के भीतर कुशासन पर बैठे तेजयुक्त मुनियों को देखा। मुनियों ने मधुर वचनों एवं आसन आदि के द्वारा राजा का स्वागत किया। ऋषि बोले- हे राजन! हम अच्छी तरह जानते हैं। कि आप उत्तानपाद के पुत्र हैं। आपके इस वन में आने का क्या कारण है? राजा विनयपूर्वक बोले—हे मुनिवर एक ब्राह्मण की पत्नी को किसी अज्ञात व्यक्ति ने अपहरण कर लिया है। उसी की खोज में निकला हूं। राजा ने मुनि से कुछ पूछने की जिज्ञासा प्रकट की। मुनि ने निःशंक भाव से राजा को पूछने की आज्ञा दे दी।

राजा बोले—हे मुनिवर! मैं आपके आश्रम में प्रथम बार आया हूं। आप मेरे स्वागत में अर्घ्य आदि देने को तैयार थे। परन्तु आपने वापस कर दिए। ऐसा क्यों हुआ? मुनि बोले—हे राजन! मेरे जैसा ही यह मेरा शिष्य भी त्रिकालदर्शी है। आपके आते ही मैं अर्घ्य देने को तैयार

था परन्तु मेरे इस शिष्य ने मुझे सावधान कर दिया। जिससे आपको अर्घ्य नहीं दिया गया। माना आप स्वायम्भुव कुल में उत्पन्न होने के कारण अर्घ्य लेने के पात्र हैं। परन्तु मैं आपको अर्घ्य देने का पात्र नहीं स्वीकार करता। उसका कारण है कि तुमने अपनी पत्नी को निर्जन वन में अकेला छोड़ा है। उसके त्याग के साथ ही तुम्हारा सारा धर्म नष्ट हो गया। जिस व्यक्ति की धार्मिक हानि केवल एक पक्ष ही हो तो वह अछूत हो जाता है और जिसके एक वर्ष से नित्य कर्मों की धर्मों की हानि हो रही हो उसको पूछना ही क्या है? हे राजन! जिस प्रकार पत्नी को अपने दुराचारी पति का त्याग नहीं करना चाहिए। उसी प्रकार पति को भी अपने दुष्ट आचरण वाली पत्नी का त्याग न करके उसका पोषण करना चाहिए। देखो उस धर्मानुयाई ब्राह्मण ने अपने प्रतिकूल पत्नी को खोजने के लिए तुम्हें प्रेरित किया है। उसे त्यागा नहीं। हे राजन! यदि कोई व्यक्ति धर्मानुगामी न हो तो आप उसे धर्म में प्रवृत्त करते हैं। परन्तु यदि आप राजा ही धर्म का त्याग कर दें, तो आपको धर्म में कौन प्रवृत्त करेगा।

ऋषि की बातों को सुनकर राजा बड़े ही लज्जित हुए। राजा ने कहा—ठीक है। हे मुनिवर अब आप कृपा करके उस ब्राह्मण की पत्नी के विषय में बतावें कि वह इस

समय कहां है तथा उसे कौन ले गया है ? आप भली-भाँति जानते हैं क्योंकि आप त्रिकालदर्शी भी हैं ।

ऋषि बोले—हे राजन ! वह ब्राह्मण पत्नी इस समय उत्पलावल नामक वन में है । उसे आद्रि का पुत्र बलाक नामक राक्षस अपहरण करके ले गया है । तुम वहां शीघ्र जाकर ब्राह्मण को उसकी पत्नी से मिला दो । जिससे कि उस ब्राह्मण को भी तुम्हारे जैसा प्रतिदिन धर्म से च्युत होकर पाप का भागी न बनना पड़े ।

ब्राह्मण की पत्नी को पति के घर भेजना

राजा ने मुनि को प्रणाम किया । फिर वहाँ से प्रस्थान कर उत्पलावल वन में पहुंच गया । राजा ने ब्राह्मण द्वारा बताये गये पत्नी के स्वरूप वर्णन के अनुसार उस ब्राह्मण की पत्नी को श्रीफल खाते हुए देखा । राजा ने उससे पूछा 'हे भद्रे ! क्या तुम विशाल के पुत्र विप्र सुशर्मा की पत्नी हो ? तथा यहां किस प्रकार आई हो ? मुझे भली प्रकार बताओ ।

ब्राह्मणी बोली—हाँ मैं वनवासी ब्राह्मण अतिरात्र की पुत्री तथा विशाल के पुत्र सुशर्मा की पत्नी हूं । जब मैं घर में सो रही थी तो दुष्टात्मा बलाक नामक राक्षस मुझे

अपहरण कर लाया। मैं यहाँ अत्यन्त दुःखी हूं। वह राक्षस मेरे दुःख की आह से भस्म भी नहीं हो जाता। जिससे कि मैं पुनः अपने माता-पिता व पति के पास जा सकूँ। वह राक्षस मुझे क्यों अपहरण करके लाया है। समझ नहीं पा रही हूँ क्योंकि न तो यह मुझे खाता ही है और न मेरा उपभोग ही करता है।

राजा बोला– मैं तुम्हारे पति द्वारा भेजा हुआ तुम्हें लेने आया हूं। क्या तुम्हें यह मालूम है कि इस समय वह राक्षस कहाँ है? ब्राह्मणी बोली–वह राक्षस इस जंगल में ही रहता है। यदि आपको उससे भय नहीं है। तो जंगल में प्रवेश कर उसे ढूँढ़ लें। राजा ने जंगल के अन्दर प्रवेश किया। वहाँ वह राक्षस अपने परिवार वालों के साथ बैठा था। उसने दूर से ही राजा को देखकर उनके चरणों में प्रणाम किया। राक्षस राजा से बोला—आप हमारे राजा हैं स्वामी हैं। हम आपके सेवक हैं। आपने मेरे घर पर आकर मुझ पर बड़ी कृपा की है। मेरे योग्य जो सेवा हो कृपया मुझे कहें। राजा बोला—हे राक्षस! तुमने मेरा सब प्रकार से सम्मान किया है। मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं। परन्तु तू उस ब्राह्मण की पत्नी को क्यों अपहरण कर लाया? वह सुन्दर भी तो नहीं है यदि पत्नी बनाने के लिए किया है तो अन्य भी सुन्दर स्त्रियाँ हैं। यदि खाने के

लिए अपहरण किया है तो आज तक खाया क्यों नहीं ?

राक्षस बोला—हे राजन ! हम नरभक्षी राक्षस नहीं हैं। वे और राक्षस होते हैं। हम तो मात्र पुण्यों के फलों को ही खाते हैं। अब आप पुण्य के फलों को सुनिये। जिसके रिक्त होने से मैं इस क्रूर राक्षस योनि में पैदा हुआ हूं। अपमानित मनुष्यों के व स्त्रियों के स्वभाव, व मनुष्यों की क्षमा हमारे आहार हैं। हम मांसाहारी बिल्कुल नहीं हैं। तथा हम राक्षसों के पास सुन्दर से सुन्दर स्त्रियाँ हैं, अतः मानवी स्त्रियों के साथ रमण करने का प्रश्न ही नहीं उठता। हे राजन ! उस ब्राह्मणी का पति मन्त्रज्ञ है जिससे वह ब्राह्मण यज्ञों में राक्षस विनाशक मन्त्रों का पाठ करके हमें वहाँ से भागने के हेतु बाध्य कर देता है। अतः हम भोजन के लिए अब कहाँ जाएँ ? क्या करें ? वह ब्राह्मण सभी यज्ञों में जाता है। इसीलिए उसकी पत्नी का अपहरण करके उसको व्याकुल कर दिया है कारण पत्नी के बिना पुरुष यज्ञ करने में समर्थ नहीं होता। राजा ने सोचा—यह राक्षस ब्राह्मण की विकलता को कहकर मुझे अपमानित कर रहा है। इसीलिए उस मुनिवर ने मुझे अर्घ्य के योग्य नहीं माना। इस समय मैं बड़े ही संकट में फंस गया हूं। क्योंकि यह राक्षस भी पत्नी की रिक्तता के कारण ब्राह्मण में उत्पन्न विफलता को कहकर मुझे ही संकेत कर रहा है।

इस प्रकार राजा चिन्तामग्न हो गये। राक्षस बोला—हे राजन ! मैं आपका सेवक हूँ कृपा करके मेरे योग्य सेवा का आदेश करें।

राजा बोला—हे निशाचर ! तुमने अभी कहा था कि हम दुष्ट स्वभाव का भक्षण करते हैं। इसलिए उस ब्राह्मणी के दुष्ट स्वभाव को भक्षण कर जाओ। जिससे वह मृदु स्वभाव वाली स्त्री हो जाये। और उसे उसके पति के घर पहुंचा करके आओ। उस राक्षस ने अपनी माया से उस ब्राह्मणी के दुष्ट स्वभाव व दुर्गुणों का भक्षण कर लिया। ब्राह्मणी राजा से बोली—इसमें न मेरा दोष है और न राक्षस का ही। यह सब मेरे भाग्य का दोष है। पूर्वजन्म में मैंने किसी का विछोह कराया होगा। इसी कारण इस जन्म में मुझे धर्मात्मा पति से वियोग प्राप्त हुआ। इसमें मेरे पति का भी कोई दोष नहीं है। राक्षस बोला—हे राजन ! आपकी आज्ञानुसार इस ब्राह्मणी को इसके घर पहुंचा दे रहा हूं। इसके अतिरिक्त भी यदि कोई अन्य कार्य हो तो हमें आदेश करें। राजा बोले—हे निशाचर तुमने यह कार्य करके मेरा सभी कार्य सम्पन्न कर दिया। फिर जब मैं तुम्हें स्मरण करूँ तुम मेरे पास आ जाना। राक्षस ने ब्राह्मणी को उसके घर पहुंचा दिया।

———

ऋषि से उत्तम की वार्ता

ब्राह्मण सुशर्मा की पत्नी को उसके घर भेजकर राजा उत्तम अपने विषय में विचार करने लगे। उन्होंने विचार किया। पत्नी को मेरे द्वारा त्यागे जाने के कारण ही मुनि ने मुझे अर्घ्य योग्य नहीं माना तथा निशाचर ने भी इसी तरफ संकेत किया है। अतः नित्य नैमित्तिक आदि धार्मिक कार्यों के हेतु अब हमें क्या करना चाहिए ? उन्हीं त्रिकालज्ञ मुनि से पूछना चाहिये। ऐसा विचार करके अपने रथ पर चढ़ करके उस मुनि के आश्रम में पहुंचे। राजा ने मुनि के चरणों में प्रणाम किया। फिर उस ब्राह्मणी व राक्षस से भेंट, ब्राह्मणी के दुष्ट स्वभाव की समाप्ति तथा उसे उसके पति के घर भेजने का वृतान्त सुनाया। फिर स्वयं को मुनि के पास आने के विषय में बताया।

मुनि बोले—हे राजन ! मैं जानता हूं। तुम मेरे से यह जानने आए हो कि अब मुझे क्या करना चाहिए। इसलिए जो तुम्हारे करने योग्य है, उसे मैं बता रहा हूं सुनो। धर्म अर्थ और काम के करने में पत्नी का होना नितान्त आवश्यक है। और तुमने पत्नी को त्याग करके धर्म को त्याग दिया है। पत्नी के बिना कोई धार्मिक अनुष्ठान पूर्ण नहीं होगा। चाहे वह किसी भी जाति का

क्यों न हो। तुमने पत्नी को त्याग करके अच्छा नहीं किया। जिस प्रकार पत्नी के लिए पति अत्याज्य है, उसी प्रकार पत्नी भी पति के लिए अत्याज्य है।

राजा बोले—हे मुनिवर ! मैंने पत्नी को अपने स्वभाव के विपरीत होने के कारण ही त्यागा है। अब मैंने वियोग के कारण उत्पन्न भय से उसे क्षमा कर दिया है अन्तरात्मा से नहीं। इस समय वह जंगल में कहाँ है ? कैसे है ? जीवित है भी या नहीं। इस विषय में हमें कुछ भी पता नहीं है। ऋषि बोले—आपकी पत्नी इस समय रसातल में है तथा शुद्ध आचरण वाली पवित्र है। राजा को यह जानने की इच्छा थी कि वह रसातल में कैसे गई ? ऋषि बोले—पाताल में एक कपोतक नामक नागराज है। तुम्हारे द्वारा त्यागी गयी तुम्हारी पत्नी को निर्जन वन में अकेले घूमती हुई नागराज ने देखा। उसे दयनीय अवस्था में देखकर नागराज पाताल लोक में ले गया। नागराज की पत्नी मनोरमा तथा सुन्दर पुत्री नन्दा थी। नन्दा ने तुम्हारी पत्नी बहुला को देखकर मन में विचार किया कि यह युवती मेरी माता की सपत्नी होगी। अतः उसने उस युवती को अन्तःपुर में छिपा दिया। जब नागराज ने नन्दा से उस युवती के सम्बन्ध में पूछा। तो वह कुछ भी नहीं बोली। इस पर नागराज ने अपनी पुत्री को शाप दिया।

तुम गूंगी हो जाओ। नागराज को उस युवती का पता नहीं चला। इस प्रकार नन्दा द्वारा छिपाई गई तुम्हारी पत्नी का सतीत्व सुरक्षित है।

राजा ने विनम्रता पूर्वक पत्नी के सम्बन्ध में अपने दुर्भाग्य का कारण पूछा। राजा ने कहा—हे मुनिवर! सभी प्राणी मेरे से प्रेम करते हैं और मैं अपनी पत्नी को बहुत चाहता हूँ। फिर भी क्या कारण है कि मेरी पत्नी मुझे प्यार नहीं करती तथा मेरे प्रति दुष्ट आचरण वाली है। इसका क्या कारण है। मुनि बोले—हे राजन! जब तुम दोनों का विवाह हुआ। तब आप पर सूर्य, मंगल और शनिश्चर की तथा आपकी पत्नी पर शुक्र और वृहस्पति की दृष्टि थी। उसी समय आपके बुद्ध और आपकी पत्नी के चन्द्रमा एक दूसरे के घोर विरोधी थे। अब तुम जाकर अपनी पत्नी को वापस लाओ और धार्मिक कार्यों को करते हुए पृथ्वी का पालन करो। उसके बाद राजा ने मुनि के चरणों में प्रणाम कर अपने महल को प्रस्थान किया।

———

औतम मुनि की उत्पत्ति

महाराजा उत्तम जब अपने नगर में पहुंचे तो उन्होंने देखा कि ब्राह्मण सुशर्मा अपनी पत्नी के व राजा के दर्शन

की प्रतीक्षा में बैठा है। ब्राह्मण राजा का दर्शन करके बोला—हे राजन! आप धन्य हैं। आपने मेरी खोई हुई स्त्री को लाकर धर्म की रक्षा की है। राजा बोले, 'हे विप्र श्रेष्ठ! आप तो अपने धर्म को पालन करके कृतकृत्य हुए हैं। परन्तु मैं नहीं हुआ मेरी पत्नी मेरे घर में नहीं है। इसलिए मैं विषम संकट में पड़ गया हूँ। ब्राह्मण बोला, 'हे राजन! आपने क्रोध के आवेश में धर्म का बिना विचार किये पत्नी को त्याग दिया। पता नहीं वह अब वन में जीवित होगी भी या नहीं। अतः अब आपको उस पत्नी की आशा न करके दूसरी कन्या से शादी कर लेनी चाहिए। राजा ने कहा, 'हे विप्र! मेरी पत्नी जीवित है, उसका चरित्र अभी भी विशुद्ध है। तो मैं किसी अन्य कन्या से कैसे शादी कर लूं। सोच रहा हूँ। यदि उसे ले भी आऊँ तो उसकी बुद्धि मेरे विपरीत है, जिस कारण कि मैंने उसे त्यागा था। यदि मैं उसे ले भी आऊँ तो उसकी बुद्धि मेरे अनुकूल नहीं होगी, क्योंकि वह मुझसे प्यार नहीं करती।

ब्राह्मण बोला, 'हे राजन! आप चिन्ता न करें। मैं आपके लिए 'मित्र विन्दा' नामक यज्ञ का अनुष्ठान करूँगा। जिसके करने से घोर शत्रु भी मित्रवत् व्यवहार करने लगते हैं। इस यज्ञ के करने के बाद आप दोनों पति पत्नी का अनुराग एक दूसरे के प्रति शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह

वृद्धि को प्राप्त करेगा। आप अपनी स्त्री को अवश्य ही लावें। वह रानी निश्चय ही आपके प्रति परम अनुराग करने वाली होगी। राजा ने सारी यज्ञ सामग्री मंगवाकर ब्राह्मण को दे दी। ब्राह्मण ने यज्ञ का अनुष्ठान करके राजा को अपनी पत्नी लाकर सांसारिक सुख भोगने को कहा। राजा ने बलाक नामक राक्षस को स्मरण किया। वह राक्षस राजा की सेवा में उपस्थित होकर आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा। राजा ने राक्षस को अपनी पत्नी के विषय में सारी बातें समझाकर पाताल लोक से शीघ्र लाने का आदेश दिया। थोड़े ही समय में वह राक्षस रानी को लेकर आ गया। रानी राजा को देखकर विनयपूर्वक बार-बार यही कहे जा रही थी। प्रसन्न होवो, प्रसन्न होवो ? राजा ने रानी को हृदय से लगाया और पूछा, 'हे प्रिये ! मैं तो तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ ही। फिर ऐसा क्यों कह रही हो। रानी ने कहा, 'हे नाथ ! नागराज की कन्या मेरी सखी है। वह मेरे ही कारण अपने पिता के शाप से गूंगी हो गई है। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो उसके गूंगेपन को दूर करिये। उसके गूंगेपन के दूर होने पर ही सभी कार्य सम्पन्न हो गया, ऐसा समझें। राजा ने ब्राह्मण से उस कन्या के गूँगेपन को दूर करने का उपाय पूछा। ब्राह्मण ने कहा, मैं सरस्वती ईष्ट का यज्ञ करूँगा, जिससे उसका

गूँगापन दूर हो जायेगा और आपकी पत्नी भी उऋण हो जायेंगी। उसके बाद उस ब्राह्मण ने सरस्वती ईष्ट का यजन करके सारस्वत सूक्त का पाठ किया तब वह नाग-कन्या बोलने लगी। गर्ग मुनि ने पाताल में जाकर नन्दा से कहा, तुम्हारा गूँगापन तुम्हारी सहेली के पति के कारण दूर हुआ है। यह समाचार पाते ही नागकन्या नन्दा ने राजा के नगर में आकर अपनी सहेली का आलिंगन किया। नन्दा सुन्दर आसन पर बैठकर राजा के लिए मंगल की कामना करते हुए तथा उनके द्वारा किये गये उपकार का आभार प्रकट करते हुए बोली, 'हे राजन ! आपको एक महा-पराक्रमी व बलशाली पुत्र होगा। जो इस पृथ्वी पर अखण्ड राज्य करेगा। वह सभी प्रकार से सम्पन्न, अर्थ-शास्त्री, धर्मानुयायी, मेधावी एवं मन्वन्तर का स्वामी मनु होगा। उसके बाद नन्दा अपनी सखी को आलिंगन कर पाताल लोक को चली गई।

राजा उत्तम सुखपूर्वक अपनी पत्नी के साथ विहार करते हुए प्रजा का पालन करने लगे। कुछ काल बाद चन्द्रमा के समान उत्तम कान्ति वाला, सुन्दर मुख वाला पुत्र उत्पन्न हुआ। इस पुत्र की उत्पत्ति पर देवताओं ने पुष्प वर्षाये, गन्धर्वों ने मंगल गान गाया। अप्सराओं ने नृत्य किया। चारों तरफ खुशियां ही खुशियाँ लहरा रही

थीं। त्रिकालदर्शी मुनियों ने उस पुत्र का नाम औत्तम रखा। यही औत्तम आगे मनु हुआ।

औत्तम मन्वन्तर वर्णन

औत्तम मन्वन्तर तीसरा मन्वन्तर है। इस मन्वन्तर के देवता, राजा आदि का वर्णन इस प्रकार से है। 'स्वधामा' नामक देवताओं के नामों के अनुकूल ही स्वज्योति से प्रकाशित द्वितीय गण का नाम 'सत्य' है 'शिव' नाम के तृतीय गण हैं जिनके नाम लेने मात्र से ही सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। देवताओं के चतुर्थ गण 'प्रतर्दन' तथा पाँचवें गण 'वशवर्ती' हैं। इस प्रकार ये पाँचों गण यज्ञ का उपभोग करने वाले कहे गये हैं।

तामस मन्वन्तर

(चतुर्थ मन्वन्तर)

एक समय प्राचीन काल में स्वराष्ट्र नाम के एक प्रसिद्ध राजा हुए। जो अनेकों यज्ञों को करने वाला, अपराजेय व अत्यन्त पराक्रमी था। दीर्घायु था। उसकी सौ रूपवती व सौभाग्यशालिनी पत्नियाँ थीं। परन्तु दुर्भाग्य

वश पत्नियाँ अल्पायु वाली थीं। उसके सभी सेवकगण व मन्त्रिगण भी मृत्यु को प्राप्त हो गए। जिससे राजा शोकाकुल होकर अति कृशकाय हो गए। तब उनके पड़ोसी राजा विमर्द ने उनके राज्य पर अधिकार कर लिया। राज्यच्युत राजा स्वराष्ट्र वितस्ता नदी के किनारे वन में तपस्या करने लगे। वे ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि, वर्षा ऋतु में खुले आकाश में, शिशिर ऋतु में जल में रहकर निराहार संयतात्मा होकर कठिन तपस्या कर रहे थे। एक बार भीषण वर्षा में महाप्रलय हो गई। गहन अन्धकार छा गया। दिशाएँ लुप्त हो गईं। पृथ्वी पर इतना अधिक जल भर गया कि नदी के किनारे का भी पता चलना कठिन हो गया। राजा जल-धारा में बहकर बहुत दूर चले गए। उन्होंने जल में बहते हुए एक हिरणी को देखा। उसकी पूँछ को पकड़ लिया। फिर उस हिरणी के सहारे राजा नदी के किनारे पहुंच गए। नदी से बाहर होकर कठिन कीचड़ के मार्ग को पार करते हुए राजा एक सुन्दर वन में पहुंच गए। राजा हिरणी के सहारे वन के अन्दर एक अन्धकार पूर्ण विजन स्थान में पहुंच गये।

राजा हिरणी के कोमल शरीर के स्पर्श से कामदेव के वशीभूत हो गए और परम सुखानुभूति करने लगे। हिरणी बोली—हे राजन ! तुम अपने काँपते हाथ से मेरी पीठ

को क्यों स्पर्श कर रहे हो ? आपका यह स्पर्श तो किसी अन्य भाव को ही प्रकट कर रहा है। हे राजन ! मैं आपके लिए अप्राप्य नहीं हूं किन्तु आपके संगम में यह लोल बाधक बन रहा है। राजा ने हिरणी से पूछा—हे मृगी ! तुम कौन हो ? जो इस प्रकार मनुष्य की बोली बोल रही हो। तथा लोल कौन है जो तुम्हारे साथ संगम करने में मुझको बाधा उत्पन्न करेगा। मृगी बोली—हे राजन ! मैं आपकी सौ पत्नियों में पहली पत्नी उत्पलावती दृढ़धन्वा की पुत्री हूं। मैं बाल्यावस्था में एक बार अपनी सहेलियों के साथ वन में गई। वहाँ मैंने एक मृग को मृगी के साथ समागम करते हुए देखा। तब मैंने उस पर पत्थर फेंका। मृगी भयभीत होकर अन्यत्र चली गई। क्रुद्ध मृग बोला—तुम इस प्रकार पागल क्यों हुई हो। तुमने मेरे इस गर्भा-धान की क्रिया को असफल कर दिया। तुम्हें धिक्कार है। इस प्रकार मनुष्य की बोली को बोलते हुए मृग से मैंने भयभीत होकर पूछा। आप कौन हैं तथा इस योनि को कैसे प्राप्त हुए हैं।

मृग बोला—हे कुमारी ! मैं निवृत्ति चक्षु मुनि का पुत्र हूं। सुतपा नाम की मृगी को प्राप्त करने के लिए ही मैं मृग योनि को प्राप्त हुआ हूं। हम दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित होकर समागम कर रहे थे कि तुमने बाधा उत्पन्न

कर दो। अब मैं तुम्हें शाप दे रहा हूं। तब मैं मृग से विनय पूर्वक बोली—हे मुनिवर ! यह गलती मुझसे अज्ञान वश हो गई है। अतः आप मुझे क्षमा कर दें। तब मृग ने कहा—ठीक है यदि तुम अपने को मुझे अर्पित कर दो तब मैं शाप नहीं दूंगा। तब मैं बोली—हे मृग ! मेरा शरीर तो मृगी का नहीं है। इसलिए आप मेरी कामना न करके किसी अन्य मृगी की करें। इस पर उस मृग ने मुझे मृगी हो जाने का शाप दिया। तब मैंने पुनः उस मृग (मुनि) के चरणों में गिरकर गिड़गिड़ाते हुए क्षमा याचना की और प्रार्थना की। हे मुनि श्रेष्ठ पितृविहीन कन्या अपने मन से पति का चयन कर अंगीकार कर सकती है। परन्तु मैं पिता के रहते आपको पति रूप में कैसे स्वीकार करूँ। हे मुनिवर ! आप मुझ अबोध अपराधिनी के अपराध को क्षमा करें, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होवें। तब मुनि ने अपने क्रोधावेश को शान्त करके कहा—ठीक है। मेरा शाप मिथ्या नहीं हो सकता। अगले जन्म में तुम इसी वन में मृगी होवोगी। तब महाबाहु लोल तुम्हारे गर्भ में आयेंगे। इस प्रकार सिद्धवीर्य मुनि के गर्भ को तुम उत्पन्न करोगी। लोल के गर्भ में आते ही तुम्हें अपने पूर्व जन्म का ज्ञान होने लगेगा और साथ ही मनुष्य की भाषा बोलने लगोगी। लोल के उत्पन्न होने के बाद तुम मृग योनि से मुक्त हो

जाओगी। फिर अपने पति के द्वारा सम्मानित होकर परम धाम को प्राप्त होओगी। और वह लोल भी अपने पिता के शत्रुओं का विनाश करके संपूर्ण पृथ्वी का शासक बन कर मनु होगा। हे नाथ! इसलिए अब मैं मुनि के शाप वश इस तिर्यक् योनि में हूं। आपके स्पर्श से मेरे गर्भ में लोल स्थित हुआ है। इसलिए मैं आपके योग्य नहीं। आपका मेरे प्रति अनुरक्त होना उचित ही है।

कुछ समय बाद मृगी ने सद्‌गुणों से युक्त पुत्र को जन्म दिया। राजा बड़े प्रसन्न हुए। मृगी ने भी शाप मुक्त होकर उत्तम लोक को प्राप्त किया। सभी त्रिकालदर्शी मुनियों ने उस बालक का नाम तामस रखा। तामस का पालन पोषण पिता ने किया। तामस ने अपने पिता से पूछा—हे तात! आप कौन हैं? मेरी माता कौन है? मैं यहाँ क्यों आया हूं? तथा मैं आपका पुत्र कैसे हूं।

राजा ने अपने पुत्र तामस से अपने पूर्व वृतान्त तथा राज-च्युत होने के सम्बन्ध में बताया। तामस ने अपने पिता द्वारा सारा वृतान्त सुनकर भगवान भास्कर की आराधना की। फिर सभी प्रकार के दिव्य शास्त्रास्त्रों को प्राप्त किया। अस्त्र विद्या में निपुणता प्राप्त करने के बाद सम्पूर्ण पृथ्वी पर अपना राज कायम किया। पिता अपने सौभाग्यशाली पुत्र के पराक्रम से आनन्द विभोर हो उठा

और सुख पूर्वक अपने शरीर का त्याग करके उत्तम लोकों को प्राप्त किया। तथा तामस मनु कहलाए। इस तामस मन्वन्तर के देवतागण सत्य, सुधी, सुरूप और हरि ये चार हैं तथा प्रत्येक गण में सत्ताईस देवता हैं। महाबली और महापराक्रमी 'शिखी' नामक इन्द्र सौ यज्ञों को करके देवताओं के स्वामी बने। इस मन्वन्तर के सप्तर्षि ज्योति धर्म, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, बलक और पीवर नामक ऋषि हुए। तामस के महाशक्तिशाली व पराक्रमी पुत्र, नर क्षांति, शांत दाँत जानु जंघ आदि हुए। इस प्रकार तामस मन्वन्तर का यह वृतान्त पूर्ण हुआ।

रैवत मन्वन्तर

(पांचवाँ मन्वन्तर)

प्राचीन काल में ऋत्वाक् नाम के एक प्रसिद्ध ऋषि थे उनकी कोई सन्तान नहीं थी। वृद्धावस्था में रेवती नक्षत्र में वे एक पुत्र के पिता बने। उन्होंने उस पुत्र का जातकर्म, नामकरण व उपनयन संस्कार आदि यथोचित समय पर विधिवत् किये। परन्तु वह पुत्र कुलक्षणों से युक्त कुपात्र पुत्र था। इस पुत्र के जन्म के बाद से ही पिता ऋषि कष्ट साध्य रोग से पीड़ित हो गए। एक बार इस पुत्र ने किसी

अन्य मुनि की पत्नी को अपनी बांहों में जकड़ लिया। इस दुश्चरित्र पुत्र से दुःखी होकर ऋत्वाक् ऋषि ने कहा—ऐसे कुपात्र पुत्र होने से निःसंतान होना ही उत्तम है। क्योंकि ऐसे कुपुत्र, माता-पिता के हृदय को कष्ट तो पहुंचाते ही हैं। साथ ही स्वर्ग में स्थित पितरों को भी पतित करते हैं। ऐसे दुष्कर्मी पुत्र को धिक्कार है। धन्य तो वे पुत्र हैं जो अपने कर्मों से मित्रों का उपकार करते हैं, सभी प्राणियों के प्रिय, शीलवान, शान्त स्वभाव व कार्यों को करके माता-पिता के हृदय को सुख पहुंचाते हैं। कुपुत्र सदा ही सज्जन पुरुषों को कष्ट तथा दुर्जन को सुख प्रदान करते हैं।

अत्यन्त दुःखी ऋत्वाक् मुनि गर्ग मुनि के पास में गए। अभिवादन किया। फिर अपने विषय में पूछा—हे मुनिवर! मैंने सभी उत्तम व्रतों का पालन करते हुए विधि पूर्वक वेदाध्ययन करने के पश्चात् शास्त्रानुसार ही पत्नी को ग्रहण किया। पत्नी के साथ ही योग्य श्रौत, स्मार्त और वषट् क्रियाओं को किया। मैंने काम के वशीभूत होकर इस पुत्र को उत्पन्न नहीं किया है। पुत्र की इच्छा से ही विधिवत् गर्भाधान की क्रिया अपनाकर ही इसे उत्पन्न किया है। फिर भी यह पुत्र दुःख पहुंचाने वाला कुपुत्र क्यों हो गया?

गर्ग मुनि बोले—हे मुनिवर! आपका यह पुत्र रेवती

नक्षत्र के अन्तिम चरण में यानि दुष्ट समय उत्पन्न होने के कारण ही कुपुत्र हुआ है। इसमें न आपका न आपकी पत्नी और न आपके वंश का ही कोई दोष है। इसका मूल कारण रेवती नक्षत्र ही है। तब ऋत्वाक् ऋषि ने क्रोध कर शाप दिया। यदि रेवती नक्षत्र के कारण ही मेरा पुत्र कुपुत्र हुआ है तो यह आकाश से पतित हो जाए। सभी के देखते ही देखते तत्क्षण ही रेवती नक्षत्र कुमुद पर्वत पर गिर पड़ा। पर्वत के सभी वन, कन्दरा, झरना आदि प्रकाशमान हो गये। कुमुद पर्वत अत्यन्त रमणीक हो गया। रेवती नक्षत्र के गिरने से इसका नाम रैवतक पड़ा।

रेवती नक्षत्र की कान्ति से पर्वत पर एक सुन्दर सरोवर उत्पन्न हुआ और उस सरोवर से एक सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई। प्रमुच मुनि ने इस कन्या का नाम रेवती रखा। तथा उन्होंने ही इसका पालन-पोषण किया। रेवती के बड़े हो जाने पर मुनि उसके पति के विषय में विचार करने लगे। योग्य वर के विषय में उन्होंने यज्ञशाला में अग्निदेव से पूछा। अग्निदेव ने कहा—इस कन्या का पति महाबली, शक्तिशाली, मृदुभाषी, धर्मप्रेमी तथा दुर्गम नाम का राजा होगा।

प्रियव्रत के वंश में कालिन्दी के गर्भ से उत्पन्न महाबली, पराक्रमी दुर्गम नाम का वह राजा शिकार खेलते

हुए मुनि के आश्रम में पहुंचा। राजा ने आश्रम में ऋषि को न देखकर पतले शरीर वाली कन्या को 'प्रिये' कहते हुए पुंग मुनि के सम्बन्ध में पूछा—हे प्रिये! श्रेष्ठ मुनिवर कहाँ हैं। मैं उनके चरणों में प्रणाम करना चाहता हूं।

राजा की बोली सुनते ही मुनि यज्ञशाला से बाहर निकल आये वे दुर्गम राजा को देखकर मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने गौतम नामक शिष्य से कहा—जाओ शीघ्रता से राजा के लिये अर्घ्य लाओ। एक तो हमारे ये राजा बहुत दिनों बाद आये हैं तथा दामाद होने के कारण भी ये अर्घ्य के पात्र हैं। राजा दामाद कहे जाने पर कुछ उलझन में पड़ गये। फिर अर्घ्य ग्रहण कर सुन्दर आसन को ग्रहण किया ऋषि ने राजा से उनके मित्र, पारिवारिक जन, सेना, कोषागार, भृत्य आदि का कुशल-मंगल पूछते हुए कहा कि आपकी पत्नी के विषय में क्या कुशल-मंगल पूछना। वह तो यहीं है। आपकी अन्य दूसरी पत्नियां कुशल तो हैं।

राजा ने विनय पूर्वक कहा—हे मुनिवर! आपकी दया से सभी सकुशल हैं। परन्तु आपने कहा—आपकी पत्नी तो यहीं है समझ नहीं पाया। आपके कहने का क्या तात्पर्य है? क्योंकि मेरी पत्नियां सुभद्रा, शान्त तनया, कावेरी तनया, विभा, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, वरूथजा

विपाठा और नन्दिनी ही हैं ये मेरे घर में ही हैं, इन्हें ही मैं जानता हूं। किसी अन्य पत्नी को नहीं।

मुनि ने कहा—जिस कन्या को आपने प्रिय कहकर सम्बोधित किया था। वह रेवती नामक तीनों लोकों में अपूर्व परम सुन्दरी सौभाग्यशालिनी कन्या ही आपकी पत्नी है। मेरे द्वारा अग्निदेव से रेवती के पति के विषय में पूछने पर अग्निदेव ने तुम्हें ही इसका पति बताया है। इसलिए तुम्हीं इसके योग्य पति हो। इसे पाणिग्रहण कर स्वीकार करो। मुनि ने शादी की सारी तैयारियाँ पूरी कर दीं। तब रेवती बोली—हे तात ! मेरी शादी रेवती नक्षत्र में ही कीजिए। ऋषि बोले—हे पुत्री ! रेवती नक्षत्र चन्द्र योग में नहीं है। इस समय तुम्हारे विवाह के शुभ नक्षत्र उपस्थित हैं। रेवती बोली—हे तात ! आप हमारा विवाह रेवती नक्षत्र में ही सम्पन्न करें अन्यथा मेरा कार्य विफल हो जाएगा। ऋषि के सामने एक विचित्र संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई। परन्तु अपनी बेटी के प्रति अगाध प्रेम होने के कारण अपने तपोबल से उन्होंने रेवती नक्षत्र को स्थापित करके चन्द्रमार्ग से सम्बन्धित करके राजा से पुत्री का विवाह सम्पन्न कर दिया। फिर ऋषि ने राजा से कहा—हे भूपाल ! तुम्हारी जो इच्छा हो दान रूप में मांगो। मैं अपने तपोबल से तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करूंगा। राजा

ने विनयपूर्वक कहा—हे मुनिवर ! मैं स्वायंभुव मनु के वंश में उत्पन्न होने के कारण मन्वन्तराधिपति पुत्र की कामना करता हूँ।

मुनि ने कहा—हे राजन ! तुम्हारी मनोकामना अवश्य ही पूर्ण होगी। तुम्हारा धर्मज्ञ पुत्र अवश्य ही सम्पूर्ण पृथ्वी का उपभोग करेगा। राजा ऋषि के चरणों में प्रणाम करके अपनी पत्नी रेवती के साथ विदा होकर अपने घर पहुंचा। कुछ समय बाद रेवती के गर्भ से धर्मज्ञ, मनुष्यों द्वारा अपराजेय, सर्वशास्त्रज्ञ, वेदज्ञ एवं सर्वगुण सम्पन्न पुत्र हुआ। यह रैवत मन्वन्तर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस प्रकार इस रैवत मनु के वृतान्त को पाठ करने वाला सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।

चाक्षुष मन्वन्तर

(छठवाँ मन्वन्तर)

महात्मा अनमित्र की पत्नी भद्रा के गर्भ से एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। जो परम विद्वान, पवित्र, जातिस्मर और विभु था। इस पुत्र का पूर्व जन्म में परमेष्ठी ब्रह्मा के चक्षु से उत्पन्न होने के कारण इस जन्म में भी इसका नाम चाक्षुष पड़ा। पुत्र के जन्म के चार दिन बाद माँ

अपने पुत्र को गोद में लेकर बड़े ही स्नेह से बातें करने लगी। बार-बार आलिंगन करने लगी। माता के इस प्रकार बातें करने पर पुत्र हंस पड़ा। पुत्र की हंसी को देख कर माँ भयभीत हो गई। बोली—हे वत्स ! क्या तुम्हें शुभ कार्य दृष्टिगोचर हो रहा है।

पुत्र बोला—मुझे खाने की इच्छा से वह बिल्ली बैठी है। क्या तुम उसे देख नहीं रही हो ? तथा गुप्त रूप से बैठी जातहारिणी भी मुझे खाने की प्रतीक्षा कर रही है। देखो न तुम भी मेरे से स्नेह कर रही हो। जबकि हमारा तुम्हारा परिचय मात्र चार-पाँच दिन का है। तुम्हारा स्नेह भी स्वार्थ वश है और मार्जारी, जातहारिणी का स्नेह भी स्वार्थ वश है। सिर्फ अंतर इतना है कि तुम मुझ के इच्छित उपभोग करने की इच्छा रखती हो और मार्जारी (बिल्ली) तथा जातहारिणी मुझे तत्काल खा जाने की इच्छा रखती हैं। इसलिए हे माँ ! मैं हँस पड़ा। तुम मुझे इतनी आत्मीयता क्यों दिखा रही हो जब कि तुम्हें यह पता नहीं मैं कौन हूं, न मैंने तुम्हारा कोई उपकार किया है और न अधिक दिन का परिचय ही है। हमारा तुम्हारा मिलन तो मात्र माता-पुत्र के रूप में ही हुआ है। चार-पाँच दिन के परिचय में ही तुम अपनी आँखें गीली करके मेरे प्रति अत्यधिक स्नेह प्रकट कर रही हो।

मां बोली—हे पुत्र ! मैं किसी प्रकार के उपकार की आशा से तुम्हें स्नेह नहीं करती। यदि तुम्हें मेरे द्वारा आलिङ्गन व प्यार किया जाना अच्छा नहीं लगता तो तुम छोड़ दो। तुमसे जिस स्वार्थ सिद्धि की आशा है उसे त्याग करके मैं जा रही हूं। कहकर मां प्रसूतिगृह में बच्चे को छोड़कर चली गई। पुत्र काष्ठवत् पड़ा रहा। फिर जात-हारिणी उस बच्चे को उठा ले गई तथा विक्रांत नामक राजा के प्रसूति गृह में पड़ी पत्नी की शय्या पर रख दिया और उसके नवजात शिशु को उठा लाई। फिर इस शिशु को भी किसी अन्य प्रसूता के पास रखकर उसके बच्चे को उठा लाई और इस तृतीय बच्चे को खा गई। इस प्रकार वह जातहारिणी पहले दो बच्चों को परिवर्तन करके तीसरे को खा जाती थी।

राजा विक्रांत ने अपने इस परिवर्तित पुत्र का क्षत्रियो-चित संस्कार कर नाम 'आनन्द' रखा। आनन्द का यज्ञो-पवीत संस्कार सम्पन्न होने पर गुरु जी ने उसे जाकर मां के चरणों में प्रणाम करने को कहा। गुरु जी की बात को सुनकर आनन्द हंसने लगा। बोला—मैं किस माता के चरणों में प्रणाम करूँ। जन्मदात्री मां के, या पालन करने वाली मां के चरणों में। गुरुजी बोले—हे वत्स ! महाराज विक्रांत की धर्मपत्नी हैमिनी ही तुम्हारी जन्मदात्री मां

हैं। आनन्द बोला—नहीं, ये तो अपबोध नामक ब्राह्मण के पुत्र विशाख ग्राम के निवासी चैत्र की जन्मदात्री माँ है। मेरी नहीं। मेरा जन्म तो अन्यत्र हुआ था।

गुरु जी बोले—हे आनन्द ! तुम कौन हो। कहाँ से आये हो ? कहाँ उत्पन्न हुए हो ? यह चैत्र कौन है ? यह तुम क्या कह रहे हो।

आनन्द बोला—मैं धर्मात्मा राजर्षि अनमित्र की पत्नी गिरिभद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ। जातहारिणी ने वहाँ से मेरा अपहरण करके यहाँ छोड़ दिया और हैमिनी के पुत्र को उस बोध नामक ब्राह्मण के घर ले गई। तथा ब्राह्मण के पुत्र को खा गई। हे गुरुजी अब आप हमें आज्ञा करें मैं किस माता को प्रणाम करूँ। इस प्रकार गुरुजी को चिन्ता-ग्रस्त देखकर आनन्द फिर बोला—हे विप्रवर ! कौन किसका पुत्र है और कौन किसका भाई। इस प्रकार इस संसार की व्यवस्था में मोह का विराम कहाँ है। शरीर के नष्ट हो जाने पर सारे मोह माया नष्ट हो जाते है। तब कोई किसी का अपना नहीं होता। इस संसार में जीवों का कोई भाई नहीं है। आपकी बुद्धि क्यों भ्रमित हो रही है। इसी जन्म में हमारे दो पिता व दो माता हो चुके हैं। अन्य शरीर धारण करने पर इससे भी अधिक माता-पिता हो सकते हैं। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। अब तो

मैं तपस्या करूँगा। विशालग्राम से चैत्र को ले आइये। वही राजा का असली पुत्र है।

आनन्द की इस बात को सुनकर राजा विक्रांत भी पत्नी सहित आश्चर्य मे पड़ गये। तथा मोह को त्याग करके आनन्द को तप करने हेतु वन में जाने की अनुमति दे दी। राजा ने चैत्र को सम्मान पूर्वक अपने पास लाकर क्षत्रियोचित शिक्षा देकर राज्याभिषेक किया और आनन्द मुक्ति में बाधक सभी कर्मों को त्याग करके बाल्यावस्था में ही कठिन तप करने लगे। तपस्या में रत आनन्द को देख कर प्रजापति ब्रह्मा ने पूछा—हे वत्स ! तुम यह कठिन तपस्या क्यों कर रहे हो ? आनन्द ने उत्तर दिया—मैं सांसारिक मोह बन्धनों से मुक्त होने तथा आत्म शुद्धि के लिए तपस्या कर रहा हूं। ब्रह्मा जी ने कहा—क्षीण कर्म वाले मनुष्य ही मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं, कर्मवान पुरुष नहीं। जाओ, तुम छठे मनु होकर प्रजा का पालन करोगे। अब तुम्हें तपस्या करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ब्रह्मा जी ने आनन्द को चाक्षुष नाम से सम्बोधित किया।

आनन्द ने ब्रह्माजी के आदेशानुसार तपस्या को परित्याग करके राजा उग्र की पुत्री विदर्भा से विवाह किया। विदर्भा के गर्भ से अनेक शक्तिशाली व पराक्रमी पुत्र उत्पन्न

हुए। इस मन्वन्तर में 'आप्या' नामक प्रथम देवगण में कर्म, यज्ञ हव्यभोजी आठ प्रसिद्ध देवता थे।

इस प्रकार छठवें मन्वन्तर का यह वृतान्त पूर्ण हुआ।

वैवस्वत मन्वन्तर

(सातवाँ मन्वन्तर)

मार्कण्डेय जी ने क्रौष्टुकि से कहा—हे विप्र ! विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा मार्त्तण्डदेव की पत्नी थी, संज्ञा के गर्भ से एक महान पराक्रमी व विद्वान पुत्र विवस्वान हुआ जो कि वैवस्वत मनु के नाम से प्रसिद्ध हुआ। संज्ञा सदा ही सूर्य को देखते ही अपनी आँखें बन्द कर लेती थी। जिससे सूर्य देव ने नाराज होकर शाप दिया। तुम मुझे देखते ही आँखें बन्द कर लेती हो। इसलिए तुम प्रजा को संयमन करने वाला पुत्र उत्पन्न करोगी। उसके बाद संज्ञा ने सूर्य को चंचल दृष्टि से देखना प्रारम्भ किया। तब पुनः क्रोधित होकर शाप दिया। तुम चंचल दृष्टि से हमें देख रही हो। इसलिए तुम चंचल नदी के समान कन्या उत्पन्न करोगी। कुछ समय बाद पति के शापवश संज्ञा ने 'यम पुत्र' व कन्या यमुना नाम वाली नदी को जन्म दिया।

संज्ञा सूर्य की गर्मी के कारण बहुत ही कष्ट पा रही

थी, अतः वह दिन-रात यही सोचती थी क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? ऐसा कौन सा कार्य करूँ जिससे हमारे पतिदेव क्रोध न करें। कुछ समय बाद संज्ञा ने अपने पिता के घर जाने का निश्चय करके अपनी एक छाया रूप तैयार करके सूर्य के घर में छोड़ दी। जिससे सूर्य को यह पता न चले कि मेरी पत्नी घर में नहीं है, और स्वयं पिता के घर चली गई। संज्ञा छाया से बोली—मेरे पति के सामने सदा ही अपने आदर भाव क्रिया कलाप से मेरे बच्चों का पालन करते हुए ऐसा व्यवहार करना जिससे उनके हृदय में यह संशय उत्पन्न न हो कि तुम संज्ञा नहीं हो। छाया बोली—ठीक है, मैं ऐसा ही करूँगी। परन्तु जब कभी भी सूर्यदेव क्रोध में मेरे केश पकड़ शाप देना चाहेंगे। तभी उससे पूर्व का सारा वृतान्त कह दूंगी। संज्ञा ने अपने घर जाकर अपनी तपस्या शक्ति के द्वारा पाप रहित त्वष्टा को देखा।

विश्वकर्मा (त्वष्टा) ने पुत्री संज्ञा का स्वागत किया। संज्ञा को अपने पिता के घर में रहते कुछ समय व्यतीत होने पर एक दिन विश्वकर्मा ने कहा, 'हे वत्से ! जबकि मैं तुम्हें बहुत दिनों से देख रहा हूं। तो भी ऐसा लगता है। जैसे मैंने बहुत ही अल्प समय देखा है। फिर भी स्त्रियों की शोभा अपने घर में है अपने बांधवों के साथ अधिक दिनों तक रहना नारी के लिए सम्मानजनक नहीं

होता है। तीनों लोकों के स्वामी सूर्य तुम्हारे पति हैं। तुम ब्याहता पत्नी हो। मैं तुमसे प्रसन्न हूं। तुम्हारा मैंने सम्मान भी किया है। आगे भी जब आओगी। तुम्हारा स्वागत करूंगा। परन्तु अब तुम्हें अपने पति के घर से आए बहुत दिन हो गए हैं। इसलिए अब तुम्हें अपने पति के घर जाना चाहिए। मुझे देखने हेतु फिर चली आना।

संज्ञा ने पिता के चरणों में प्रणाम कर विदा ली। वह उत्तर कुरू प्रदेश में घोड़ी का स्वरूप धारण करके तपस्या करने लगी। उधर सूर्य के घर पर स्थित छाया (संज्ञा) के गर्भ से दो पुत्र एवं एक कन्या को जन्म दिया। छाया जितना अपने बच्चों से प्यार करती थी। उतना संज्ञा के बच्चों से नहीं, ऐसा व्यवहार वह रोज करती थी छाया के इस व्यवहार से मनु तो दुःखी नहीं हुए। परन्तु यम ने उसे क्षमा नहीं किया। यम ने क्रोधावेश में छाया को मारने के लिए पैर उठाया। परन्तु मारा नहीं, पैर खींच लिया। छाया ने भी क्रोध करके यम को शाप दिया, 'तूने अपने पिता की पत्नी को मारने के लिए पैर उठाया है। इसलिए आज तेरा यह पैर पृथ्वी पर गिर जायेगा।

यम भयभीत होकर पिता सूर्य के पास गया और सारा वृतान्त कह सुनाया। फिर कहा, 'हे तात्! पुत्र चाहे

कुपुत्र हो जाये, कितना भी भीषण दुराचारी हो जाये। परन्तु माता, माता ही रहती है। कुमाता नहीं बनती। स्वप्नावस्था में भी माता अपने बच्चे के लिए बुरा नहीं चाहती कोई अशुभ बात नहीं कहती। परन्तु माता के इस भयंकर शाप को सुनकर बड़ा आश्चर्य हो रहा है।

सूर्य ने छाया रूपी संज्ञा को बुलाकर पूछा, 'संज्ञा कहाँ गई है? छाया बोली, 'हे नाथ! मैं ही त्वष्टा की पुत्री संज्ञा आपकी पत्नी हूं। ये सभी सन्तानें मेरे ही गर्भ से उत्पन्न हुई हैं। सूर्य के बार-बार पूछने पर भी छाया कुछ नहीं बोली। तब सूर्य ने लाल-लाल आंखें करके क्रोधावेश में छाया को शाप देना चाहा। तभी छाया ने सारा वृतांत सुना दिया। सूर्य विश्वकर्मा के घर पहुंचे। विश्वकर्मा ने सूर्य का आदर सत्कार किया एवं भक्ति पूर्वक पूजन किया। उसके बाद सूर्य ने विश्वकर्मा से पूछा, 'क्या संज्ञा यहां आई थी? विश्वकर्मा ने कहा, संज्ञा पहले तो आई थी। फिर मैंने उसे आपके यहाँ भेज दिया। सूर्य ने समाधि लगाकर देखा कि संध्या उत्तर कुरू देश में घोड़ी का रूप धारण कर तपस्या कर रही है उसकी तपस्या का उद्देश्य है कि 'मेरे पति सुन्दर एवं सौम्यमूर्ति वाले हो जायें। तब सूर्य ने विश्वकर्मा से अपना तेज कम करने को कहा। विश्वकर्मा ने सूर्य के तेज को छाँटकर कम कर दिया।

सूर्य एवं अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति

सभी ऋषि-मुनिगण तथा देवताओं ने भगवान सूर्य की स्तुति की—

हे ऋक्स्वरूप, सामरूप, द्युतिमान, यजुःस्वरूप एवं साम स्वरूप भगवान सूर्य आपको नमस्कार है। प्राणियों के ज्ञान के प्रकाशपुञ्ज, तमको दूर करने वाले ज्योति-स्वरूप, विशुद्ध, निर्मल आत्मा वाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हे प्रभो ! आप ही सूर्य रूपी प्रकाश, आत्मा रूपी भास्कर, प्राणियों के हेतु तथा ज्ञानी पुरुषों के निष्ठा-स्वरूप आप हैं। दिन रात्रि के कारण संध्या एवं ज्योत्सना को प्रकट करने वाले आपको नमस्कार है। आपके घूमने से ही यह सारा संसार, चर व अचर संपूर्ण ब्रह्मांड घूमता है। और तुम्हारी किरणों से स्पर्श होते ही सब शुद्ध हो जाता है। हे सूर्यदेव तुम्हीं मूर्त, अमूर्त, स्थूल, सूक्ष्म स्वरूप हो, तुम्हीं निमेष, काष्ठ (दिशा) आदि से युक्त एवं क्षयात्मक काल हो। इसलिए तुम प्रसन्न होकर स्वयमेव ही अपना तेज शांत करो।

देवताओं एवं ऋषियों द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान भास्कर ने अपना तेज कम कर दिया। सूर्य के ऋक्मय तेज से पृथ्वी, यजुर्मय तेज से आकाश एवं

सामान्य तेज से स्वर्ग की उत्पत्ति हुई। विश्वकर्मा (त्वष्टा) ने सूर्य के मुखमण्डल से छटे हुए पंद्रह भागों से ही भगवान शिव का शूल, विष्णु का चक्र, वसुओं के भयंकर शंकु, अग्नि तथा वरुण की शक्ति, कुबेर की शिबिका व अन्याय देवताओं यक्षों तथा विद्याधरों के लिए भीषण शस्त्रों का निर्माण किया। सूर्य के पास अपने तेज का मात्र सोलहवां भाग ही शेष रहा।

इसके पश्चात् घोड़े का रूप धारण करके उत्तर कुरु प्रदेश में गए। जहां कि संज्ञा घोड़ी बनकर घास चर रही थी। घोड़ी परपुरुष की आशंका से अपनी पीठ की रक्षा करती हुई उस घोड़े (सूर्य) के पास पहुंची। उन दोनों के नासिका के मिलने से घोड़ी के नाक से नासत्य और दस्र नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। इसके बाद घोड़े का वीर्यपात हो गया। जिससे तलवार, ढाल, ध्वज, एवं धनुष बाण धारण किए हुए घोड़े पर सवार रेवन्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके बाद सूर्य घोड़े का रूप बदलकर वास्तविक रूप में हो गये। जिसे देखकर संज्ञा बहुत प्रसन्न हुई। सूर्य अपनी प्रियांकिनी संज्ञा को घर वापस लाये। सूर्य का बड़ा पुत्र वैवस्वत मनु हुआ। दूसरा पुत्र यम शाप के कारण धर्म-दृष्टि हुआ। सूर्य ने उसके शाप को कृमियों द्वारा पैर का थोड़ा मांस खा लेने मात्र से ही मुक्त कर दिया। पुत्री

यमुना, नदी रूप में होकर कलिंग देश के मध्य से बहने लगी। घोड़ी की नाक से उत्पन्न दोनों पुत्र अश्विनी कुमार कहलाये। जो महान चिकित्सक हुए।

संज्ञा का बड़ा पुत्र मनु हुआ। उसका नाम सूर्य का पुत्र होने के कारण सावर्णि पड़ा। जब बलि इन्द्र होंगे तब ये मनु होंगे। शनिश्चर को ग्रह मण्डल में स्थित किया। सबसे छोटी कन्या 'तपती' का ब्याह संवरण नामक नरेश से हुआ। उसने एक पुत्र को जन्म दिया।

वैवस्वत मन्वन्तर

वैवस्वत मन्वन्तर में आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्व मरुद्गण, भृगु और अंगिरा ये आठ देवगण हैं। इनमें आदित्य, वसु और रुद्र कश्यप जी के पुत्र हैं, साध्य वसु तथा विश्वेदेव धर्म के पुत्र हैं, भृगुगण भृगु मुनि के पुत्र और अंगिरागण अंगिरा मुनि के पुत्र हैं। इस सर्ग को मारीच सर्ग भी कहा जाता है। महात्मा ऊर्जस्वी यज्ञ भाग का उपभोग करने वाले इन्द्र हुए हैं। ये ही इन्द्र भूत, वर्तमान व भविष्य में भी पवित्र, धर्म आदि के कारण तथा आधिपत्य गुण वाले हैं। अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, गौतम, भारद्वाज विश्वामित्र तथा जमदग्नि ये इस मन्वन्तर के सप्तर्षि हैं।

वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभागोदिष्ट, करुष, वसुमान और पृषध्र ये नौ हैं। इस प्रकार वैवस्वत मन्वन्तर पूर्ण हुआ।

सावर्णिक मन्वन्तर

क्रौष्टुकि ने मार्कण्डेय जी से सावर्णिक मन्वन्तर में होने वाले देवादि के विषय में जानने की इच्छा प्रकट की। मार्कण्डेय जी बोले—संज्ञा की छाया के गर्भ से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र सावर्णि आठवाँ मनु होगा। इस मन्वन्तर में राम, व्यास, गालव, दीप्तिमान, कृप, ऋष्यशृंग तथा द्रोण ये सात ऋषि होंगे। सुतपा, अमिताभ और मुख्या ये तीन देवगण हैं तथा प्रत्येक गुण में बीस-बीस देवता हैं। ये सभी देवगण मरीचि पुत्र प्रजापति कश्यप जी के पुत्र हैं। इस मन्वन्तर में विरोचन पुत्र बलि, इन्द्र होंगे। जो दैत्य प्रतिज्ञा में बंधकर आज भी पाताल में रहते हैं। वे विरजा, आर्ववीर, निर्मोह, सत्यवाक् कृति, विष्णु ये मनु सावर्णि के पुत्र राजा होंगे।

॥ ओ३म नमश्चण्डिकायै ॥

देवी माहात्म्य

मधु कैटभ वध

आठवां मनु सूर्य के पुत्र सार्वणि को कहा गया है। स्वारोचिष मनु के पूर्व चंद्र वंश में उत्पन्न सुरथ सम्पूर्ण पृथ्वी के राजा हुए। सुरथ अपनी प्रजाओं का पालन पोषण पुत्रवत् करते थे। तभी कोलाविध्वंशी नामक राजा, राजा सुरथ से शत्रुता मोल लेने लगा। राजा सुरथ एवं कोला-विध्वंशी दोनों राजाओं में भीषण संग्राम छिड़ गया। सुरथ को परास्त होना पड़ा। सुरथ अपनी राजधानी में आकर मात्र अपने देश की सीमा तक ही राज्य करने लगा। परन्तु उसके प्रबल शत्रुओं ने यहां भी नहीं छोड़ा। राजा सुरथ के शक्तिशाली एवं दुष्ट आत्मीय जनों ने, मन्त्रियों ने सेना व कोष पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार प्रभुत्व और श्रीहीन होकर राजा सुरथ एक दिन घोड़े पर सवार

होकर शिकार खेलने के बहाने घनघोर जंगल के अन्दर चले गए। वहाँ उन्होंने मेधा मुनि के आश्रम को देखा। जहाँ हिंसक प्राणी भी शांत भाव से बैठे थे। राजा ने शिष्यों द्वारा सेवित मुनि को देखा। मुनि के चरणों में प्रणाम किया। मुनि ने भी राजा को उचित सम्मान दिया।

राजा सुरथ मुनि के आश्रम में ही रुककर इधर-उधर विचरण करते थे। मोह वश एक दिन राजा अपनी राजधानी के विषय में चिन्ता करने लगे। सोचने लगे—मेरे पूर्वजों द्वारा पालित पोषित राज्य मुझसे रिक्त हो गया है। मेरे दुष्ट सेवक राज-कार्य का संचालन ठीक से कर रहे होंगे या नहीं। मेरे पूर्वजों द्वारा कठिनता से संचित कोषों को वे नष्ट कर रहे होंगे। आदि-आदि···। इस प्रकार से चिन्ता मग्न थे कि उन्होंने आश्रम के पास में एक वैश्य को आते देखा। राजा ने नम्रतापूर्वक पूछा—तुम कौन हो। वैश्य ने कहा—मैं धनिक कुल में उत्पन्न समाधि नामक वैश्य हूँ। मेरे स्त्री एवं पुत्रों ने मेरा सारा धन छीनकर मुझे घर से बाहर खदेड़ दिया। अतः मैं दुःखी होकर वन में आया हूँ। अब मुझे यह पता नहीं कि अब मेरे स्त्री-पुत्रों का व्यवहार परिवर्तित हुआ है या नहीं। घर में कुशल है

या नहीं तथा उसके मंगल या अमंगल का भी ज्ञान मुझे नहीं है।

राजा ने पूछा—जिस स्त्री व पुत्रों ने तुम्हें घर से बाहर निकाल दिया। अब उनके प्रति तुम्हें इतना मोह क्यों है ? वैश्य ने कहा—यह भी मुझे समझ में नहीं आता कि जिन पुत्रों-स्त्री व बान्धवों ने मुझे बुरी तरह अपमानित करके सब कुछ छीनकर घर से बाहर खदेड़ दिया। फिर भी उन सबके प्रति मेरा मन आकर्षित क्यों है ? उन सबके प्रति मेरा मन कठोर क्यों नहीं हो रहा है ?

राजा सुरथ व समाधि वैश्य दोनों ही मुनि के सामने जाकर उनके चरणों में प्रणाम कर बैठ गये। राजा ने मुनि की आज्ञा प्राप्त करके पूछा—हे मुनिवर ! मुझे राज्य विहीन हो जाने पर भी राज्य से इतना मोह क्यों सता रहा है ? तथा यह वैश्य भी अपने स्त्री, पुत्रों और बांधवों द्वारा घर से निकाल दिए जाने पर भी उन सबके प्रति इतना अनुरक्त क्यों है। इस तरह हम दोनों ही ममता के चक्कर में पड़कर दुःखी हो रहे हैं ऐसा क्यों है ? हम ज्ञानवान होकर भी विवेक शून्य व मूर्ख हो रहे हैं क्यों ? कृपया समझाने का कष्ट करें।

ऋषि बोले—हे राजन ! सभी विषय मार्ग का ज्ञान प्राणियों को है। परन्तु विषय अलग-अलग हैं। कोई प्राणी

दिन में ही देखता है तो कोई रात्रि में ही और कोई तो दिन व रात्रि में दोनों समय ही समान रूप से देखता है। केवल मनुष्य ही ज्ञानी होते हों ऐसी बात नहीं है, पशु, पक्षी, मृग आदि भी ज्ञानी होते हैं। दिखाई पड़ने वाले ज्ञान के विषय में मनुष्य एवं पशु पक्षियों में समान रूप से है। उसमें कोई भेद नहीं है। यह देखो, यह पक्षी स्वयं भूख से पीड़ित होते हुए भी मोह के वशीभूत होकर अन्न के कण अपने बच्चों के मुख में डालते हैं। इस प्रकार मनुष्य भी अपने बच्चों के प्रति अनुरक्त होकर उसका पालन-पोषण करते हैं। परन्तु यह कार्य मनुष्य उपकार पाने की आशा में ही करता है। इस प्रकार सभी प्राणी ज्ञान के होते हुए भी महामाया के प्रभाव से मोह रूपी गड्ढे में गिरते हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि विष्णु की योगनिद्रा स्वरूपिणी महामाया ही सम्पूर्ण विश्व को मोहित करती है। वही महामाया ज्ञानियों को भी मोह की तरफ आकर्षित करती है। इस देवी ने ही सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न किया है तथा यही प्रसन्न होकर मनुष्यों को मोक्ष भी प्रदान करती है। वही महामाया पराविद्या, संसार बंधन स्वरूपा, मोह की कारण भूता देवी व ईश्वर की भी अधीश्वरी है।

राजा ने ऋषि से पूछा—हे महात्मन ! आपने जिस

महामाया का उल्लेख किया है, वह कौन है ? उनका स्वभाव और स्वरूप कैसा है ? मुझे जानने की इच्छा है।

ऋषि ने कहा—वह महामाया जगतमूर्ति वास्तव में नित्य और सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है। देवताओं के कार्य को करने के लिए इस देवी का आविर्भाव होता है। कल्पांत में सम्पूर्ण विश्व जलमय था, तब भगवान विष्णु शेषनाग की शय्या पर योगनिद्रा में सोये थे। उसी समय मधु एवं कैटभ नामक भयंकर दुर्दान्त राक्षस भगवान विष्णु के कान के मैल से पैदा हुए और ब्रह्मा जी की हत्या हेतु उद्यत हुए। ब्रह्मा ने मधु-कैटभ को अपने पास क्रोध मुद्रा में आते देखकर तथा भगवान विष्णु को सोते देखकर उन्हें जगाने के लिए एकाग्रचित् होकर योग निद्रा देवी की स्तुति की। ब्रह्मा जी ने कहा—हे सम्पूर्ण विश्व की अधिष्ठात्री देवी, विश्व की स्थिति एवं लय करने वाली भगवान विष्णु की परमशक्ति योगनिद्रा देवी की मैं स्तुति करता हूं। हे ब्रह्म-स्वरूपे, नित्ये, तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा, वषट्कार, सुधा, नित्य अक्षर (प्रणव) तथा तीनों मात्राओं अ, उ, म के रूप में स्थित हो। तथा प्रणव में जो बिन्दु रूप अर्द्ध मात्रा विशेष रूप से अनुच्चार्य है। वह हे देवी तुम्हीं हो। तुम्हीं संध्या, सावित्री और परम जननी हो। तुम्हीं जगत जननी एवं प्रकृति स्वरूपा हो, सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता एवं लयकर्ता

हो। हे देवी ! तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहस्वरूपा, महादेवी, महेश्वरी, सत्-रज-तम स्वरूपा और भयंकर मोह रात्रि हो। इस संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं उन सबकी शक्ति तुम्हीं हो। हे देवी! जब तुमने भगवान विष्णु को निद्रा के अधीन कर दिया है तो फिर तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ है ? क्योंकि तुम्हीं ने तो हमें विष्णु तथा भगवान शिव को बनाया है। हे देवी ! तुम किसी प्रकार मधु एवं कैटभ नामक राक्षस को अपने मोह में डाल दो। तथा भगवान विष्णु को निद्रा से उठाकर उन्हें मधु-कैटभ को मारने हेतु प्रेरित करो।

ऋषि बोले– ब्रह्मा जी द्वारा इस प्रकार मधु-कैटभ के संहार हेतु देवी की स्तुति किये जाने पर देखते ही देखते भगवान विष्णु के नेत्र, नासिका, बाहु और हृदय से निकल कर अव्यक्त अजन्मा भगवती देवी उनके समक्ष खड़ी हो गई। उसके बाद भगवान विष्णु भी निद्रा से मुक्त हुए। शेष शय्या से उठ खड़े हुए। फिर उन्होंने अत्यन्त शक्तिशाली, पराक्रमी, दुरात्मा एव क्रोध से लाल आँखें किये ब्रह्मा जी को मारने को तैयार मधु-कैटभ नामक राक्षसों को देखा। भगवान श्री मन्नारायण ने उन दोनों राक्षसों से पांच हजार वर्षों तक बाहु युद्ध किया। फिर उन दोनों राक्षसों ने भगवान विष्णु से वर मांगने को कहा।

भगवान ने कहा—यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो आज तुम दोनों मेरे हाथों से मारे जाओ। मुझे कोई अन्य वर नहीं चाहिए। दोनों राक्षसों ने सम्पूर्ण विश्व में जल ही जल देखा। फिर बोले—ठीक है। ऐसा ही होगा। परन्तु हम दोनों को वहाँ मत मारना जहाँ पृथ्वी जल में डूबी हो। दोनों राक्षसों की इस प्रकार की बातों को सुनकर भगवान विष्णु ने कहा—ठीक है, ऐसा ही होगा। फिर प्रभु ने उन दोनों राक्षसों को अपनी जाँघ पर रखकर चक्र से उनके सिर को काट दिया।

ऋषि बोले—इस प्रकार ब्रह्मा की प्रार्थना पर देवी महामाया प्रकट हुईं।

महिषासुर सैन्य वध

ऋषि ने राजा सुरथ से कहा—प्राचीन काल में जब इन्द्र देवताओं के राजा थे तथा महिषासुर दानवों का राजा था। तब देवताओं एवं दानवों में एक वर्ष तक भयंकर युद्ध हुआ। जिसमें देवताओं को पराजय का मुख देखना पड़ा। महिषासुर ने इन्द्र का स्थान ग्रहण किया। पराजित देवगण, ब्रह्मा, विष्णु व महेश के पास गये और युद्ध का सारा वृतान्त सुनाया। और कहा—महिषासुर ने सूर्य, अग्नि,

इन्द्र, वायु, यम, वरुण एवं अन्य देवताओं के कार्यों व अधिकारों को छीन लिया है। राक्षसों द्वारा स्वर्ग से निष्कासित देवगण मनुष्यों की भाँति पृथ्वी पर घूम रहे हैं। अतः हम सभी देवतागण महान कष्ट पाकर आपकी शरण में आये हैं। अब आप महिषासुर के संहार हेतु उपाय करें।

महिषासुर के दुष्कर्मों को सुनकर भगवान विष्णु एवं शिव की भौंहें क्रोध से तन गईं, मुंह टेढ़ा हो गया। क्रोधयुक्त भगवान विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव के मुख रूप से एक महान तेजपुञ्ज निकला तथा अन्य इन्द्र आदि देवताओं के शरीर से भी तेज निकला सभी तेज मिलकर एक हो गये। सारा तेजपुञ्ज मिलकर एक विशाल अंगार के गोला रूप में होकर सभी दिशाओं को प्रकाशित करने लगा। बाद में वह एक कान्ति युक्त नारी रूप में परिवर्तित हो गया। भगवान शिव के तेज से उस नारी का मुख, यम के तेज से केश, भगवान शिव के तेज से बाहु, चन्द्रमा के तेज से दोनों स्तन, इन्द्र के तेज से मध्य भाग, वरुण के तेज से जंघा तथा पिण्डली, पृथ्वी के तेज से नितम्ब, ब्रह्मा के तेज से चरण युगल, सूर्य के तेज से पैरों की अंगुलियाँ, वसुओं के तेज से हाथों की अंगुलियाँ, कुबेर के तेज से नाक, प्रजापति के तेज से दाँत, अग्नि के तेज से तीनों नेत्र, संध्या के तेज से दोनों भौहें, वायु के तेज से दोनों कान, इस प्रकार अन्य

देवताओं के तेज से महामाया की उत्पत्ति हुई। जिन्हें देख कर सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए।

इसी तरह सभी देवताओं ने उच्च स्वर में देवी का जय-जयकार किया। शिव ने शूल कृष्ण (विष्णु) ने चक्र, वरुण ने शंख, अग्नि ने शक्ति, वायु ने धनुष-बाण, देवराज इंद्र ने वज्र, ऐरावत हाथी का एक घण्टा, यमराज ने कालदण्ड से दण्ड, वरुण ने पाश, प्रजापति ने स्फटिकाक्ष की माला, ब्रह्मा ने कमण्डल, सूर्य ने अपनी किरणों से तेज पुंज, काल ने चमचमाती ढाल एवं तलवार, समुद्र ने निर्मल हार, दो वस्त्र, चूड़ामणि, दो कुण्डल, कड़ा, भुजाओं के लिये केयूर, पैरों के लिए नूपुर, गले में हंसली, अंगुलियों में रत्न जड़ित अंगूठियां, विश्वकर्मा ने फरसा व अन्यान्य शस्त्रास्त्र तथा अभेद कवच, कभी न मुरझाने वाले कमल पुष्प की माला, हिमालय ने वाहन हेतु सिंह व नाना प्रकार के रत्न, कुबेर ने सुरापूर्ण पात्र, नागराज ने महामणियों से युक्त नागहार तथा अन्यान्य देवताओं से शस्त्रास्त्रादि प्राप्त कर व सम्मानित होकर बार-बार अट्टहास करती हुई उच्च स्वर में गर्जना की। देवी की इस भयंकर ध्वनि से सभी लोक भयभीत हो गये। समुद्र कांपने लगा, पृथ्वी हिलने लगी, पर्वत चलायमान हो गये। सभी देवगण देवी की जय-जयकार करते हुए स्तुति करने लगे।

तीनों लोकों को क्षुभित देखकर असुरगण शस्त्रास्त्र लेकर हर सम्भव स्थिति का सामना करने के लिए तैयार हो गये। क्रोधित महिषासुर ने कहा—यह क्या हो रहा है? कहकर घोर गर्जना की। फिर जिधर से देवी की गर्जना की ध्वनि आ रही थी। उस ओर अपने सैन्य बल के साथ दौड़ा। फिर उसने देखा कि देवी के शरीर से एक विचित्र आभा निकलकर सभी दिशाओं को प्रकाशित कर रही है। देवी के चरणों के भार से पृथ्वी नीचे की ओर धंसी जा रही है तथा उनका मुकुट आकाश को स्पर्श कर रहा है। अपने धनुष की टंकार से सम्पूर्ण भूमण्डल को कंपित करती हुई अपनी सहस्त्रों भुजाओं को फैलाये दिशाओं को आच्छादित कर शोभा को प्राप्त हो रही थीं।

देवी का दानवों के साथ युद्ध छिड़ गया। सभी दिशायें छोड़े गये शस्त्रास्त्रों से भर गयीं। असुर सेनापति चिक्षुर एवं चामर नामक असुर ने अपनी चतुरंगिणी सेना को साथ लेकर देवताओं से युद्ध छेड़ दिया। उदग्र नामक महाअसुर साठ हजार रथी सेना लेकर एवं महाहनु नामक महाअसुर एक करोड़ रथी को लेकर युद्ध के मैदान में उतर आया। असिलोमा नामक महाअसुर पांच करोड़ रथी सेना तथा महा दानव वाष्कल साठ हजार रथी सेना को लेकर लड़ रहा था। इसी प्रकार पांच लाख रथियों के

साथ विडाल नामक महादैत्य, पांच लाख रथियों के ही साथ काल नामक राक्षस युद्ध कर रहे थे।

देवी का वाहन सिंह क्रोध से गरजते हुए राक्षसी सेनाओं के मध्य में निर्भय होकर ऐसे घूम रहा था जैसे स्वतन्त्र रूप से वन में विचरण कर रहा हो। देवी के श्वांस छोड़ने से सौ गण शस्त्रों से युक्त उत्पन्न हो गए। जो युद्ध में राक्षसों का भीषण संहार करने लगे। इस युद्धोत्सव में देवगण आकाश से शंख, नगाड़े, मृदंग व तुरही आदि बजाने लगे। देवी भी युद्ध में अपने दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर राक्षसी सेना का भीषण संहार करने लगी।

देवी ने सभी राक्षसी सेनाओं को उनकी सवारी हाथी, घोड़ों आदि को काट काटकर रक्त की नदियां बहा दीं। पृथ्वी पर चारों तरफ शव ही शव बिखरे पड़े थे। थोड़े ही समय में सम्पूर्ण दानवों की सेना पूर्णतया विनष्ट हो गई। जिससे प्रसन्न होकर आकाश से देवगण पुष्पवर्षा करने लगे।

महिषासुर-वध

सभी दानवों के नष्ट हो जाने पर असुर सेनापति चिक्षुर देवी के पास आकर देवी पर शस्त्रास्त्रों से भीषण

प्रहार करने लगा। देवी ने राक्षस के सभी शस्त्रों को काटते हुए, उसके सारथी, घोड़े व रथ को नष्ट कर दिया।

उसके बाद चिक्षुर ने देवी के वक्ष पर त्रिशूल फेंका। देवी ने भी दानव के त्रिशूल को अपनी तरफ आते देखकर अपना शूल उस पर फेंका। जिससे दानव का त्रिशूल नष्ट तो हो ही गया। साथ ही चिक्षुर का शरीर भी टुकड़े-२ होकर नष्ट हो गया।

चिक्षुर के नष्ट होने के बाद चामर नामक महा दानव हाथी पर चढ़कर देवी से युद्ध करने के लिए आया। चामर ने देवी पर शक्ति फेंक कर प्रहार किया। वह शक्ति देवी के हुंकार से नष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। फिर चामर ने त्रिशूल से प्रहार किया। देवी ने अपने बाणों से उसके त्रिशूल को भी नष्ट कर दिया।

तब उदग्र नामक महादानव को भी देवी ने विशाल वृक्षों व पत्थरों को चलाकर मार डाला। तथा कराल भी दांत मुक्का एवं थप्पड़ों की मार से यमलोक को गया। इसी प्रकार गदा के प्रहार से उद्धत नामक दैत्य, भिन्दीपाल से बाष्कल दैत्य, बाणों से ताम्र एवं अन्धक नामक असुरों को मार डाला। इस प्रकार से असि, असिलोमा, विडाल, उग्रास्य, उग्रवीर्य, दुर्द्धर, दुर्मुख एवं महाहनु आदि महान दैत्य योद्धा मारे गए।

अपने योद्धाओं की मृत्यु को देखकर महिषासुर अत्यन्त क्रोधित हुआ और भैंसे का रूप धारण करके देवी के गणों को भयभीत करने लगा। महिषासुर किसी को सींग से, किसी को पूँछ से, किसी को खुर से तो किसी को अपने तीव्र श्वांस के वेग से पीड़ित करते हुए देवी के वाहन सिंह को मारने को तैयार हुआ। क्रोध के आवेश में पैरों से पृथ्वी को कुरेदते हुए सींग से पर्वत को उखाड़ते, पूँछ को समुद्र में पटक-२ कर समुद्र के जल को विक्षुब्ध करते हुए भीषण गर्जना के साथ सिंह पर आक्रमण करने के लिए बढ़ा। उधर देवी इस महाराक्षस को मारने के लिए तैयार हो गई। देवी ने पाश फेंक करके महिषासुर को बाँध लिया। तब महिषासुर ने भैंसे का रूप छोड़कर सिंह का रूप धारण किया उसके बाद जैसे देवी उसका सिर काटने हेतु आगे बढ़ी कि वह राक्षस हाथ में तलवार लिए पुरुष रूप हो गया। देवी ने महिषासुर को बाण आदि अनेकों शस्त्रास्त्रों से बेध डाला। तब उस राक्षस ने विशाल हाथी का रूप धारण करके अपनी सूँड से सिंह को खींचना प्रारम्भ किया। देवी ने उसकी सूँड को काट दिया। तब दानव पुनः भैंसे का रूप धारण करके तीनों लोकों को भयभीत करने लगा।

देवी ने उत्तम सुरा का पान किया। जिससे उनकी

आंखें लाल हो गईं। दानव अपने सींग से पर्वत को उखाड़ कर देवी के ऊपर फेंककर उनके क्रोध को जागृत करने लगा। देवी मदहोश, लड़खड़ाते अस्पष्ट शब्दों में बोली —अरे मूर्ख मैं जब तक सुरापान कर रही हूं तब तक तू गर्ज ले। उसके बाद मेरे द्वारा तेरे मारे जाने पर यह देव-गण खुशी में गर्जना करेंगे। फिर देवी छलांग लगाकर दानव की छाती पर चढ़ गई। उसे अपने पैरों के भार से पीड़ित कर दिया। फिर उसे त्रिशूल से प्रहार कर यम-लोक को पहुंचा दिया।

———

शक्रादिकृत देवी स्तुति

महिषासुर को देवी भगवती के द्वारा मारे जाने के बाद इन्द्र आदि सभी देवताओं ने देवी की निम्न प्रकार से स्तुति की। देवगण बोले—

हे सम्पूर्ण देवताओं के संयुक्त शक्ति पुञ्ज से उत्पन्न सभी देवर्षियों द्वारा पूजित एवं सम्भावित, सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त कल्याणी आपको नमस्कार है। अकथनीय और अपरिमित प्रभाव एवं शक्तिशाली संपूर्ण जगत को पालन करने वाली तथा अशुभ का विनाश करने वाली आपको नमस्कार है। पुण्यात्माओं के यहाँ लक्ष्मी स्वरूप पापा-

त्माओं के यहाँ दरिद्र रूप, पवित्र हृदय वाले पुरुषों में बुद्धि स्वरूप, सत्पुरुषों में श्रद्धा, कुलीन पुरुषों में तुम लज्जा हो। हे देवी तुम्हें नमस्कार है। तुम विश्व का पालन करो। हे देवी आपका अचिन्त्य स्वरूप, दानवों का विनाश करने में तुम्हारी अद्भुत शक्ति एवं चरित्र अवर्णनीय है। सम्पूर्ण सृष्टि के कारण, सत्व, रज और तमोगुण से युक्त होने पर भी दोष रहित, ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश द्वारा भी अगम्य, आद्य स्वरूपा हैं, यह जगत आपका ही अंश स्वरूप है। हे देवी! यज्ञों में आपके नाम के उच्चारण मात्र से ही देवताओं की तृप्ति हो जाती है, पितृगणों की तृप्ति होती है तथा तुम्हीं स्वाहा एवं स्वधा हो। तुम्हीं मोक्षदात्री, अचिंत्य महाव्रत स्वरूपा, जितेन्द्रिय, तत्वसार, एवं दोष रहित तथा मोक्ष के आकांक्षी ऋषियों को सिद्धिदात्री हो। हे देवी! तुम्हीं शब्द स्वरूपा, अत्यन्त निर्मल ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद के आश्रय स्वरूप अर्थात् वेदत्रयी, ऐश्वर्यशालिनी, विश्व के जीवन रक्षक एवं कृषिस्वरूप हो तथा विश्व के घोर कष्टों को भी निवारण करने वाली हो। हे देवी! आप बुद्धि स्वरूप, भवसागर को पार कराने वाली, नौका स्वरूप कैटभ नामक महादानव के संहारकर्ता, भगवान विष्णु के हृदय की निवासिनी लक्ष्मी हो, मुकुट रूप में चन्द्रमा को धारण करने वाले भगवान शंकर के

वामाङ्गी देवी गौरा हो। हे देवी ! महादानव महिषासुर आपके अति सुन्दर कमनीय एवं मन्द मुस्कान वाली स्वच्छ एवं निर्मल स्वर्णाभ कांति युक्त मुखमण्डल पर भी प्रभावित नहीं हुआ और उसने क्रोध पूर्वक साहस करके आप पर आक्रमण कर दिया। जिसके परिणाम स्वरूप महिषासुर को यमलोक जाना पड़ा।

हे देवी ! तुम प्रसन्न होओ। क्योंकि तुम्हारे प्रसन्न होने से ही इस जगत की उत्पत्ति होती है तथा आपके क्रोध करने पर सम्पूर्ण कुलों का विनाश हो जाता है।

हे देवी ! आपने महिषासुर को मार करके सारा कार्य सिद्ध कर लिया है। बस आपसे यही निवेदन है कि हम लोग जब भी आपत्ति में आपको याद करें। आप आकर हमारी आपत्तियों को दूर करें। जो मनुष्य आपकी स्तुति करें उसके धन सम्पत्ति और स्त्री आदि की वृद्धि के लिए आप सदा तत्पर रहें। देवी तथास्तु कहकर अन्तर्धान हो गईं।

शुम्भ के दूत का देवी के पास जाना

कुछ समय बाद शुम्भ और निशुम्भ नामक राक्षसों ने इन्द्र से राज्य छीनकर स्वर्ग लोक (देवलोक) पर अधि-

कार कर लिया। साथ ही सूर्य, चन्द्र, यम, कुबेर, वरुण आदि सभी देवताओं के अधिकारों को छीनकर स्वयं संचालित करने लगे। राक्षसों द्वारा तिरस्कृत, अपमानित एवं राज्य भ्रष्ट देवगण दुःखी हृदय से भगवान विष्णु की माया देवी माँ दुर्गा की स्तुति करने लगे।

हे देवी ! आपको नमस्कार है, महादेवी शिवा, प्रकृति एवं भद्रा माँ जगदम्बा को नमस्कार है। रौद्रा, नित्या, गौरी, धात्री, एवं जगत की प्रतिष्ठा करने वाली देवी कृत्या को नमस्कार है। ज्योत्सनामयी, चन्द्ररूपिणी एवं सुख स्वरूपा देवी को नमस्कार है तथा ऋद्धि एवं सिद्धि देने वाली देवी को नमस्कार है। नैऋति पर्वतों की लक्ष्मी, शर्वाणी स्वरूपा जगदम्बा, दुर्गा, दुर्गपारा, सार सत्वरूप, सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा धूम्रा देवी को बारम्बार नमस्कार है।

अत्यन्त सौम्य एवं अत्यन्त रौद्र रूप वाली, जगत की आधारभूता देवी आपको नमस्कार है। सभी प्राणियों में विष्णु की माया से जानी जाने वाली देवी को नमस्कार है। सभी प्राणियों में चेतना स्वरूप, बुद्धि और निद्रा रूप देवी आपको नमस्कार है।

सभी प्राणियों में क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा एवं क्षमा रूप देवी को बारम्बार नमस्कार है।

सभी प्राणियों में जाति रूप से स्थित, लज्जा रूप, शान्ति रूप, श्रद्धा रूप और कान्ति रुप देवी को नमस्कार है।

जो देवी सभी प्राणियों में लक्ष्मी रुप, धैर्य रुप, वृत्ति रुप, स्मृति रुप एवं दया रुप में स्थित है उन्हें बारम्बार नमस्कार है।

जो देवी प्राणियों की नीति, तुष्टि, पुष्टि, मातृ एवं भ्रान्ति रुप में स्थित हैं उन्हें बारम्बार नमस्कार है।

जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में इन्द्रियों की अधिष्ठात्री एवं सदैव प्राणियों में व्याप्त रहने वाली देवी चैतन्य रुप है उन्हें बारम्बार नमस्कार है। वह कल्याण की साधन-भूता ईश्वरी हमारा कल्याण एवं शुभ करते हुए हमारी आपत्तियों को आकर नष्ट करें।

मार्कण्डेय जी बोले—जब देवगण देवी की स्तुति कर रहे थे, तभी पार्वती जी गंगा में स्नान करने आईं। देवताओं को स्तुति करते हुए देखकर देवी पार्वती ने पूछा। हे देवगण ! तुम लोग किसकी आराधना कर रहे हो ? तत्क्षण ही पार्वतीजी के देह के कोश से शिवा प्रकट होकर बोलीं—ये देवगण निशुम्भ द्वारा पराजित एवं शुम्भ द्वारा निष्कासित मेरी स्तुति कर रहे हैं। पार्वतीजी के देह के कोश से उत्पन्न होने के कारण शिवा का नाम 'कौशिकी'

पड़ा। तथा उनका शरीर कृष्णवर्ण का होने के कारण 'कालिका' नाम पड़ा और हिमालय में निवास किया।

शुम्भ और निशुम्भ के सेवक चण्ड-मुण्ड वहाँ आये और देवी का दर्शन किया। उसके बाद दोनों ही शुम्भ के पास जाकर देवी के अपूर्व शोभा और मनोहारी रूप का वर्णन किया और बोले—हे असुरेश्वर ! आज तक हमने ऐसा अत्यन्त मनोहारी और रमणीय, कमनीय व रूपवती तथा सुन्दर अंगों वाली स्त्री रत्न को कभी नहीं देखा। परन्तु इस स्त्री रत्न स्वरूप कल्याणी देवी को क्यों नहीं ग्रहण कर रहे ?

चण्ड-मुण्ड के वचनों को सुनकर शुम्भ ने सुग्रीव नामक दूत को देवी के पास भेजा। तथा किसी भी तरह देवी को प्रसन्न करके यहाँ आने हेतु प्रेरित करने के लिए कहा। दूत सुग्रीव देवी के पास गया और मधुर वाणी में बोला—हे देवी ! तीनों लोकों के स्वामी शुम्भ का मैं दूत हूं। उन्होंने जो सन्देश आपके लिए भेजा है कृपया उसे सुनें। दूत ने कहा—हे देवी ! दैत्येश्वर ने कहा है कि मैं तीनों लोकों का अधिपति हूँ। सभी देवगण मेरे आधीन हैं। सभी यज्ञों के भागों को मैं ही भोगता हूं। अतः तुम भी मेरे पराक्रम को देखते हुए महापराक्रमी मेरे छोटे भाई निशुम्भ को

अथवा मुझे पति रूप में स्वीकार करो। तुम परम ऐश्वर्य को प्राप्त करोगी।

देवी ने दूत से कहा—हे दूत! तुम ठीक कहते हो। इस समय शुम्भ निशुम्भ जैसा कोई पराक्रमी नहीं है। परन्तु मैंने बचपन में एक प्रतिज्ञा कर ली थी उसे तोड़ना सम्भव नहीं है। मैंने प्रतिज्ञा यह की थी कि जो व्यक्ति युद्ध में मुझे जीतकर मेरा दर्प चूर कर देगा वही मेरा पति होगा।

दूत बोला—हे देवी! तुम कैसी घमण्ड युक्त बातें कर रही हो। जिस शुम्भ निशुम्भ के सामने इन्द्र आदि कोई भी देवता नहीं ठहर सकता। उसके सामने तुम स्त्री होकर कैसे जाओगी? तुम मेरी बात मानो और प्रेम से ही उनके पास चलो। अन्यथा बालों को खींचकर अपमानित करके ले जाई जाओगी। इसलिए सम्मान के साथ चली चलो।

देवी बोली—मैं क्या करूँ? मैंने तो बिना सोचे-समझे पहले ही जो प्रतिज्ञा कर ली है, उसे तोड़ना कठिन है। तुम जाओ। तथा मेरे इस सन्देश को दैत्य से कह दो।

———

धूम्रलोचन वध

देवी के वचनों से क्रोधित हुए दूत ने वापस आकर दैत्येन्द्र शुम्भ से सारा वृतान्त सुनाया। शुम्भ भी क्रोध से तमतमा गया और दैत्य सेनापति धूम्र लोचन को देवी का केश पकड़कर लाने का आदेश दिया। शुम्भ की आज्ञा पाते ही धूम्रलोचन साठ हज़ार दैत्यों को लेकर देवी के पास पहुंचा और बोला—यदि तुम स्वयमेव ही शुम्भ निशुंभ के पास नहीं चलोगी तो हमें तुम्हारे केश पकड़ कर बल-पूर्वक ले जाना पड़ेगा। इसलिए स्वयं ही चलो तो अच्छा है।

देवी धूम्रलोचन से बोली—तुम्हें तो दैत्याधिपति शुंभ ने दल बल के साथ भेजा है। यदि तुम बलपूर्वक ले जाना चाहोगे तो मैं क्या कर सकती हूं। देवी की इस बात को सुनते ही धूम्रलोचन देवी की ओर दौड़ा, परन्तु देवी की एक ही हुंकार में भस्म हो गया। शुंभ धूम्रलोचन सहित सारी सेना के मारे जाने का संदेश पाकर भयंकर क्रोध से काँपने लगा। फिर चण्ड मुण्ड को देवी एवं उनके वाहन को जीवित या मृतावस्था में पकड़ कर लाने का आदेश दिया।

चण्ड-मुण्ड-वध

अपने स्वामी की आज्ञा पाते ही चण्ड मुण्ड अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ हिमालय में स्थित देवी के पास पहुंचकर उन्हें मुस्कराते हुए देखा। चण्ड-मुण्ड को अपनी सेनाओं के साथ अपनी तरफ आते देखकर देवी क्रोधित हो उठीं। उनका मुँह क्रोध से कृष्ण वर्ण का हो गया। क्रोध से देवी ने अपनी भृकुटि को चढ़ाते ही उनके ललाट से खड्ग-पाश धारण की हुई भयंकर रूप वाली, खट्वाङ्ग युक्त मुण्डमाला से सुशोभित, बाघम्बर धारण किये, शुष्क मांस वाली, जीभ को बाहर लपलपाती हुई तथा भीतर को घुसी हुई नेत्र वाली देवी का आविर्भाव हुआ। उसके बाद तत्क्षण ही वह देवी राक्षसों पर टूट पड़ी एवं अपने भीषण प्रहार से राक्षसों को मारते हुए उनके हाथी घोड़े आदि सभी दैत्यों का चर्वण करने लगीं। इस प्रकार कुछ ही समय में देवी ने लगभग सभी दैत्य सेना को नष्ट कर दिया। जिससे चण्ड क्रोधित होकर देवी काली की ओर दौड़ा और अपने दिव्य अस्त्रों से प्रहार किया। फिर काली भयंकर अट्टहास करते हुए वाहन सिंह पर चढ़कर अति वेग से चण्ड की ओर दौड़ी और चण्ड के केश पकड़कर उसकी गर्दन अपनी तलवार से काट ली। गर्दन कटते समय चण्ड

के भयंकर गर्जन करने से तीनों लोक कांप उठे।

चण्ड को मरा हुआ देखकर मुण्ड भीषण क्रोध के साथ देवी काली की ओर दौड़ा। तब देवी ने अपने खट्-वाङ्ग से उसका सिर काट दिया। शेष सभी दैत्य सेना अपनी प्राण रक्षा हेतु भाग खड़ी हुई। देवी काली चण्ड मुण्ड दोनों के मस्तकों को लेकर देवी चंडिका के पास गयी और उन्हें समर्पित करती हुई बोली—मैंने इन महादैत्य चण्ड मुण्ड को मार दिया। जो आपको भेंट स्वरूप दे रही हूं। अब शुंभ निशुंभ का वध आप ही करना। देवी चंडिका प्रसन्न होकर काली से बोलीं—तुम चण्ड मुण्ड के सिर को लेकर यहाँ आई हो। अतः आज से तुम्हारा नाम विश्व में 'चामुण्डा' देवी के नाम से जाना जायेगा।

रक्तबीज का वध

चण्ड-मुण्ड के सभी सेना सहित विनाश को सुनकर शुम्भ और आग बबूला हो गया। शुम्भ ने रक्तबीज को आदेश दिया कि युद्ध में उन्मत्त देवी को मार डालो।

यह सुनकर रक्तबीज नामक महाअसुर युद्ध में आया। रक्तबीज की विशेषता थी कि उसके शरीर से जितनी बूंद रक्त पृथ्वी पर टपकता था। उतने ही राक्षस उसी की

शक्ति के समान बलशाली उत्पन्न हो जाते और युद्ध करने लगते। इस प्रकार करोड़ों की संख्या में रक्तबीज उत्पन्न होकर युद्ध करने लगे। इस प्रकार पूरा विश्व असुरों से ही व्याप्त हो गया। देवगण भयभीत हो गए। तब चण्डिका देवी काली से बोलीं। हे काली ! तुम अपना मुँह खोलो और मैं जैसे ही इन राक्षसों को मारती हूं। वैसे ही इनका रक्त पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही तुम पी जाओ तथा राक्षसों का भक्षण करती जाओ। ऐसा करने पर ही इस राक्षस की वृद्धि रुक जायेगी। कहकर चण्डिका असुरों का संहार करने लगीं और काली उन असुरों के रक्त व उन्हें (दैत्यों को) भक्षण करने लगीं। इस प्रकार देवी चामुण्डा ने रक्तबीज के रक्त का पान किया एवं चण्डिका देवी ने रक्तहीन रक्तबीज को मार कर सदा सदा के लिए पृथ्वी पर सुला दिया।

———

निशुम्भ-वध

रक्तबीज व अन्य राक्षस सेनापतियों को विशाल राक्षस सेना के साथ मारे जाने के बाद शुम्भ एवं निशुम्भ दोनों ही राक्षस बहुत क्रोधित हुए। निशुम्भ अपनी विशाल दैत्य सेना को लेकर देवी की ओर दौड़ा। उसके साथ में

अनेक पराक्रमी व शक्तिशाली भयंकर शस्त्रों से सुसज्जित दैत्य चल रहे थे। दूसरी तरफ से शुम्भ भी अपनी विशाल सेना के साथ देवी की तरफ बढ़ा। भीषण युद्ध छिड़ गया। राक्षसों ने बाण वर्षा करके देवी को ढक दिया। निशुम्भ ने तेज व भारी तलवार से देवी के वाहन सिंह पर प्रहार किया। इस पर देवी ने क्षुरप्र नामक अस्त्र से निशुम्भ के तलवार व अष्टचन्द्रक ढाल को काट दिया। फिर निशुंभ ने देवी पर शक्ति से प्रहार किया। देवी ने उस शक्ति को भी अपनी तलवार से खण्डित कर दिया। इस प्रकार निशुम्भ ने शूल, गदा, फरसा आदि अन्यान्य शस्त्रों से देवी पर प्रहार किया और देवी ने निशुम्भ के सभी शस्त्रों को विफल करते हुए महादानव निशुम्भ को घायल करके पृथ्वी पर गिरा दिया।

निशुम्भ चेतनावस्था में आने पर बाणों की भीषण वर्षा करके देवी एवं उनके वाहन सिंह को घायल करने लगा।

शुम्भ-वध

दानवगण शुंभ अपने भाई निशुंभ की मृत्यु को देख कर क्रोधित हुआ। वह देवी से बोला—हे दुष्ट दुर्गे! तुम

अपनी शक्ति का झूठे घमंड मत करो। तू तो मनुष्यों की भाँति दूसरे के बल पर युद्ध कर रही है। यदि साहस है तो अकेले युद्ध करो। इसके बाद ही ब्रह्माणी, वैष्णवी आदि शक्तियाँ देवी के शरीर में अन्तर्भूत हो गईं। देवी बोली, 'हे दैत्य मैं अकेली ही लड़ रही हूं। मैं इन विभूतियों द्वारा अनेक रूप में उपस्थित हो रही हूँ। ठहरो।

देवी एवं दानवों में भयंकर युद्ध छिड़ गया। शुंभ ने देवी पर बाण आदि अन्य तीखे अस्त्रों को छोड़ा और देवी ने सभी को विफल कर दिया। जब-जब देवी ने शुंभ के शक्ति, चन्द्र, ढाल एवं तलवार आदि शस्त्रों को काटकर रथ के घोड़ों को निर्जीव कर दिया तथा शुम्भ चण्डिका देवी पर दौड़ा। देवी दानव के साथ बाहु युद्ध करने लगी। फिर देवी ने शुम्भ को पृथ्वी पर पटक दिया। दैत्यराज के आक्रामक रुख को देखकर देवी ने अपने शूल से उसके हृदय को बेध दिया। जिससे दैत्यराज दानव मृत्यु को प्राप्त होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

शुम्भ के मरते ही सभी देवतागण पुनः अपनी शक्ति से सम्पन्न हो गए। तथा अपने कार्यों को सुचारू रूप से करने लगे।

———

देवी स्तोत्र

शुम्भ-निशुम्भ के मारे जाने के बाद सभी देवतागण देवी की स्तुति करने लगे। बोले—

देवी ने कहा—

हे शरणागतों के दुःखों को दूर करने वाली, जगत माता, विश्वेश्वरी, चराचर जगत की अधीश्वरी प्रसन्न होवो और विश्व का कल्याण करो। तुम जगत का एक मात्र आधार पृथ्वी रूप हो। अलंघनीय पराक्रम वाली देवी तुम्हारे जलरूप से सारा विश्व सन्तुष्ट हो रहा है। हे देवी ! तुम अनन्त शक्ति सम्पन्न वैष्णवी शक्ति, विश्व की बीज रुप परामाया तथा पृथ्वी पर मुक्ति का एक मात्र कारण हो व तुम्हीं ने सम्पूर्ण जगत को मोहित कर रखा है। सम्पूर्ण विद्याएँ स्त्रियाँ और पूर्ण ब्रह्माण्ड तुम्हारे ही रूप के भिन्न-भिन्न रूप हैं। यह जगत एक मात्र तुम्हीं से व्याप्त है, तुम स्तवन करने योग्य पदार्थों से परे एवं परावाणी हो।

हे देवी ! तुम सर्वरुपा हो, भुक्ति एवं मुक्ति को देने वाली हो। इससे श्रेष्ठ शक्ति तुम्हारी और क्या हो सकती है। सभी मनुष्यों के हृदय में स्थित बुद्धि स्वरुप, स्वर्ग एवं मोक्ष को प्रदान करने वाली देवी नारायणी तुम्हें बार-

बार नमस्कार है। विश्व के विनाश में समर्थ कला काष्ठादि रूप से अवस्था परिवर्तन की ओर ले आने वाली देवी तुम्हें नमस्कार है। हे सभी प्रकार मंगल को प्रदान करने वाली, कल्याणी, सभी प्रकार के मोक्षों (चतुष्ट्य) की सिद्धि प्रदान करने वाली, शरणागतों की माँ, त्रिनेत्री गौरी तुम्हें नमस्कार है। सृष्टि की स्थिति एवं विनाश की शक्ति स्वरूप, सनातनी, गुणाश्रये, गुणमये हे नारायणी तुम्हें नमस्कार है।

शरणागत, दीन-दुःखियों के दुःखों को दूर करने वाली सर्वप्रकारेण कष्ट निवारिणी, हंस युक्त वाहन पर ब्रह्माणी रूप धारण कर सुशोभित होने वाली एवं मन्त्रित कुशों से जल छिड़कने वाली देवी नारायणी तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। माहेश्वरी रूप धारण कर त्रिशूल, चन्द्रमा एवं सर्प को धारण करने वाली वृषभ की सवारी करने वाली, मोरों एवं कुत्तों से घिरी हुई कौमारी रूप धारण करने वाली पाप रहित तथा शंख, चक्र, गदा शारंग धनुष तथा दिव्य शस्त्रों को धारण करने वाली वैष्णवी रूप नारायणी देवी तुम्हें शत्-शत् नमस्कार है।

महाचक्र को धारण करने वाली एवं दांतों पर (बाराह रूप धारण कर) पृथ्वी को उठाने वाली, कल्याणी, नृसिंह रूप धारण कर दैत्यों के विनाश के लिए सब समय तैयार

एवं तीनों लोकों की रक्षा में निरन्तर व्यस्त तुम्हें नमस्कार है। सहस्र नयनों से युक्त कांतिमति वृत्रासुर के प्राणों को हरण करने वाली, किरीट एवं महावज्र को धारण करने वाली देवी तुम्हें नमस्कार है। शिवदूती रूप धारण करके दैत्यों एवं उनकी विशाल सेना को नष्ट करने वाली, विशाल दाढ़ों के कारण भयंकर मुख वाली मुंडमाला से युक्त मुण्डमालिनी, चामुण्डा देवी तुम्हें बारम्बार नमस्कार है।

लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा ध्रुवा, महारात्रि, महामाया, मेधा, सरस्वती, वरा, भूति, बाभ्रवी, तामसी, नियंता, ईशा देवी नारायणी ! तुम प्रसन्न होवो, तुम्हें नमस्कार है। चारों दिशाओं में व्याप्त हाथ, पैर, आंख सिर, मुख, कान, नाक वाली, सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वशक्ति सम्पन्न देवी दुर्गे ! तुम मुझे सब प्रकार से भय मुक्त करो, तुम्हें नमस्कार है। हे कात्यायनि, तीन नेत्रों से सुशोभित सौम्यमुख वाली देवी सभी प्रकार के भयों से मेरी रक्षा करो।

विद्या संपूर्ण शास्त्र ज्ञानदीप वेदों के आदि वाक्यों से पूर्ण होते हुए भी हे देवी ! महा अन्धकारमय ममतारूपी गड्ढे से तुम्हारे सिवा और कौन रक्षा करने वाला है। जहाँ कि भयंकर राक्षस, सर्प, शत्रु चोरों का समूह भीषण

दावानल हो वहां तथा समुद्र के बीच में भी हे देवी ! तुम रक्षा करने वाली हो। हे देवी ! तुम विश्व पालन कर्त्ता विश्वेश्वरी हो, विश्व को धारण करने वाली विश्वात्मिका हो, भगवान विश्वेश्वर की पूजनीया हो तथा नम्रतापूर्वक भक्ति करने वाले ब्रह्मा जी भी तुम्हारे आश्रयी हैं। हे देवी ! तुमने जिस प्रकार असुरों से रक्षा की उसी प्रकार शत्रुओं के भय से संपूर्ण विश्व के पापों को पापों के फल-स्वरूप उत्पन्न महामारी को व उपद्रवों को शाँत करो। हे विश्व कष्ट निवारिणी, तीनों लोकों की पूजनीया देवी ! प्रसन्न होकर सभी को शुभ वरदान दो।

श्री देवी ने कहा—

हे देवताओं संसार के कल्याण हेतु तुम जिस वर की अभिलाषा रखते हो, उसे सहर्ष प्रकट करो। उस वर को मैं अवश्य दूंगी।

देवताओं ने कहा—

हे अखिलेश्वरी! तुम तीनों लोकों को घोर आपदाओं से मुक्त करो तथा शत्रुओं का नाश करो। हम आपसे यही वरदान मांगते हैं।

देवी ने देवताओं से कहा—कि वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाइसवें युग में शुम्भ निशुम्भ नामक दो दैत्य उत्पन्न होंगे। उस समय मैं यशोदा कुल में यशोदा के गर्भ से

उत्पन्न होकर विन्ध्याचल पर्वत पर निवास कर उन राक्षसों को नष्ट करूँगी। उसके बाद भयंकर रूप धारण करके विप्रचित नामक राक्षस को नष्ट करूँगी।

विप्रचित नामक दानवों के रक्त को पान करने से मेरी दन्त पंक्तियाँ कुसुम के समान लाल रंग की हो जाएगी। तब स्वर्ग में देवगण तथा मृत्यु लोक में मनुष्य मुझे 'रक्तदन्तिका' कहकर स्तुति करेंगे। पृथ्वी पर सौ वर्षों तक अनावृष्टि काल रहने पर देवताओं एवं मुनियों द्वारा स्तुति किए जाने के पश्चात पृथ्वी पर मैं अयोनिजा रूप में अवतार धारण करूँगी। उस समय मैं सौ नेत्रों वाली होऊँगी। जिस कारण मुझे मुनिगण 'शताक्षी' कह-कर स्तुति करेंगे।

तथा अपने शरीर से उत्पन्न शाक व अन्न से संपूर्ण विश्व के प्राणियों का पालन करूँगी। इसलिए मैं 'शाकुम्भरी' नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करूँगी। उसके पश्चात दुर्गम नामक दैत्य को नष्ट करके 'दुर्गा देवी' के नाम से प्रसिद्ध होऊँगी। उसके पश्चात ऋषि-मुनियों के रक्षार्थ हिमालय पर भीषण भीम रूप धारण करके असुरों का भक्षण करूँगी। तब ऋषिगण शीश झुकाकर भक्तिपूर्वक श्रद्धा के साथ मेरी उपासना करेंगे और मैं भीमा देवी के नाम से प्रकट होऊँगी।

देवी फिर बोलीं—जब अरुण नामक महादैत्य तीनों लोकों में अपने भीषण उत्पात से त्राहि-त्राहि मचा देगा। तब मैं छः पैरों से युक्त भ्रमर रूप धारण करके तीनों लोकों के उद्धार के लिए उसको नष्ट कर दूँगी। तब मेरी सर्वत्र 'भ्रामरी देवी' नाम से स्तुति होगी। इस प्रकार जब कभी भी असुरों द्वारा उत्पात मचाया जायेगा, तब-२ मैं अवतार धारण कर उन असुरों का नाश करूँगी।

रूचि को पितरों द्वारा गृहस्थी जन्य उपदेश

मार्कण्डेय जी ने कहा—प्रजापति रुचि सभी प्रकार के ममता एवं अहंकार को त्याग कर जहां भी सूर्यास्त हो जाता था वहीं सो जाते थे। इस प्रकार वे संपूर्ण पृथ्वी की यात्रा करने लगे। जब उनके पितरों ने उन्हें अग्नि रहित, गृह रहित, एकाहारी, निराश्रयी तथा संग त्यागी रूप में देखा। तब वे बोले—हे वत्स ! तुमने विवाह क्यों नहीं किया क्योंकि स्वर्ग एवं मोक्ष विवाह के बिना संभव नहीं है। सभी देवता, पितर, ऋषि आदि का सत्कार करने के पश्चात ही गृहस्थी मनुष्य स्वर्ग आदि लोकों के सुखों को प्राप्त करता है। स्वाहा एवं स्वधा का उच्चारण करके देवताओं एवं पितरों की तथा अन्न दान से अतिथियों की सेवा करके ही

मनुष्य गृहस्थी बन सकता है। बिना सन्तान उत्पन्न किए, बिना देवताओं और पितरों को तर्पण किये तथा बिना कर्मों का अनुष्ठान किए मोक्ष प्राप्त करने की आशा करना व्यर्थ है। हे पुत्र! तुम्हें इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने से इह लोक में तथा अन्य लोकों में भी कष्ट का भागी होना पड़ेगा।

रुचि ने कहा—

स्त्री ग्रहण करना अत्यन्त कष्ट व पाप का कारण है तथा अधोगति को ले जाने वाला है। इसलिए मैंने किसी स्त्री को ग्रहण नहीं किया। इन्द्रिय निग्रह से आत्म संयम ही मोक्ष का मूल कारण है। मैं उसी का पालन कर रहा हूं। ममता रूपी कीचड़ से दूर रहना ही श्रेष्ठ पुरुष का लक्षण है। जन्म-जन्मान्तर में उत्पन्न कर्म रूपी कीचड़ में सने हुए आत्मा को सद्भावना रूपी जल से साफ करना संयतेन्द्रिय बुद्धिमान पुरुष का काम है।

पितर बोले—

हे पुत्र! यह ठीक है कि संयतेन्द्रिय पुरुष को अपनी आत्मा को साफ रखना चाहिए, परन्तु जिस प्रकार निष्कामभाव से दान करने से अमंगल का नाश नहीं होता। ठीक उसी प्रकार शुभाशुभ फल के भोगों से पूर्व जन्म के संचित कर्म नष्ट होते हैं। इस तरह से कारणात्मक कर्म व

निष्काम कर्म करने से कर्म बंधन नहीं होता। सुख दुःख को भोगने से ही पूर्व जन्म में संचित पाप-पुण्य से युक्त कर्म दिन-रात क्षय को प्राप्त होते है। अतः बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि अपनी आत्मा को कीचड़ से दूर रखकर स्वच्छ रखे। न कि किसी बन्धन में पड़े।

रुचि ने कहा—

हे पितामह ! जब कि वेद में कर्म मार्ग को अविद्या कहा गया है तो फिर आप मुझे कर्म मार्ग में क्यों प्रेरित कर रहे हैं।

पितरों ने कहा--

ठीक है कर्म अविद्या है परन्तु यह भी सत्य है कि कर्म के द्वारा ही विद्या की प्राप्ति होती है। मनुष्य द्वारा सभी योग्य कार्यों को न करने से उसे केवल संयम से ही मुक्ति प्राप्त नहीं होती बल्कि अधोगति को प्राप्त करता है। तुम सोचते हो कि तुम अपने आत्मा को धो रहे हो, परन्तु ऐसी बात नहीं है। तुम यथार्थ कर्मों को न करके अपने को पाप में लिप्त कर रहे हो। जिस प्रकार प्राण घातक विष भी अमृत-तुल्य होकर प्राण रक्षक हो जाता है। उसी प्रकार अविद्या भी कभी-कभी मनुष्यों के लिए कल्याणकारी हो जाती है। इसलिए हे वत्स ! तुम विवाह

कर लो, नहीं तो सांसारिक धर्म की प्राप्ति किये बिना जन्म व्यर्थ हो जायेगा।

रुचि बोले—

हे पितामह ! मैं भी बूढ़ा व दरिद्र हूं। कौन पिता अपनी पुत्री को मुझे देने को तैयार होगा।

फिर अन्त में पितर गण यह कहते हुए अन्तर्धान हो गये कि पुत्र ! यदि तुम हमारे उपदेश को नहीं मानोगे तो इससे निश्चय ही तुम्हारा जीवन असफल होगा।

रौच्य मनु का जन्म

रुचि जिस नदी के तट पर तपस्या कर रहे थे। उस नदी से एक अप्सरा बाहर आई और रुचि से बोली—मेरी मालिनी नाम की कन्या है। आप उस कन्या को अपनी पत्नी रूप में स्वीकार करें। उसके गर्भ से आपके द्वारा उत्पन्न पुत्र ही मनु होगा। अप्सरा के निवेदन पर रुचि मुनि ने सभी मुनियों के समक्ष मालिनी के साथ अपना विधिवत् विवाह किया। कुछ समयोपरान्त मालिनी के गर्भ से रौच्य नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

भौत्य मन्वन्तर

मार्कंण्डेय ऋषि ने भौत्य मन्वन्तर के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए बताया कि—अङ्गिरस मुनि के भूति नामक एक शिष्य थे। जो स्वभाव से अत्यन्त क्रोधी थे। किसी की मामूली सी त्रुटि पर भी वे भयँकर शाप देने में चूकने वाले नहीं थे। यहाँ तक कि उनके भय के कारण वायु, सूर्य व मेघ भी अपना प्रबल वेग नहीं दिखा पाते थे। पूर्णमासी का चन्द्रमा भी उनके क्रोध को शान्त करने में समर्थ नहीं था। उनके आश्रम के क्षेत्र में सभी ऋतुयें भी अपने स्वभाव के विपरीत नहीं चल सकती थीं। आश्रम के पास से बहने वाली नदी का जल भी सदा उनके वशीभूत ही रहता था।

भूति ऋषि पुत्रहीन थे। अतः वह पुत्र की कामना से कठिन तपस्या में रत हो गये। परन्तु इनकी तपस्या सफल नहीं हुई, मध्य में ही भंग हो गई।

भूति के भाई सुवर्चा ने इन्हें अपने यज्ञ में निमन्त्रित किया। यज्ञ में जाने की इच्छा से भूति ने शान्ति नामक शिष्य को बुलाया। यथा नाम तथा गुण। अपने नाम के अनुसार ही शान्ति गुरुभक्त, उदारचित्त वाला एवं सदाचारी था। भूति ने शान्ति को आश्रम में यज्ञाग्नि को सदा ही प्रज्वलित रखे रहने का आदेश देकर अपने भाई के यज्ञ में चले गए।

शान्ति यज्ञाग्नि को प्रज्वलित रखते हुए अन्य कार्य भी करने लगे। जिससे अग्नि बुझ गई। जिससे शान्ति दुःखी होने के साथ-साथ गुरु के क्रोध व शाप के भय से भी चिन्तित हो गए? कि अब मुझे क्या करना चाहिए? यदि मैंने बुझी अग्नि को पुनर्दीप्त किया, तो मेरे सर्वज्ञ गुरु मुझे भस्मीभूत किये बिना नहीं छोड़ेंगे तथा गुरु के क्रोध से यह भयभीत अग्नि भी मुझे शाप दे सकती है। क्योंकि मेरे गुरु का तेज ही इस प्रकार का है। इस प्रकार से चिन्तित होकर गुरु के भय से भयभीत वह शिष्य शान्ति अग्नि की शरणागत हुआ एवं संयतात्मा तथा एकाग्रमन से, पृथ्वी पर घुटने टेककर दोनों हाथ जोड़कर श्रद्धा व भक्ति के साथ सप्तशिखा युक्त अग्नि-स्तोत्र का पाठ करने लगे। तथा सभी प्रकार से अपनी रक्षा की प्रार्थना करने लगे।

मन्वन्तरों के श्रवण करने का फल

शान्ति द्वारा अग्नि की प्रार्थना किये जाने के बाद ज्वालारूपी मालाओं से आच्छादित भगवान हव्य वाहन प्रकट हुए तथा प्रसन्न होकर शान्ति से अपना इच्छित वर मांगने को कहा।

शान्ति बोले—हे देव! मैं आपका दर्शन पाकर कृत-

कृत्य हूं। मेरा आपसे यही निवेदन है कि आप मेरे गुरु के आश्रम से जाने से पूर्व उनके हवन कुण्ड में विराजमान थे उनके आने पर भी आप उसी रूप में उन्हें हवन कुण्ड में दिखें। मेरे निःसन्तान गुरु को विशिष्ट गुणों से युक्त पुत्र हो तथा जिस प्रकार का प्रेम वे अपने पुत्र के साथ करेंगे। उसकी प्रकार का प्रेम वे सभी प्राणियों से करें। जिस स्तुति से तुम मेरे पर प्रसन्न हो। इन स्तोत्रों से तुम्हारा स्तवन करने वाला हर व्यक्ति सुख-सम्पत्ति व पुत्र को प्राप्त करे।

अग्नि देव बोले—हे द्विज! तुमने दोनों ही वर पुत्र एवं प्राणियों के प्रति अपने गुरु के लिए ही माँगा है। इससे मैं अधिक प्रसन्न हूं। तुम्हारे गुरु को महापराक्रमी सर्वगुण सम्पन्न एवं मन्वन्तराधिपति भौत्य नामक पुत्र अवश्य होगा। वह मेरे इस स्तोत्र का पाठ करके अपने सभी प्रकार के इच्छित फलों को प्राप्त करेगा। यज्ञ में, तीर्थ में, पूर्णिमा व अमावस्या तथा जब कभी भी कोई इस मेरे स्तोत्र का पाठ करेगा। उसके सभी पाप नष्ट होंगे तथा अपने इच्छित फल को प्राप्त करेगा? कहकर अग्निदेव अदृश्य हो गये।

गुरु भूति ने अपने आश्रम में आने पर अग्निकुण्ड में अग्नि को ज्यों का त्यों देखा। शान्ति ने उनकी चरण-

वन्दना की, पैर धोया। गुरु आसन ग्रहण कर बोले—हे वत्स! पता नहीं क्यों आज तुम्हारे प्रति व सभी प्राणियों के प्रति अत्यधिक प्रेम जाग्रत हो रहा है। इसका कारण मुझे समझ में नहीं आता। यदि तुम्हें ज्ञात हो तो बताओ। शिष्य शांति ने सारा वृतान्त सुना दिया। भूति मुनि बड़े प्रसन्न हुए। शान्ति को हृदय से लगाया तथा सभी प्रकार के वेद वेदांगों की शिक्षा दी। कुछ समय बाद भूति मुनि को भौत्य नामक पुत्र हुआ।

भौत्य मन्वन्तर के चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिन एवं धरावृक देवगण कहे गये हैं। इन देवताओं के पुत्रों में शुचि नामक पुत्र इन्द्र के समान महाबली, महापराक्रमी एवं सर्वगुण सम्पन्न होगा। आग्नीध्र, अग्निबाहु, शुचि, मुक्त, माधव, शुक्र और अजीत ये सप्तऋषि होंगे। गुरु, गम्भीर, ब्रह्म, भरत, अनुग्रह, श्रीमानी, प्रतीर, विष्णु, सक्रन्दन, तेजस्वी और सुबल ये भौत्य मनु के पुत्र होंगे।

मार्कण्डेय जी ने कहा—इस प्रकार चौदहों मन्वन्तर का वर्णन पूर्ण हो गया। इन सभी मन्वन्तर की कथा का क्रमशः श्रवण करने से मनुष्य, अक्षीण परिवार व पुण्य को प्राप्त करता है तथा प्रथम मन्वन्तर के सुनने से धर्म में आस्था, द्वितीय मन्वन्तर के सुनने से सभी इच्छायें पूर्ण, तृतीय मन्वन्तर के श्रवण से धन, चतुर्थ मन्वन्तर के सुनने

से ज्ञान, पंचम मन्वन्तर के सुनने से सभ्य, सुशील गुणवती पत्नी, छठवें मन्वन्तर के सुनने से स्वास्थ्य, सातवें मन्वन्तर के सुनने से पराक्रम एवं आठवें मन्वन्तर के सुनने से गुण-वान पुत्र एवं पौत्र, नवें मन्वन्तर के सुनने से माहात्म्य, दसवें मन्वन्तर के सुनने से कल्याण, ग्यारहवें मन्वन्तर के सुनने से बुद्धि व जय, बारहवें मन्वन्तर के सुनने से पुरुष श्रेष्ठ, तेरहवें मन्वन्तर के सुनने से शत्रुओं का शमन तथा चौदहवें मन्वन्तर के सुनने से भगवान का प्रसाद, अग्नि-होत्र फल एवं गुणवान् फल की प्राप्ति होती है।

राज्यवर्धन की आयु वृद्धि

यम का पुत्र राज्यवर्धन पृथ्वी का पालन करने वाला कुशल प्रशासक हुआ। उन्होंने प्रजा का अच्छी तरह पालन किया। उनके शासनकाल में धन-जन की नित्य-प्रतिदिन उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही। प्रजाजन भली भाँति सुखी जीवन व्यतीत करते थे। उनके राज्य में अकाल, सूखा, रोग-व्याधि, हिंसक पशुओं, चोर-उचक्कों आदि किसी का भय नहीं था। धर्मानुसार सभी कार्य होते थे। इस प्रकार से उनका सात हजार वर्ष का समय एक दिन की तरह व्यतीत हो गया।

राज्यवर्द्धन का विवाह दक्षिण देश के राजा विदुरथ की कन्या मानिनी से हुआ। एक बार रानी मानिनी राजा के सिर में तेल मालिश कर रही थी कि रानी की आँख से आँसू की कुछ बूँदें राजा के शरीर पर टपक पड़ीं। वहाँ और भी राज पुरुष उपस्थित थे। राजा ने रानी के अश्रु-पूरित नेत्रों को देखा और इसका कारण पूछा। रानी बिना उत्तर दिये बिना शब्द किये रोने लगी। राजा के बार-२ पूछने पर भी रानी ने उनके सिर में पके हुए एक बाल को दिखाया, राजा मुस्कराते हुए बोले—हे रानी ! तुम्हारा रोना व्यर्थ है। कारण, मैंने यज्ञ दान धार्मिक अनुष्ठान, संतान वृद्धि, प्रजा पालन, सभी प्रकार के वेदों का अध्ययन, मित्र के साथ हास-परिहास, वन विहार आदि सभी कार्य तो किया है। इसलिए चिन्ता की कोई बात नहीं। प्रत्येक प्राणी बच्चा जवान, बूढ़ा व फिर मृत्यु को प्राप्त होता है। मेरे बाल पकने लगे। यह मेरा भाग्योदय हो गया है। अब मेरा वन में जाने का समय आ गया। अब मैं वन में जाऊँगा। अतः तुम्हें रोना व्यर्थ है। राजा की इस प्रकार की बातों को सुनकर वहाँ उपस्थित अन्य लोग बोले—हे महाराज ! आपकी पत्नी को रोना व्यर्थ है, परन्तु अब तो हम लोगों को व अन्य प्राणियों को रोने का समय आ गया है यदि आप वनवासी जीवन व्यतीत करेंगे तो हम भी

आपके साथ वनवासी जीवन व्यतीत करेंगे। अन्यथा आप अपना वन जाने का विचार त्याग दीजिए।

राजा ने सभी प्रजा को समझाते हुए कहा—मेरे सिर में जो सफेद बाल दिखाई दिया है। वह मेरी आने वाली मृत्यु की सूचना देने वाला प्रथम दूत है। अतः अब पुत्र को राज्याभिषेक करके वन में मृत्यु के आने तक तपस्या करूँगा। सभी प्रजाओं ब्राह्मणों, मंत्रियों, वृद्ध पुरवासियों भृत्यों आदि के राजा को बार-२ न जाने का आग्रह करने पर भी राजा ने वन जाने की जिद को नहीं छोड़ा। तब सभी ने विचार किया हमें राजा की आयु वृद्धि के लिए सूर्य की आराधना करनी चाहिये। यह विचारकर सभी ने भाँति-२ विधियों से सूर्य की विधिवत् आराधना व पूजा की। तब सुदामा नामक गंधर्व आया और कहा—यदि आप लोग सूर्य भगवान को प्रसन्न करना चाहते हैं तो कामरूप महापर्वत पर एक 'गुरु विशाल' नामक वन है, जो सिद्ध पुरुषों द्वारा सेवित है। वहीं जाकर सूर्य की आराधना करें। आप लोगों की मनोकामना पूर्ण होगी।

गन्धर्व के कथनानुसार सभी लोगों ने वहाँ पहुंचकर सूर्य मन्दिर में सूर्य का दर्शन किया तथा प्रमाद रहित पुष्प, गन्ध, धूप, अङ्गराज आदि पदार्थों से जप होम, अन्नदान आदि से श्रद्धापूर्वक सूर्य की स्तुति करने लगे। इस प्रकार

तीन मास तक स्तुति व पूजन करते रहने के पश्चात् भगवान सूर्य प्रसन्न हुए। विप्र आदि सभी लोगों ने सूर्य का दर्शन कर श्रद्धा पूर्वक उनके चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया।

राजा और प्रजा की आयु वृद्धि

भगवान सूर्य ने ब्राह्मणों व प्रजाजनों को दर्शन देकर वर माँगने को कहा। सभी ने भगवान सूर्य से राजा राज्य वर्द्धन को स्वस्थ, शत्रु विजयी, स्थिर यौवन वाला होकर दस सहस्र वर्षों तक जीवित रहकर राज्य करने के लिए वर माँगा। भगवान सूर्य एवमस्तु कहकर अन्तर्धान हो गए। सभी प्रजाजनों ने राजा राज्यवर्द्धन के पास जाकर भगवान सूर्य की आराधना करने व उनके लिए स्वास्थ्य व दस सहस्र वर्षों तक की आयु का वर प्राप्त करने की सूचना दी। यह सूचना पाकर राजा बहुत ही दुःखी हुए और चिन्तातुर हो गए। परन्तु रानी बड़ी प्रसन्न थी। रानी राजा से दुःखी व चिन्तित होने का कारण बार-बार पूछने लगी।

रानी की जिद पर राजा बोले—तुम तो मेरी चिरायु होने का वरदान सुनकर प्रसन्न हो रही हो। परन्तु यह

नहीं सोचतीं कि मेरा चिरायु होना मेरे लिए कितना कष्ट-प्रद है। मैं जिन्दा रहूंगा तुम्हारी मौत देखने के लिए, पुत्र-पौत्रों व आत्मीय जनों की मौत देखने के लिये, अपने प्रिय सेवकों तथा जिन लोगों ने मेरी चिरायु की कामना की उन सबकी मौत देखने के लिए, तुम्हीं सोचो—क्या इन घटनाओं को देखने के लिये ही मुझे लम्बी आयु चाहिए। क्या मुझे इन सब घटनाओं से दुःख नहीं होगा? अतः अब मैं निश्चय ही प्रभृति पर्वत पर जाकर सभी पुरवासियों के लिए कठिन तप करूँगा। जिससे वे सभी मेरे साथ निरोग व स्थिर यौवन होकर मेरे साथ तक जीवित रहें। यदि भगवान सूर्य ने ऐसा वरदान मुझे नहीं दिया तो मैं आजीवन उनकी कठिन आराधना निराहार रहकर करता रहूंगा।

राजा के इस विचार को रानी मानिनी ने भी स्वीकृति दे दी। राजा रानी दोनों ही प्रभृति पर्वत पर जाकर सूर्य मन्दिर में निराहार रहकर तप करने लगे। कठिन तप के कारण राजा कृशकाय हो गये। कुछ समय की राजा की आराधना के पश्चात् भगवान सूर्य प्रसन्न हुए और राजा को दर्शन देकर वर मांगने को कहा। राजा ने भी प्रजा-जनों के लिए अपने ही समान चिरायु स्थिर यौवन व स्वस्थ आयु वाला होने का वरदान मांगा। सूर्य एवमस्तु

कहकर अन्तर्धान हो गए। उसके बाद राजा ने अपनी नगरी में सभी प्रजाजनों पुत्र-पौत्रों के साथ दस सहस्त्र वर्षों तक सुख पूर्वक जीवन व्यतीत किया।

मार्कण्डेय जी ने कहा—इस प्रकार जो भी व्यक्ति भगवान भास्कर की आराधना करेगा वह धन, जन, आरोग्य आदि से सम्पन्न होकर पापों से मुक्त होगा।

नाभाग की कथा

करुष नामक राजा के वंश में हजारों वीरों ने जन्म लिया। उनमें से 'दिष्ट' नामक राजा का पुत्र 'नाभाग' हुआ। युवा दिन नाभाग की दृष्टि एक वैश्य कन्या पर पड़ी। और वह उसे चाहने लगा। उसने कन्या की शादी अपने साथ करने के लिए निवेदन किया, परन्तु वैश्य ने राजा प्रजा व समान-असमान की बात नाभाग को समझा-कर टालना चाहा। परन्तु नाभाग भी नाना प्रकार से वैश्य को समझाते हुए उसकी कन्या के साथ शादी के लिए अपनी जिद पर अड़ा रहा।

वैश्य ने नाभाग को इस शादी के लिए अपने माता-पिता से आज्ञा लेने के लिये कहा। इस पर नाभाग बोला—देखो, यह काम सम्बन्धी बात है। काम सम्बन्धी

बातें माता-पिता व गुरुजनों से नहीं पूछनी चाहिये। इनके अतिरिक्त अन्य विषयों में सलाह लेना उचित है।

वैश्य ने कहा—ठीक है तो मुझे कन्या का पिता होने के कारण आपके पिता से पूछ लेना उचित है। यह सुनकर नाभाग मौन हो गया। वैश्य ने नाभाग के पिता से सारा वृतान्त कहा। नाभाग के पिता ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों व मुनियों से इस विवाह के सम्बन्ध में परामर्श लिया। सभी ने कहा—राजकुमार का वैश्य कन्या के साथ प्रेम होना कोई धर्म के विरुद्ध तो नहीं है। परन्तु धर्मानुसार राजकुमार को पहले क्षत्रिय कन्या के साथ विवाह करने के उपरान्त ही वैश्य कन्या से विवाह करना उचित है। अन्यथा कन्या अपहरण के कारण जाति से गिरना होगा।

इस प्रकार मुनियों के वचन को सुनकर नाभाग ने अपनी तलवार निकालकर वैश्य कन्या को अपने अधिकार में ले लिया और बोला—अब मैं इस कन्या के साथ विवाह कर रहा हूं। जिसमें सामर्थ्य हो वह इसकी रक्षा करे। वैश्य ने राजा के पास जाकर नाभाग से अपनी पुत्री को छुड़ाने के लिए निवेदन किया। राजा ने अपनी सेनाओं को नाभाग से युद्ध हेतु भेजा। नाभाग ने अकेले ही सभी सेनाओं को मार गिराया। फिर स्वयं राजा शेष सेनाओं के साथ पुत्र नाभाग से युद्ध करने के लिये आए। युद्ध में

राजा को युद्ध में पराजित होना पड़ा।

आकाश मार्ग में महर्षि नारद जी आये और राजा से बोले हे राजन ! युद्ध बन्द करो। जो जाति भ्रष्ट हो गया हो, उससे युद्ध नहीं करना चाहिए। यह तुम्हारा पुत्र विधर्मी व जातिभ्रष्ट हो चुका है।

ब्राह्मण यदि पहले ब्राह्मण कन्या से विवाह करने के बाद अन्य ब्राह्मणेतर कन्या से, क्षत्रिय पहले क्षत्रिय कन्या से विवाह करने के बाद क्षत्रियेतर कन्या से वैश्य पहले वैश्य कन्या से विवाह करने के बाद शूद्र कन्या से विवाह करे तो कोई दोष नहीं होता। परन्तु तुम्हारे इस पुत्र ने पहले क्षत्रिय कन्या से विवाह किए बिना ही वैश्य कन्या से विवाह किया है। इसलिये वैश्य के साथ युद्ध करना आपको उचित नहीं है। अतः युद्ध बन्द कीजिये।

राजा ने युद्ध बन्द कर दिया तथा नाभाग भी वैश्य कन्या से विवाह कर वैश्य बन गया। फिर उसने राजा के पास जाकर निवेदन किया। महाराज ! अब मुझे अपने जीवन निर्वाह हेतु क्या करना चाहिए। राजा ने कहा— जाओ जो विप्रगण व मुनिगण परामर्श दें, उसे ही करो। नाभाग सबसे परामर्श लेकर वैश्य कर्म कर जीवन निर्वाह करने लगा। नाभाग का पुत्र 'भलन्दन' हुआ। इसके बड़े होने पर माता-पिता ने इसे गो पालक होने को कहा।

भलन्दन हिमालय निवासी राजर्षि के चरणों में उप-स्थित हुआ। भलन्दन ने प्रार्थना की। हे भगवन ! मेरे माता पिता ने मुझे गो पालक होने की आज्ञा दी है और गो पालक का अर्थ होता है पृथ्वी का राजा। परन्तु पृथ्वी पर हमारे शक्तिशाली कुटुम्बियों का अधिकार है। अतः आप मुझे ऐसा ही मार्ग दर्शन करें जिससे मैं पृथ्वी को प्राप्त कर सकूं। मैं आपकी आज्ञा का पूर्णतः पालन करूंगा।

राजर्षि नीप ने भलन्दन पर प्रसन्न होकर सभी प्रकार के युद्धास्त्रों की शिक्षा दी। शस्त्र विद्या में निपुण होकर भलन्दन अपने कुटुम्बियों के पास पहुंचा और अपनी पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा मांगा। तब उसके कुटुम्बियों ने कहा—तुम तो वैश्य के पुत्र हो, पृथ्वी के शासक कैसे बनोगे ? तुम्हें तो अधिकार ही नहीं है। तब भलन्दन ने अपने वंशज वसुरात आदि से शस्त्र युद्ध किया। उसने युद्ध में सभी को परास्त कर पृथ्वी पर अपना अधिकार कर लिया। भलंदन ने अपने पिता नाभाग से राज्य करने को कहा।

परन्तु पिता ने कहा—हे वत्स ! यह राज्य तुम्हारा है तुम इसका उपभोग करो। मुझे राज्य करने का अनुभव नहीं है। तथा यदि मैंने पिता की आज्ञा का उल्लंघन करके राज्य किया तो सौ कल्पों तक मोक्ष को प्राप्त नहीं

होऊँगा। मुझे तो पृथ्वी के शासक बनने से उत्तम हित पिता की आज्ञा का पालन करने में है। तुम्हें इस पृथ्वी पर अधिकार है अतः स्वयं राज्य करो या कुटुम्बी जनों को सौंप दो।

तब नाभाग की पत्नी सुप्रभा बोली—हे नाथ! आप राज्य ग्रहण करें। क्योंकि न तो आप ही वैश्य हैं और न मैं ही। हम दोनों तो क्षत्रिय हैं। प्राचीन समय में सुदेव नाम के एक प्रसिद्ध राजा थे। राजा धूमाश्व के पुत्र नल से उनकी दोस्ती थी। एक समय जब सुदेव बसन्त ऋतु में मित्र व अपनी पत्नी के साथ वन में विहार करने गये। वहाँ पर उन्होंने अच्छे खाद्य पदार्थ व पेय पदार्थों को सभी के साथ ग्रहण किया। फिर पुष्करिणी नदी के किनारे च्यवन ऋषि के पुत्र प्रमति की अत्यन्त सुन्दर पत्नी राज-पुत्री को देखा। नशे में धुत राजा के मित्र नल ने उसे पकड़ लिया। वह स्त्री बचाने की गुहार करने लगी।

प्रमति अपनी पत्नी की करुण आवाज सुनकर शीघ्र ही आ पहुंचा। वहाँ उसने अपनी पत्नी के साथ नल का दुराचरण व राजा सुदेव को वहाँ उपस्थित देखकर राजा से निवेदन किया। हे राजन! आप मेरी पत्नी को इससे बचाइए तथा इस दुराचारी को दण्ड दीजिए। परन्तु सुदेव ने कहा—मैं तो वैश्य हूं। इसलिए इसकी रक्षा हेतु किसी

क्षत्रिय के पास जाओ। सुदेव के इस प्रकार के वचन को सुनकर क्रोधित प्रमति ने कहा—तुम सत्य में ही वैश्य हो जाओ। तुम्हारी बात सत्य हो। क्षत्रिय तो दुखियों की रक्षा हेतु शस्त्र ग्रहण करते हैं, परन्तु तुम कायर हो।

कृपावती की कथा

क्रोधित प्रमति ने नल को तत्क्षण ही भस्म हो जाने का शाप दिया। उसी क्षण नल को भस्म होते देखकर सुदेव प्रमति के चरणों में गिर-गिरकर बार-बार अपनी गलती का पश्चाताप करते हुए शाप से मुक्त होने की क्षमा याचना करने लगा। प्रमति का क्रोध अब शान्त हो चुका था। अतः उन्होंने कहा—ठीक है वैश्य तो आपको कुछ समय के लिए बनना ही पड़ेगा। परन्तु जब कोई क्षत्रिय राजकुमार तुम्हारी कन्या से बलपूर्वक विवाह करेगा। तबसे तुम क्षत्रिय हो जाओगे। इसी कारण मेरे पिता को कुछ समय के लिए वैश्य होना पड़ा। मेरी भी कहानी कुछ ऐसी ही है।

प्राचीन काल में राजा सुरथ गंधमादन पर्वत पर कठिन तप कर रहे थे। एक दिन उन्होंने बाज के द्वारा घायल पक्षी सारिक को पृथ्वी पर गिरकर छटपटाते देखा उस

पक्षी के दुःख देखकर राजा मूर्छित हो गये। उनकी मूर्छा दूर होने पर उनके शरीर से मैं उत्पन्न हुई। उन्होंने मुझे बड़ा प्यार किया और मेरा नाम कृपावती रखा। राजर्षि सुरथ के ही आश्रम में मैं बड़ी हुई। एक दिन मैं अपनी सखियों के साथ वन में विचरण कर रही थी। वहाँ अगस्त्य मुनि के भाई पुष्प एकत्र कर रहे थे। मेरी सखियों ने उन्हें वैश्य कहकर चिढ़ाया। जिससे वे क्रोधित हो गये और मुझे वैश्य की कन्या होने का शाप दे डाला, मैं उनसे विनय पूर्वक बोली—महाराज ! मैंने तो आपको कुछ नहीं कहा। जो कुछ कहा मेरी सखियों ने कहा और शाप आपने मुझे दे डाला। यह कहाँ का न्याय है। आपने तो मुझे शाप देकर अन्याय किया है।

ऋषि ने कहा—ऐसा हाल तुम्हारा गलत संग के कारण हुआ है। हे कन्या ! जब तू वैश्य जाति में उत्पन्न होकर अपने पति को राज्य ग्रहण हेतु उपदेश देगी। तब तुम्हें अपनी जाति की याद आ जायेगी। और पति के साथ क्षत्रियत्व को प्राप्त कर दिव्य भोगों का उपभोग करेगी। अब तुम भय छोड़कर आश्रम में निवास करो। इसलिए हे नाथ ! न मेरे पिता वैश्य थे न मैं, तो आप भी वैश्य नहीं हुए।

———

खनित्र चरित्र

सूर्यवंश में उत्पन्न वत्सप्रीति के सुनन्दा से बारह पुत्र प्रांशु, प्रवीर, शूर, सुचक्र, क्रम, बली, बलाक, चण्ड, प्रचण्ड, सुविक्रम और सुवय आदि हुए। सभी पुत्र अत्यन्त भाग्यशाली एवं पराक्रमी हुए। इनसे सबसे बड़े पुत्र प्रांशु ने राज्य भार को सम्भाला तथा शेष भाई उनकी सेवा में लगे। प्रांशु द्वारा यज्ञ करने और उसमें अधिकाधिक दान देने पर भी किसी प्रजा को इसके लिए धन का त्याग नहीं करना पड़ा। इसलिए पृथ्वी का नाम वसुन्धरा पड़ा। राजा अपने कोष में एकत्र धन से ही यज्ञादि अनुष्ठान किया करते थे तथा प्रजा को पुत्रवत स्नेह व प्यार करते थे। इनके यज्ञ से अपने-अपने अंश को प्राप्त कर इन्द्र आदि सभी देवगण पूर्ण संतुष्ट थे। राजा प्रांशु के महाशक्तिवान पुत्र का नाम प्रजाति था। प्रजाति ने उस समय के सभी असुरों एवं देव शत्रुओं को नष्ट कर दिया। प्रजाति के पाँच पुत्र थे। उनमें से एक खनित्र था। खनित्र शांत एवं मृदु स्वभाव वाला सत्यवक्ता, पराक्रमी एवं प्राणियों के हित में लगे रहने वाला राजा हुआ। राजा सदा यह कामना करते रहते थे कि सभी प्राणी आनन्दित रहें। निर्जन स्थान में भी भयमुक्त रहें, सभी प्राणियों का कल्याण हो। कोई शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा न हो।

सभी मित्रवत रहें। सभी वर्णों की वृद्धि एवं कर्मों की सिद्धि हो। सभी प्राणी एक दूसरे के कल्याण हेतु कार्य करें। यदि कोई किसी को हानि पहुंचाता है तो वह अपने को ही हानि पहुँचाता है। क्योंकि जो जैसा कर्म करता है उसका फल वही भोगता है। जो मुझसे द्वेष एवं ईर्ष्या का भाव रखते हैं उनका कल्याण हो, तथा जो मुझसे प्रेम करते हैं उनका भी कल्याण हो।

राजा खनित्र ने अपने भाईयों को अलग-अलग राज्यों में नियुक्त कर दिया। इन चारों राजाओं के अलग-अलग गोत्र के मुनि पुरोहित नियुक्त हुए तथा सभी राजाओं के राजा खनित्र हुए।

एक बार खनित्र का भाई शौरी जो कि पूर्व प्रदेश का राजा था। उसके मन्त्री विश्व वेदी ने राजा शौरी को खनित्र के विरुद्ध तरह-तरह की उल्टी-सीधी बातें कहकर भड़काया। फिर कहा—हे राजन ! भाई के प्रेम पाश में बंधने से किसी भाई का कोई कल्याण नहीं होने वाला है। क्योंकि भाई कभी भी भाई का उद्धार नहीं करता। भाईयों के पुत्रों में कैसे स्नेह हो सकता है। यदि आप चाहें तो आप सम्पूर्ण राज्य का उपभोग कर सकते हैं। अन्यथा राजा को मन्त्री रखने से क्या लाभ ? इस कार्य को मैं सरलता पूर्वक सम्पन्न कर सकता हूं। बस इस कार्य को

सफलता में आप कर्त्ता होंगे और मैं कारण। आप इस कार्य को कर डालिये।

राजा बोले—हे मंत्री बड़े भाई होने के कारण से बड़े राजा हैं और मैं उनका अनुज। तुम यह बताओ पृथ्वी तो एक है और हम पाँच भाई हैं तो पृथ्वी को अलग-२ कैसे भोग सकते हैं।

विश्ववेदी बोला—हे राजन ! ठीक है, पृथ्वी एक है तो उस अकेली पृथ्वी के पूर्ण शासक बनिए। सभी भाईयों के आप स्वामी बनिए।

राजा बोले—जब बड़े राजा (भाई) हम सभी को पुत्रवत स्नेह व प्यार देते हैं तो उनका विरोध करना उचित नहीं।

विश्ववेदी बोला—हे राजन ! राज्य के इच्छित व्यक्ति के लिए छोटे-बड़े का विचार नहीं करना चाहिए। शौरी ने विश्ववेदी की बातों को मान लिया। सर्वप्रथम विश्ववेदी ने अपने भाइयों को अपने वश में कर लिया। उनके पुरोहितों ने अपने लिए शांति कर्म तथा राजा खनित्र के लिए अभिचारिक कर्म करने के लिए नियुक्त किया। चारों पुरोहितों ने अति उग्र अभिचारिक कर्म करके यज्ञ कुण्ड से चार कृत्याओं के विकराल, विशाल मुखाकृति वाले, महाभयंकर व हाथ में त्रिशूल लिए उत्पन्न किए।

वे सभी राजा खनित्र के यहाँ गये। किन्तु राजा के पुण्यों के प्रताप के कारण कृत्या प्रभावहीन हो गई। किन्तु बाद में कृत्याएँ वापस आकर चारों पुरोहितों व विश्ववेदी पर गिर पड़ीं जिससे वे चारों पुरोहित व विश्ववेदी जलकर भस्म हो गए। इस तरह की घटना से लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

राजा खनित्र ने अपने भाईयों के पुरोहितों व विश्ववेदी की मृत्यु का समाचार सुना। खनित्र विचार करने लगा, ऐसा क्यों हुआ? तब इस सम्बन्ध में राजा ने वशिष्ठ मुनि से जानने की इच्छा व्यक्त की। वशिष्ठ मुनि ने राजा खनित्र को विश्ववेदी के दुष्कर्मों आदि के विषय में सुनाया। राजा खनित्र 'हाय मैं मारा गया' हाय मैं मारा गया' कहते हुए माथा पीटते हुए अपने को तरह-२ से कोसने लगे। वे कहने लगे कि चारों ब्राह्मण मेरे ही कारण विनष्ट हुए हैं।

अतः मेरे से बड़ा पापी कोई नहीं होगा। इस राज्य में व राजकुल में मेरे उत्पन्न होने को धिक्कार है। इस प्रकार दुःखी होकर वन गमन करने की इच्छा से राजा खनित्र ने अपने पुत्र क्षुप का राज्याभिषेक कर दिया व अपनी तीनों पत्नियों के साथ वन में चले गये। वहाँ वन में निवास करते हुए राजा ने साढ़े तीन सौ वर्षों तक कठिन

तप किया। अन्त में राजा खनित्र ने अपने प्राण त्यागकर स्वर्गारोहण किया।

विविंश चरित्र

खनित्र के पुत्र क्षुप ने भी अपने पिता के सभी सद्गुणों का अक्षरशः पालन किया। यज्ञ, तप, दान एवम् मित्र तथा शत्रु के साथ समान व्यवहार आदि। एक दिन सूतों ने राजदरबार में सिंहासन पर विराजमान राजा क्षुप से कहा—हे महाराज ? अति प्राचीन काल में ब्रह्मा के पुत्र क्षुप हुए थे। उन क्षुप में जो-२ भी गुण मौजूद थे, वे सभी गुण आप में भी उपस्थित हैं। राजा बोले—मैं महात्मन् क्षुप के चरित्र को पूर्णतया जानना चाहता हूं जिससे उन के गुणों को अक्षरशः पालन कर सकूं।

सूत जी ने कहा—हे राजन् ! क्षुप किसी ब्राह्मण से किसी प्रकार का कर नहीं लेते थे। तथा थोड़े धन से ही वे पृथ्वी पर यज्ञादि अनुष्ठान करते थे।

राजा बोले—ठीक है आज मैं शपथ लेता हूं। आज से मैं भूतपूर्व क्षुप के पदचिह्नों पर पूर्णतया चलूंगा। ब्राह्मणों से लिया गया कर व उनकी गायें वापस कर दूंगा। तथा फसल आने से पूर्व, फसल के समय और

फसल बीत जाने पर तीन-२ यज्ञों का अनुष्ठान करूँगा।

मार्कण्डेय जी ने कहा—क्षुप ने अपनी प्रतिज्ञा का पूर्णतः पालन किया। इसकी प्रथमा नाम की पत्नी ने वीर एवम् धर्मात्मा पुत्र को जन्म दिया तथा जो अपने पराक्रम से सभी राजाओं का अधीश्वर बन गया। पुत्र का विवाह विदर्भ नरेश की पुत्री नन्दिनी से हुआ। नन्दिनी ने विविंश नामक पुत्र को जन्म दिया विविंश भी अपने पिता, पितामह एवम् प्रपितामह के ही पदचिन्हों पर चला और अंततः युद्ध में मृत्यु को प्राप्त कर इन्द्रलोक को प्राप्त हुआ।

करन्धम चरित्र

खनीनेत्र ने गोमती नदी के किनारे एकांत स्थान पर नियतात्मा एवं संयतात्मा होकर इन्द्र देव की स्तुति की। भगवान इन्द्र ने प्रसन्न होकर राजा को दर्शन दिए और पराक्रमी ऐश्वर्यवान व धर्मवान तथा सर्वगुण सम्पन्न पुत्र को आशीर्वाद दिया। कुछ दिनों बाद राजा को एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ। जिसका नाम उन्होंने 'बलाश्व' रखा। बलाश्व जब शासनारूढ़ हुआ तब सभी राजाओं को जीतकर उसने अपने आधीन कर लिया। कुछ समय बाद अधीनस्थ राजाओं ने बलाश्व को कर देना बन्द कर दिया तथा अपनी भूमि भी उससे मुक्त कर ली। अन्ततः राजाओं ने

बलाश्व को युद्ध में परास्त कर उसको उसके नगर में ही घेर लिया। अपनी दयनीय स्थिति को देखकर राजा बलाश्व को बड़ा ही क्रोध हुआ। परन्तु क्रोध तथा सैन्य बल से हीन लाचार बलाश्व कुछ नहीं कर सकता था। अतः वह हाथ से मुँह ढककर फूट-फूट कर रोने लगे और गर्म-२ सांस छोड़ने लगे। ऐसा करने से उसके मुख से असंख्य योद्धा रथ, हाथी और घोड़े तथा शस्त्रास्त्र निकल आये।

बलाश्व ने अपनी सेनाओं के साथ बाहर निकल कर युद्ध में शत्रुओं को परास्त कर दिया। तथा सभी को पुनः अपने अधीनस्थ कर करदाता बना दिया। बलाश्व के हाथों से उत्पन्न सेना के कारण उसका नाम "करन्धम" पड़ा।

नरिष्यन्त चरित्र

नरिष्यन्त मरुत के अठारह पुत्रों में सबसे बड़े थे, मरुत ने सत्तर हजार पन्द्रह वर्षों तक राज्य किया। वृद्धावस्था में वे नरिष्यन्त को राज्याभिषेक करके वनवासी जीवन व्यतीत करने लगे।

नरिष्यन्त अपने पूर्वजों के महान कर्मों व अपराजेय पराक्रमों तथा उनके द्वारा किए गये यज्ञों एवं दानों के

विषय में विचार करते हुए सोचने लगे कि मैं कैसे अपने पुरखों के पदचिह्नों का अक्षरशः अनुसरण करूँ ? तथा मुझे इस समय ऐसा कोई कार्य करना चाहिए जिसे उन लोगों ने न किया हो। अतः मैं कर्म द्वारा निष्काम कर्म को करूँगा या जो यज्ञ मेरे पूर्व पुरुषों ने किये थे, किसी अन्य को नहीं कराये, उन्हीं यज्ञों को करूँगा। ऐसा विचार कर राजा ने एक यज्ञ का आयोजन किया। इस यज्ञ में पृथ्वी के समस्त ब्राह्मणों को गाय, वस्त्र, अलंकार, धन व धा.. प्रदान किया था। इस प्रकार का यज्ञ व इतना अत्यधिक दान पूर्व में किसी ने नहीं किया था।

एक बार पुनः राजा ने एक यज्ञ का आयोजन किया। परन्तु इस बार कोई भी यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण उपलब्ध नहीं हुआ। सभी ब्राह्मण यज्ञ में कहीं न कहीं नियुक्त हो चुके थे। जब राजा ने यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण उपलब्ध न होने पर दान करने का विचार किया तो दान लेने के लिए कोई ब्राह्मण तैयार नहीं हुआ। ब्राह्मण बोले—अभी पहले का ही दान में प्राप्त धन घर में प्रचुर मात्रा में भरा पड़ा है। जब दान लेने वाला संपूर्ण पृथ्वी पर कोई राजा को नहीं मिला तो दुख भी हुआ और संतोष भी। संतोष इस बात का हुआ कि मेरे राज्य में पृथ्वी पर कोई गरीब ब्राह्मण नहीं है। परन्तु यज्ञानुष्ठान कैसे करें ? अन्ततः

राजा ने कुछ ब्राह्मणों को यज्ञ सम्पन्न कराने के लिए सहमत कर लिया। ब्राह्मणों ने यज्ञ किया सम्पादित यज्ञ में विशेषता थी कि ब्राह्मणों में से ही कोई, यजमान तो कोई याचक था। नरिष्यन्त द्वारा प्राप्त धन से ब्राह्मणों ने अनेक यज्ञ किए।

दम चरित्र

दुष्टों का संहार करने वाला, इन्द्र के समान बली एवं दयावान दम नामक पुत्र राजा नरिष्यन्त को हुआ। दम की माँ का नाम इन्द्रसेना था। यह अपनी माँ के गर्भ में नौ वर्षों तक रहने के पश्चात उत्पन्न हुआ था। जब तक दम अपनी माँ के गर्भ में रहा तब तक उसकी माँ ने ब्रह्मचर्य जीवन बिताया। इसलिए राजकुमार दम भी दमन शील हुआ। राजकुमार ने राजा वृषपर्वा से सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की तथा तपोवन में रहने वाले दैत्यवर दुंदुभि से सभी प्रकार के अस्त्र विद्या के प्रयोगों को यथार्थ रूप में शिक्षा ग्रहण की। शक्ति मुनि से सम्पूर्ण वेद वेदांग और राजर्षि आर्ष्टिषेण से योग की शिक्षा प्राप्त की।

दशार्णदेश के राजा चारुवर्मा की कन्या सुमना ने स्वयंवर में दम को अपने पतिरूप में स्वीकार किया। उस सुमना को मद्रराज का पुत्र महापराक्रमी, महानन्द और विदर्भराज संक्रन्दन का पुत्र महाधनुर्धारी उदार बुद्धि वाला

राजकुमार वपुष्मान भी चाहते थे। दोनों राजकुमारों ने सुमना द्वारा दम को पति के रूप में अंगीकार किए जाने पर आपस में विचार किया कि इस कुमारी को छीनकर ले जायें। फिर वहाँ यह राजकुमारी दोनों में से जिसको अपना पति चुने उसी को पत्नी मान ली जायेगी। और यदि यह राजकुमारी हम दोनों में से किसी को नहीं चाहती तो वह उसी की पत्नी होगी जो दम का वध करेगा। तत्पश्चात दम के पास बैठी सुमना का इन दोनों राजकुमारों ने अपहरण कर लिया। तब दम के पक्षधर राजा अत्यन्त ही क्रोधित हुए, कुछ राजाओं ने अपहरण-कांड की निंदा की तथा कुछ ने मध्यस्थता की।

तब दम ने व्याकुल होकर कहा—हे उपस्थित राजा-गण! जिस स्वयंवर को धर्म समझा जाता है। यह वास्तव में धर्म है अथवा अधर्म। यदि स्वयंवर धर्म कार्य नहीं है तब यह राजकुमारी जिस किसी की भी पत्नी बने, मुझे कोई चिंता नहीं। परन्तु यदि धार्मिक कार्य है तो शत्रु द्वारा अपमानित इस शरीर में प्राण धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं है, सुमना के पिता चारुधर्मा ने भी राजाओं से निवेदन किया कि आप लोग राजा दम के प्रश्नों का उचित उत्तर देने का कष्ट करें जिससे मेरा और इसका धर्म नष्ट न हो।

कुछ राजाओं ने कहा—गन्धर्व विवाह क्षत्रियों के लिए उत्तम माना गया है। इस कन्या का गन्धर्व विवाह दम के साथ सम्पन्न हो चुका है। इसलिए धर्मानुसार यह दम की पत्नी हुई। यदि कोई इसका विरोध कर गलत कदम उठाता है तो वह मोह एवं काम के वशीभूत होने के कारण करता है। जो अन्यायपूर्ण है। तब अन्य विरोधी राजा तत्काल बोल उठे—मात्र गन्धर्व विवाह ही नहीं शस्त्र-जीवियों के लिए राक्षस विवाह ही उत्तम है। क्षत्रियों में जब राक्षस विवाह की प्रमुखता है तो इन राजकुमारों ने कन्या का अपहरण कर कोई अपराध नहीं किया है तब जिन राजाओं ने सुमना को दम की पत्नी रूप में स्वीकार किया था फिर उन्होंने कहा—ठीक है कि राक्षस रीति से विवाह भी क्षत्रियों के लिए उचित बताया गया है परन्तु राजकुमारी ने तो अपने पिता की आधीनता में दम का वरण किया है पिता एवं उसके सम्बंधी जनों को मारकर या परास्त कर जिस कन्या का शक्तिपूर्वक अपहरण किया जाता है उसी को राक्षस विधि का विवाह माना जाता है। न कि पति के हाथ में गई हुई कन्या को अपहरण करके विवाह करने का। सुमना ने सभी राजाओं के सामने स्वेच्छा से दम का वरण किया है अतः यह गंधर्व विवाह है राक्षस विवाह नहीं। यदि ये लोग अपनी शक्ति के घमण्ड

में ऐसा कार्य कर रहे हैं तो करें, परन्तु ऐसा करना प्रशंसा के योग्य नहीं है घोर निन्दनीय है।

दम अत्यंत ही क्रोध के साथ लाल-२ आँखें करके हाथ में धनुष लेकर बोला—यदि मेरे सामने ही कोई शक्तिशाली मेरी पत्नी का अपहरण कर ले तो मेरे वंश के गौरव व मेरी इन भुजाओं में कोई दम नहीं है। मेरा जीवन नपुंसकों की तरह है। मेरे अस्त्रों को, मेरे शौर्य को, बाणों को व धनुष को भी धिक्कार है, मेरे जीवन एवं मनुष्यता को धिक्कार है। उसके बाद अपहरण करने वाले महानंद आदि राजाओं की ओर संकेत करते हुए कहा—उच्चकुल में उत्पन्न, सुन्दर अङ्गों वाली यह मदिरेक्षणा बाला जिसकी पत्नी न हो उसका दुर्भाग्य ही है अतः तुम लोग ऐसा प्रयत्न करो कि मुझे परास्त कर इस कन्या को अपनी पत्नी बना सको। कहकर दम ने उन राजाओं पर बाण वर्षा कर स्थल बाणों से ढक दिया। उन राजाओं ने भी दम पर बाण, शक्ति, ऋष्टि और मुगदर आदि अनेकानेक हथियारों को चलाया। दम ने उन हथियारों को बड़ी सरलता से काट दिया। तथा उन राजाओं ने भी राजा दम के बाणों को काट दिया।

कुछ समय तक युद्ध होने के पश्चात महानन्द तलवार

लेकर दम के सामने आया। दम ने महानन्द पर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा कर दी। महानन्द ने अपनी तलवार से दम के सभी शस्त्रों को काट गिराया। क्रोध में भरकर महानन्द रथ पर चढ़कर युद्ध करने लगा। तब दम ने महानन्द के वक्ष पर कालाग्नि के समान बाण से प्रहार किया। उस बाण से घायल महानन्द ने अपने हाथ से ही बाण को निकाल फेंका तथा दम पर तलवार का प्रहार किया। दम ने महानन्द की तलवार को काट दिया तथा वेतस पत्र के द्वारा महानन्द का सिर काट कर गिरा दिया। इसके बाद युद्ध से सभी राजा विमुख हो गए। एक मात्र कुण्डिनाधिपति वपुष्मान ही युद्ध में डटा रहा। दम ने थोड़ी देर में वपुष्मान के शस्त्रों व ध्वजा को काट कर सारथी को मार डाला। वपुष्मान ने अपनी तलवार के कटते ही गदा धारण किया। परन्तु दम ने उसकी गदा को भी तत्क्षण ही काट दिया। इस प्रकार दम वपुष्मान के सभी शस्त्रों को काटकर नष्ट करता जाता था। अतः वपुष्मान कांपते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा एवं युद्ध को त्यागने का विचार किया। अतः दम उसे युद्ध क्षेत्र में वैसा ही गिरा हुआ छोड़कर राजकुमारी सुमना के साथ चला गया। फिर दोनों का विवाह उत्साहपूर्वक सम्पन्न हो गया, दशार्णाधिपति चारुवर्मा ने बहुत से हाथी, ऊंट, घोड़े, रथ,

गाय, खर, दास-दासी वस्त्र, आभूषण धनुष आदि बहुमूल्य वस्तुएँ, धन, बर्तन आदि देकर सम्मान पूर्वक दम के साथ अपनी पुत्री को विदा किया।

राजकुमार दम अपने श्वसुर द्वारा प्राप्त दहेज की वस्तुओं सहित अपनी पत्नी सुमना को लेकर अपने घर आये। राज दरबार में जाकर अपने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया। माता-पिता ने पुत्र वधू को आशीर्वाद दिया। राजा नरिष्यन्त पुत्र द्वारा दशार्णाधिपति चारुवर्मा से संबंध स्थापित किए जाने व राजाओं को परास्त करने का समाचार सुन बहुत ही प्रसन्न हुए। नगर में उत्सव मनाए गए। तत्पश्चात राजकुमार दम ने पत्नी सुमना के साथ सुन्द वनों, उद्यानों, पर्वतों आदि रमणीक स्थानों का भ्रमण किया। बुढ़ापा आने पर राजा नरिष्यन्त राजकुमार दम को राज्य-भार सौंपकर वनवासी हो गए तथा पत्नी इन्द्रसेना भी वानप्रस्थी जीवन व्यतीत करने लगी।

एक बार राजकुमार वपुष्मान वन में कुछ मुट्ठी भर सेना के साथ शिकार खेलने आया। उसने वन में मौन-व्रतधारी तपस्वी नरिष्यन्त एवं पत्नी तपस्विनी इन्द्रसेना को देखकर पूछा—तुम लोग किस जाति के हो ? वनवासी जीवन क्यों व्यतीत कर रहे हो। नरिष्यन्त तो कुछ नहीं बोले, परंतु इन्द्रसेना ने सब कुछ बात बता दी। वपुष्मान ने

जानकर कि वह मेरे दुश्मन का पिता है। नरिष्यन्त की जटा को पकड़ लिया। इन्द्रसेना द्वारा रुंधे गले से हा-हा करते हुए ही दुष्ट वपुष्मान ने तलवार निकाल ली। और बोला—जिसने मुझे परास्त किया था तथा मुझसे सुमना को छीन लिया था। आज उसी दम के पिता का मैं वध कर रहा हूं। अब वह दम अपने पिता की रक्षा करे। जिस दुष्ट को अपने यौवन, शस्त्र एवं सौंदर्य पर घमण्ड है। आज वह मुझसे अपने पिता की रक्षा करे। कहकर वपुष्मान ने नरिष्यन्त का सिर अलग कर दिया।

इन्द्रसेना करुणक्रन्दन कर रही थी। सभी मुनियों एवं वनवासियों ने वपुष्मान के इस कार्य की निंदा की। वपुष्मान अपने नगर को वापस चला गया। इन्द्रसेना ने एक शूद्र तपस्वी को अपने पुत्र के पास भेजा। बोली—तुमने जो मेरे साथ घटना घटी, वह देखी ही है। वह उसे बता देना तथा मेरी तरफ से कहना। आपकी माताजी ने कहा है, "मैं अपने पति को इस प्रकार अपमानित होते देखकर बहुत ही दुःखी हूं। हमारे पति ने तुम्हें राजा बनाया है और तुम एक राजा होकर आश्रमवासी तपस्वियों की रक्षा नहीं कर सकते, क्या यह तुम्हारा कार्य उचित है। मेरे तपस्वी पति एवं तुम्हारे पिता नरिष्यन्त को बिना अपराध के ही दुष्ट वपुष्मान नामक राजा ने उनके

बाल पकड़कर अपमानित किया तथा मेरे बिलखने व हाथ जोड़ने पर भी उसने अपनी तलवार से उनका सिर अलग कर दिया। अतः अब तुम्हें ऐसा कार्य करना चाहिये जिस से धर्म की हानि न हो। मैं तुम्हारी तपस्विनी माता कह रही हूं। तुम्हारे पिता वृद्ध एवं तपस्वी थे। कोई अपराधी नहीं। फिर भी उस दुष्ट ने इनकी हत्या कर दी है। तुम्हारे पास शस्त्रास्त्र एवं योद्धा तथा कार्य में कुशल मंत्री हैं। इन सबसे परामर्श कर उस दुष्ट राजा वपुष्मान के साथ जो न्यायोचित व धर्मयुक्त कार्य हो उसे करो। तुम्हारे पिता ने मरते वक्त कहा था। हम तपस्वी शस्त्र नहीं उठा सकते।

हे पुत्र ! जिस प्रकार विदूरथ के पिता का यवन ने वध किया था। उसी प्रकार इस दुष्ट ने तुम्हारे पिता का वध किया है। जब दैत्यराज जम्भ के पिता को सर्पों ने काट लिया तब जम्भ ने सभी पातालवासी नागों को मार डाला था। पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर पाराशर ने भी असुर वंश को अग्नि में भस्मीभूत किया था। अपने वंश के किसी भी व्यक्ति को अपमानित होते देखकर क्षत्रिय सहन नहीं कर सकता। फिर पिता की हत्या के विषय में क्या कहना ! मैं तुम्हारे पिता की मृत्यु अथवा उन पर शस्त्र प्रहार न मानकर तुम पर ही शस्त्र प्रहार एवं

तुम्हें ही मरा हुआ समझती हूं। अतः तुम शत्रुओं से ऐसा बदला लो जिससे तुमसे सभी भयभीत हों। पुत्र ! अब तुम एक राजा होने के नाते तथा क्षत्रिय तथा पुत्र होने के नाते भी अब तुम्हें जो उचित लगे वह करो।

इन्द्रसेना की आज्ञा से शूद्र तपस्वी ने राजा दम को सारा सन्देश ज्यों की त्यों सुना दिया। पिता के वध का समाचार पाकर राजा दम आग बबूला हो उठा। क्रोधावेश में हाथ मलते हुए दम ने कहा—दुष्ट वपुष्मान ने मेरे जीवित रहते मेरे पिता को अनाथ की तरह मृत्यु का शिकार बनाया है। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ। उस पर क्रोध करूँ या नपुंसकों की तरह क्षमा कर दूँ। परन्तु हम तो दुष्टों के विनाश हेतु राजा नियुक्त हुए हैं। शत्रु तो शत्रु ही है कह कर हाय पिता ! हाय पिता कहते हुए विलाप करने लगे।

दम व्रत लेते हुए बोले—यदि मैंने दुष्ट वपुष्मान के रक्त से अपने पिता की स्वर्गीय आत्मा को सन्तुष्ट नहीं किया तो मैं अग्नि में प्रवेश कर भस्म हो जाऊँगा। अब मैं यदि उस दुष्ट के सहायक असुर, देव, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर व सिद्धगण जो भी होंगे उन्हें भी शस्त्रानल में भस्मीभूत कर दूंगा। अन्यथा चिता में प्रवेश कर जाऊंगा।

———

वपुष्मान वध

राजा नरिष्यन्त के पुत्र दम ने इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके क्रोध से लाल आँखें किये हुए, हाथ से मूछों को ऐंठते हुए, पिता का स्मरण कर देवताओं की निंदा करते हुए सभी मंत्रियों एवं पुरोहितों को बुलाकर कहा—आप सभी ने इस शूद्र तपस्वी द्वारा पिता की मृत्यु का संवाद सुना। अब आप लोग विचार कर उचित परामर्श दें कि अब क्या करना चाहिए ? अब मैं पिता के वैर का बदला लिए बिना, पितृघातक को बिना मारे तथा माँ की आज्ञा का पालन किये बिना एक पल भी जीवित नहीं रह सकता। अतः अब आप लोग युद्ध के लिए हाथी, घोड़े, रथ व पैदल सेना को तैयार करें।

अपनी प्रचण्ड सेना के साथ राजा दम अपने त्रिकालज्ञ पुरोहित के चरणों में प्रणाम कर युद्ध के लिए चल दिया। वपुष्मान के राज्य की सीमा पर पहुंचते ही सीमापालक सामन्तों को मारते हुए दक्षिण दिशा को चल दिया। परिवार एवं मन्त्रिगणों के साथ सैन्यबल सहित दम को आया जानकर सक्रंदन का पुत्र वपुष्मान क्रोधित हो उठा। दृढ़ प्रतिज्ञ होकर अपनी सेना को युद्ध की आज्ञा दी। तथा दम को दूत द्वारा सन्देश भिजवाया कि हे क्षत्रियों में अधम ! दुष्ट तू शीघ्र मेरे सामने आ ! यमलोक में

नरिष्यन्त अपनी पत्नी सहित तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। मेरे तीक्ष्ण बाण तेरे शरीर के मीठे रक्त को पीने को आतुर हैं।

दूत का सन्देश पाते ही क्रोध में पागल दम ने शीघ्र ही वपुष्मान के सामने पहुंच कर युद्ध के लिए ललकारा। दम एवं वपुष्मान में घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। रथी से रथी, हाथी सवार से हाथी सवार, घुड़सवार से घुड़सवार एवं पैदल सेना से पैदल सेना लड़ रही थी। दम के युद्ध से पृथ्वी काँप रही थी। दम के बाणों की मार को वपुष्मान की सेना सहन नहीं कर पा रही थी। दम ने युद्ध में शत्रु के सेनापति को मार डाला। जिससे वपुष्मान की सेना भागने लगी। भागते हुए वपुष्मान को दम ने ललकारते हुए कहा—अरे दुष्ट! तपस्वी, निःशस्त्र तप करते हुए मेरे पिता के हत्यारे अब कहाँ भाग रहा है। यदि क्षत्रिय है तो वापस आकर युद्ध कर। वपुष्मान वापस मुड़कर दम के साथ युद्ध करने लगा। उसके धनुष द्वारा छोड़े गये बाणों से सभी दिशायें व्याप्त हो गयीं।

दम ने भी क्रोध से उत्तेजित होकर शत्रु के सभी बाणों को नष्ट करते हुए वपुष्मान के सात पुत्रों, सम्बन्धी एवं मित्रों को यमलोक पहुँचा दिया। जिससे वपुष्मान भी क्रोधावेश में भीषण बाणों की वर्षा करने लगा। दम ने

उसके भी सभी बाणों को काट डाला। उसके बाद दोनों में लड़्य युद्ध होने लगा। थोड़े ही समय में दम ने वपुष्मान के केशों को पकड़कर बाँह मरोड़ते हुए कहा—सभी देवगण, मनुष्य, पन्नग, सिद्ध तथा पक्षी इस क्षत्रिय के हृदय को मेरे द्वारा फाड़े जाते हुए देखें। कहकर उसका हृदय फाड़ डाला। फिर उसके रक्त को पीना चाहा कि देवताओं ने उसे रोक दिया। उसके बाद दम ने वपुष्मान के रक्त से पिता का तिलोदक एवं मांस से पिण्डदान किया। इस प्रकार पितृऋण से मुक्त होकर घर वापस आकर राक्षस कुल में उत्पन्न ब्राह्मणों को उसके माँस का भोजन कराया।

इस प्रकार सूर्यवंश में और भी अनेक बुद्धिमान शूर-वीर, पराक्रमी, यज्ञ-प्रिय, धर्मात्मा एवं वेदज्ञ हुए। जिनका वर्णन कर पाना कठिन है। इन सबके चरित्र को पढ़ सुन कर मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है।

पुराण कथा सुनने व पढ़ने का फल

पक्षियों ने कहा—हे जैमिने ! महामुनि मार्कण्डेय जी ने क्रौष्टुभि को कथा सुनाकर विदा किया। मध्यान्ह की क्रियायें सम्पन्न कीं। हे महामुने ! जो मार्कण्डेय जी ने सुनायी थी वह तुम्हें सुना दी। तथा अति प्राचीन समय में यह कथा ब्रह्मा जी ने मार्कण्डेय जी को सुनाई थी। यह

पुराण अति पुण्य युक्त पवित्र, आयुष्य, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष एवं सिद्धि को प्रदान करने वाला है। इस पुराण को श्रद्धापूर्वक पढ़ने वाले व सुनने वाले दोनों ही शीघ्र पापों से मुक्त हो जाते हैं।

हे मुने! प्रारम्भ में आपने चार प्रश्न किये थे। पिता-पुत्र संवाद, स्वायंभुव की सृष्टि, मनुओं की उत्पत्ति तथा राजाओं के चरित्र। इन सभी प्रश्नों का उत्तर तुम्हें सुना दिया। ब्रह्मा ने कुल अठारह पुराणों का वर्णन किया है। वे क्रमवार हैं—

ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, वैष्णव पुराण, शैव पुराण, भागवद् पुराण, नारदीय पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, लिंग पुराण, वाराह पुराण, स्कन्द पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, गरुड़ पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण।

इन पुराणों में मार्कण्डेय पुराण सातवें स्थान पर है। इन अठारहों पुराण के नाम पढ़ने व तीनों संध्याओं में इनका जाप करने से अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित ये पुराण के पाँच लक्षण हैं। चार प्रश्नों से युक्त इस पुराण को सुनने से, पढ़ने से मनुष्य सौ करोड़ कल्पों के लिए पापों से मुक्त हो जाता है। ब्रह्महत्या आदि भयंकर पाप तृण के

समान नष्ट होते हैं। जो ब्राह्मण इस कथा को सुनावे उसे यथा शक्ति ग्राम, वाहन, धन-संपत्ति, अन्न, वस्त्र, स्वर्ण आदि का दान करना। सम्पूर्ण कथा सुनने के बाद व्यास का पूजन करना चाहिए। गुरु को भी वस्त्र आभूषण युक्त गौ का दान करना चाहिए। तथा दान देकर गुरु को सन्तुष्ट करना चाहिए।

जो व्यक्ति पाठ करने वाले पण्डित को बिना कुछ भेंट पूजा किये उसका एक भी श्लोक सुनता है उसे पुण्य की प्राप्ति नहीं होती। तथा देवता पितर कोई प्रसन्न नहीं होते। पितर उसके श्राद्ध को ग्रहण नहीं करते। जो इस शास्त्र का अपमान करते हैं वे कई जन्मों तक गूँगे व सात जन्मों तक पूजा करने वाला व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् मूर्ख होते हैं। इस पुराण की कथा को सुनने के पश्चात् परमपद को प्राप्त कर विष्णुलोक को जाता है। इसके श्रवण मात्र से ही परम योग को प्राप्त होता है। इस पुराण को नास्तिक, पापी (धर्म हीन) वेदनिंदक, गुरु, ब्राह्मणनिंदक, भग्नव्रती, माता-पिता के निंदक, वेद-शास्त्र के निन्दक, मर्यादाहीन, कुल व जाति के कलंकी को तथा जिसके प्राण कण्ठगत् हों उसे नहीं देना चाहिए।

इस पुराण का सम्पूर्ण आख्यान धर्म, स्वर्ग, मोक्ष एवं सभी कामनाओं को प्रदान करने वाली व्याधियों, विपत्तियों

तथा ब्रह्महत्यादि के पापों को दूर करने वाला है। दुश्मन भी मित्र हो जाता है। चोरों का भय नहीं रहता। दरिद्रता नष्ट होती है। परनारी, परधन तथा परहिंसा के पापों व अन्य दुःखों से मुक्त हो जाता है।

इस पुराण की कथा को नित्य प्रति सुनने वाले व्यक्ति को सदा ही ऋद्धि, सिद्धि, स्मृति, शांति, श्री, पुष्टि, तुष्टि आदि की प्राप्ति होती है। वे व्यक्ति योग ज्ञान और विशुद्ध सिद्धि के सहित स्वर्ग आदि लोकों में इन्द्र आदि से घिरे हुए सदा पूजनीय होता है।

इस पुराण में कुल छः हजार आठ सौ निन्यानवें श्लोक हैं।

जैमिनी बोले—महाभारत में मुझे जो संशय था जिसे आज तक किसी ने दूर नहीं किया था वह आज दूर हो गया। हे प्रज्ञबुद्धि विशारदो ! आप दीर्घायु होवें, सांख्य योग में आपकी बुद्धि निर्मल एवं श्रेष्ठ गति वाली होवे। पिता के शाप से उत्पन्न जो आपका दुःख है वह दूर होवे। ऐसा कहकर जैमिनी ऋषि पक्षियों द्वारा कहे गये कोमल वचनों को सुनते हुए अपने आश्रम को चले गये।

॥ श्री मार्कण्डेय महापुराण समाप्त ॥

रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार (२४९४०१)

भगवान के पांच विचित्र अवतारों की कथा

लेखक — स्वामी श्री अखंडानंद जी महाराज

पुस्तक रूप में प्रस्तुत श्री मत्स्यावतार कथा, कच्छपावतार कथा, वराहावतार कथा, वामनावतार कथा तथा नृसिंहावतार कथा में लेखक ने जन साधारण को यह रोचक कथाऐं तो उपलब्ध कराई ही हैं तथा ये भी बताया है कि भगवान की महिमा अनंत है। निर्गुण-निराकार, सगुण-साकार सब उन्हीं का स्वरूप है। बुद्धि जितना सोच सकती है, जितना आकलन कर सकती है और जितना बड़ा काल्पनिक मानचित्र बना सकती है उसके भी परे, बहुत परे भगवान विराजमान हैं। मन वहां नहीं पहुँच सकता, वाणी उनका वर्णन नहीं कर सकती। हमारे पास देखने और जानने के जितने साधन हैं उनके बल पर हम भगवान को नहीं पा सकते। वे स्वयं ही कृपा करके जिस पर अपनी महिमा प्रकट कर दें और अपने दर्शन तथा अनुभव का अधिकारी चुन लें, वही उन तक पहुँच सकता है।

नीति ग्रन्थों के अमृत कण

संग्रहकर्त्ता — बाल कृष्ण मुज़तर

हिन्दू शास्त्रों और विभिन्न नीति ग्रन्थों में वर्णित सामान्य जीवन और व्यवहार के लिये उपयोगी महापुरुषों का विवेक विचार। प्रत्येक आयु के पाठक के लिये एक उपयोगी पुस्तक।

ज्ञान की राह दिखाने वाले
महापुरुषों के अनमोल वचन

संग्रह और सम्पादन — नंदलाल दशोरा

जितना ही हम अध्ययन करते हैं उतना ही हमें अज्ञान का आभास होता जाता है। पढ़ना तो सभी जानते हैं लेकिन क्या पढ़ना चाहिये ये पुस्तक आपको यह सोचने पर मजबूर करेगी कि आपको क्या पढ़ना चाहिए।